KUBERA
IN
ANCIENT INDIAN ART AND LITERATURE

THESIS

SUBMITTED TO THE UNIVERSITY OF ALLAHABAD

FOR THE DEGREE OF

DOCTOR OF PHILOSOPHY

(FACULTY OF ARTS)

By

INDU BHUSHAN DWIVEDI

Supervisor

Professor U. N. ROY

(Ex-Head, Professor Emeritus)

DEPARTMENT OF ANCIENT HISTORY CULTURE AND ARCHAEOLOGY

UNIVERSITY OF ALLAHABAD

ALLAHABAD (U. P.)

1998

महोदरं महाकायं द्विदंष्ट्रसमन्वितम्।
शंखपद्मगदाहस्तौ कुबेराय नमाम्यहम्।।
शिबिकामपि पादयोः किरीटमुकुटान्वितम्।
बुद्धिसमृद्धिप्रदानार्थं वैश्रवणाय प्रणाम्यहम्।।

विषय-सूची

कुबेर भारतीय जनमानस में प्राचीन समय से ही पूजित रहे हैं। कुबेर का सम्बन्ध प्रारम्भिक स्तर पर यक्ष-परम्परा से था। धीरे-धीरे उनका व्यक्तित्व यक्ष श्रेणी से ऊपर उठकर अन्य देवों के समकक्ष प्रतिष्ठित हो गया। देवत्व की प्रतिष्ठा तक उनके व्यक्तित्व के निर्माण में अनेक तत्व क्रियाशील थे। उन्हें गुह्याधिपति, धनद तथा शिव-सखा के रूप में मान्यता प्राप्त थी। विश्रवा के पुत्र रूप में उनकी कल्पना से यक्ष और वैदिक संस्कृति के परस्पर अन्तरभावन की प्रक्रिया का परिचय प्राप्त होता है। इसीप्रकार उनके हाथ में नकुलक की निरन्तर उपस्थिति लोक विश्वास के प्रभाव का परिचायक है। कुबेर के साथ यक्षी, हारीति तथा लक्ष्मी का अङ्कन भी ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन की दृष्टि से महत्वपूर्ण तथ्यों को उद्घाटित करता है। धीरे-धीरे लक्ष्मी तथा कुबेर की संयुक्त उपासना के स्थान पर गणेश-लक्ष्मी की उपासना इस प्रकार प्रतिष्ठित हो गयी, यह अत्यन्त रोचक विषय है। कुबेर से सम्बन्धित विविध प्रकार की उपासना पद्धतियों एवं कर्मकाण्डों का उल्लेख तैत्तिरीय आरण्यक से लेकर परवर्ती ग्रन्थों में प्राप्त होता है परन्तु इन कर्मकाण्डों का विश्लेषण अद्यापि अस्पष्ट है।

कुबेर का अंकन कला में भरहुत और साँची के 'कुपिरो यक्खो' से लेकर मध्यकाल तक निरन्तर होता रहा। कभी उन्हें स्वतंत्र देवता के रूप में, कभी दिक्पाल के रूप में प्रदर्शित किया गया है। यक्ष परम्परा से प्रभावित कुबेर की प्रारम्भिक मूर्तियों से लेकर पभोसा के धनद श्रेष्ठी स्वरूप तक तथा मध्यकालीन प्रतिमालक्षणों के अनुरूप उनके नरवाहन, गजवाहन, मेषवाहन तथा द्विभुजी तथा चर्तुभुजी प्रतिमाओं के विकास का ऐतिहासिक विश्लेषण अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं गवेषणीय है। उपर्युक्त विषयों से सम्बन्धित विवेचन प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में करने का प्रयास किया गया है।

स्नातकोत्तर कक्षा के अन्तिम वर्ष में कला एवं स्थापत्य विषय का अध्ययन एवं उसके प्रति उत्पन्न अभिरुचि में, मेरे शोध-पर्यवेक्षक के द्वारा कक्षाओं में दिये गये

शोध-विषय का इसी क्षेत्र में चयन किया।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध छः अध्यायों में विभाजित है। प्रथम अध्याय 'कुबेर के देवत्व की अवधारणा एवं यक्ष-संस्कृति' से सम्बन्धित है जिसमें ऋग्वेद से लेकर महाकाव्यों एवं पुराणों तक कुबेर के यक्ष स्वरूप से धन एवं निधियों के स्वामी तथा उनके लोकपाल स्वरूप तक का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। द्वितीय अध्याय- 'कुबेर-परिकर ' से सम्बन्धित है जिसमें कुबेर के साथ अनिवार्य रूप से सम्बद्ध मणिभद्र, लक्ष्मी/गजलक्ष्मी तथा हारीति इत्यादि के सन्दर्भ में विवेचन किया गया है। मणिभद्र विशेषतः सार्थवाहों द्वारा पूजित था। कुबेर के धनद रूप में प्रतिष्ठित होने के कारण लक्ष्मी/गजलक्ष्मी से उनका सम्बन्ध स्वभाविक था। हारीति के साथ कुबेर का संयुक्त अङ्कन मथुरा एवं गान्धार-कला में अतिशय देखने को मिलता है। तृतीय अध्याय 'बौद्ध एवं जैन वाङ्मय में कुबेर ' से सम्बन्धित है। बौद्ध-परम्परा में कुबेर की पौराणिक मान्यता के साथ-साथ उनके पञ्चिक एवं जम्भल स्वरूप की भी कल्पना की गयी है। वज्रयानी प्रभाव के कारण उनके उग्र रूप का भी प्रदर्शन बौद्ध लामा परम्परा में भी विशेषतः प्राप्त होता है। जैन परम्परा में यद्यपि कुबेर के व्यक्तित्व को स्वतंत्र रूप से मान्यता प्राप्त नहीं हुयी किन्तु उनकी कल्पना मल्लिनाथ के यक्ष के रूप में प्राप्त होती है। साथ ही साथ बौद्धों के चतुर्महाराजिक की भाँति उनका लोकपालत्व स्वरूप भी जैन परम्परा में सुरक्षित रहा। चतुर्थ अध्याय 'महाकाव्यों एवं पुराणों में कुबेर' से सम्बन्धित है। इसमें कुबेर की उत्पत्ति से सम्बन्धित विविध कथानकों, कुबेर के द्वारा तपस्या के परिणाम स्वरूप काशी में गणेशत्व की प्राप्ति तथा अन्य कथानकों का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। पञ्चम अध्याय 'कला में कुबेर' से सम्बन्धित है जिसमें उनके मूर्त अङ्कनों के विश्लेषण के साथ-साथ विभिन्न पुराणों तथा मध्यकालीन ग्रन्थों यथा-अंशुमदभेदागम, सुप्रभेदागम, अपराजितपृच्छा, शिल्परत्न इत्यादि में कुबेर के प्रतिमालक्षणों से सम्बन्धित विवरणों में गतानुगतिकता एवं विभिन्नताओं को विश्लेषित किया गया है। भारतवर्ष के विभिन्न भागों से प्राप्त कुबेर की प्रतिमाओं का विवरण इस अध्याय में उपस्थित करने का प्रयास किया गया है। अन्तिम

क्रमबद्ध रूप में प्रस्तुत किया गया है। शोध-प्रबन्ध के अन्त में सन्दर्भ ग्रन्थ, चित्र-फलक सूची तथा चित्र दिये गये हैं।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के लेखन-कार्य में जिन व्यक्तियों, गुरुजनों, विद्वानों एवं संस्थाओं से मुझे सहायता एवं प्रेरणा मिली है उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ।

प्रस्तुत विषय पर कार्य के आरम्भ से समापन तक सतत उत्साहवर्द्धन एवं विभिन्न समस्याओं के समाधान में कृपापूर्ण सहायता और मार्गदर्शन के लिए सर्वप्रथम मैं अपने शोध-पर्यवेक्षक प्रातः स्मरणीय श्रद्धेय गुरुवर प्रो० उदय नारायण राय (भू०पू० विभागाध्यक्ष प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय एवं भू०पू० इमेरिटस प्रोफेसर) का आजीवन ऋणी रहूँगा, जिनके शिष्यत्व एवं स्नेहिल सानिध्य में रहकर मुझे बहुत कुछ सीखने का गौरव प्राप्त हुआ। ऐसे नैष्ठिक व्यक्तित्व के सर्वाङ्गीण गुणों से सुशोभित प्रो० राय के प्रति मैं नमन करता हूँ जिनके कुशल निर्देशन एवं अमूल्य सुझावों द्वारा ही प्रस्तुत अध्ययन पूर्णता प्राप्त कर सका है।

परमादरणीय गुरुवर प्रो० विद्याधर मिश्र (विभागाध्यक्ष, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय) की कृपा दृष्टि सदैव मेरे ऊपर बनी रही, अतएव मैं आप का विशेष आभारी हूँ। आप के द्वारा निरन्तर प्राप्त प्रेरणा ने शोध-प्रबन्ध के पूर्ण होने में अजस्र स्रोत का कार्य किया। श्रद्धेय प्रो० मिश्र जी के प्रति मैं कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

परम मनीषी प्रो० गोबिन्द चन्द पाण्डेय, अध्यक्ष इलाहाबाद संग्रहालय समिति, संस्कृति विभाग भारत सरकार के पाण्डित्यपूर्ण कृतियों एवं उनके द्वारा संग्रहालय में दिये गये उत्कृष्ट व्याख्यानों ने मेरे शोध-प्रबन्ध को अनेक दृष्टियों से प्रभावित किया है। अतः मै उनके प्रति आभार व्यक्त करता हूँ।

स्वर्गीय प्रो० कृष्णदत्त वाजपेयी, (सेवानिवृत्त, टेगोर प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष प्रा० भा० इतिहास-संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग सागर वि०वि०) जिनकी अनुपस्थिति में भी

श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

गुरुवर डॉ० रामप्रसाद त्रिपाठी, रीडर प्रा०इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्रति भी मैं अभारी हूँ जिन्होंने निरन्तर मुझे स्नेहिल परामर्श प्रदान किया।

श्रद्धेय डॉ० विमल चन्द शुक्ल, रीडर यूइंग क्रिश्चियन कालेज के सानिध्य में निरन्तर रहकर उनके स्नेहयुक्त विद्वतापूर्ण विचारों एवं परामर्शों से मेरा ज्ञान निरन्तर संशोधित एवं परिवर्द्धित होता रहा है तथा जिनके सहयोग के बिना शोध-प्रबन्ध का कार्य असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य था। ऐसे अग्रज तुल्य डॉ० शुक्ल जी का मैं ऋणी हूँ।

श्रद्धेय प्रो० जे० यस० नेगी, प्रो० बी० एन० एस० यादव तथा प्रो० एस० एन० राय, भू०पू० विभागाध्यक्ष प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय से प्राप्त अमूल्य सुझावों के लिए मैं उनका हृदय से आभारी हूँ।

प्रो० सुरेश चन्द पाण्डेय, भू०पू० विभागाध्यक्ष संस्कृत विभाग इलाहाबाद वि०वि० तथा प्रो० हरिशंकर त्रिपाठी, संस्कृत विभाग इलाहाबाद वि०वि० के प्रति प्राप्त अनेक सुझावों के लिए मैं उनका आभार व्यक्त करता हूँ।

प्रो० एस० एस० राय, भूतपूर्व विभागाध्यक्ष, दर्शनशास्त्र विभाग, इ०वि० के स्नेह को शब्दों में बाँधना अत्यन्त कठिन है। मैं उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। प्रो० श्याम सुन्दर शुक्ल (का० हि० वि०वि०), प्रो० लालता प्रसाद पाण्डेय (हि०प्र० वि० शिमला) के प्रति भी मैं प्राप्त अनेक सुझावों के लिए कृतज्ञ हूँ।

डॉ० लक्ष्मी राज शर्मा, रीडर अंग्रेजी विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्रति भी मैं आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने मुझे शोध-प्रबन्ध पूर्ण करने के लिए निरन्तर प्रेरित किया ।

डॉ० सन्ध्या मुकर्जी, प्रो० आर० के० द्विवेदी, प्रो० ओमप्रकाश, डॉ० जे० एन० पाण्डेय, डॉ० जे० एन० पाल तथा डॉ० एच० एन० दुबे, रीडर, प्रा० इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग के प्रति भी मैं आभार व्यक्त करता हूँ।

डॉ० रञ्जना बाजपेयी, श्री ओमप्रकाश श्रीवास्तव, डॉ ० यू०सी० चट्टोपाध्याय, डॉ० वनमाला मधोलकर, डॉ० ए० पी० ओझा, डॉ० अनामिका राय, डॉ० पुष्पा तिवारी, डॉ० डी०के० शुक्ला, डॉ० शशिकान्त राय, डॉ० सी०डी० पाण्डेय तथा डॉ० डी०पी० दुबे एवं डॉ० एम० सी० गुप्ता के प्रति भी मैं आभारी हूँ।

डॉ० गयाचरण त्रिपाठी, प्राचार्य गंगा नाथ झा संस्कृत शोध संस्थान इलाहाबाद तथा सुश्री जयश्री मित्रा, रीडर संस्कृत विभाग,यूइंग क्रिश्चियन कालेज इलाहाबाद के द्वारा समय-समय पर प्राप्त सुझावों के लिए मैं उनके प्रति कृतज्ञ हूँ।

शोध-प्रबन्ध पूर्ण करने के सन्दर्भ में जिन मित्रों से मुझे निरन्तर परामर्श, सहायता एवं उत्साहवर्धन मिला, उनमें डॉ० कृष्ण चन्द्र त्रिपाठी, श्री सुनील कुमार अग्रवाल, श्री प्रदीप कुमार पाण्डेय, श्री कौशलेन्द्र शुक्ल, श्री हरिशंकर त्रिपाठी, डॉ० सुरेन्द्र प्रताप सिंह, डॉ० राजेश मिश्र, श्री बम बहादुर सिंह, डॉ० आर० के० गुप्ता, डा० ए० के० वर्मा, श्री त्रिभुवन सिंह, श्री सुशील कुमार तिवारी, श्री आशुतोष त्रिपाठी, श्री एस० एम० यादव, श्री रामजी पाण्डेय तथा श्री सतीश चन्द्र राय (असिस्टेन्ट लाइब्रेरियन) हैं। इन सभी सुधीजनों के प्रति मैं हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

शोध-प्रबन्ध के प्रूफ संशोधन एवं अन्य कार्यो हेतु सहयोग के लिए मैं डॉ० रत्ना शर्मा, डॉ० श्रीमती नीता श्रीवास्तव एवं प्रीति द्विवेदी का विशेष आभारी हूँ। इसके अतिरिक्त मैं उन सभी मित्रों एवं सुधीजनों का आभारी हूँ जिन्होंने प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से मेरी किञ्चित सहायता की है।

शोध-प्रबन्ध के लिए प्राप्त छात्रवृत्ति हेतु विश्वविद्यालय अनुदान आयोग नई-दिल्ली एवं भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद नई-दिल्ली का भी मैं आभारी हूँ।

चित्रों के लिए मैं अमेरिकन इन्स्टीट्यूट ऑफ इण्डियन स्टडीज, रामनगर-वाराणसी का आभारी हूँ।

मैं अपने पिताजी श्री चन्द्रमा प्रसाद द्विवेदी एवं माता श्रीमती विजय लक्ष्मी द्विवेदी तथा परिवार के सभी अग्रजों के प्रति अभिवादन करता हूँ जिनके प्रेरणा एवं आशीर्वाद से यह कार्य पूर्ण हो सका। अन्त में मैं गुरुपत्नी स्नेहमूर्ति श्रीमती निर्मला राय के प्रति कृतज्ञ

हूँ जिन्होंने निराशा के प्रत्येक क्षणों में मेरा उत्साहवर्धन किया। श्री अजय सिंह को कम्पोजिंग के लिए हृदय से धन्यवाद देता हूँ।

इस ग्रन्थ की रचना के द्वारा मैंने ऐतिहासिक वाङ्मय में एक रिक्त की पूर्ति का अभिमत प्रयास किया है। आशा है कि यह मेरा प्रबन्ध अपने पवित्र उद्देश्य की पूर्ति में सफल सिद्ध हो सकेगा तथा जिज्ञासुओं एवं शोधार्थियों के अतिरिक्त विद्वज्जनों को भी इससे परितोष होगाः-

आ परितोषाद्विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम्।
बलवदपि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्ययं चेतः।।
(अभिज्ञानशाकुन्तलम् अङ्क- 1, श्लोक 2)

महाशिवरात्रि
फाल्गुन कृष्णपक्ष, 14
विक्रम सम्वत् 2054
(25-02-1998 ई०)

इन्दुभूषण द्विवेदी
इन्दुभूषण द्विवेदी

संकेत-सूची

ऋ० – ऋग्वेद
यजु० – यजुर्वेद
अथर्व० – अथर्ववेद
अपरा० – अपराजितपृच्छा (भुवनदेव कृत)
अ० पु० – अग्निपुराण
आई० ए० – इण्डियन आर्किटेक्चर (पर्सी ब्राउन)
आई० एच० क्यू० – इण्डियनहिस्टारिकल क्वार्टरली
आई० ओ० – इन्स्क्रिप्शान आव उड़ीसा (एस० एन० राजगुरु)
आई०बी० बी० एस० डी० एम० – आइकोनोग्राफी आव बुद्धिस्ट एण्ड ब्रह्मनिकल स्कल्पचर इन ढाका म्यूजियम (एन० के० भट्टसाली)
आई० एम० एच० बी० डी० – आइकोनोग्राफी आव माइनर हिन्दू एण्ड बुद्धिस्ट डीटीज (भगवन्त सहाय)
ई० एच० आई० – एलिमेन्ट्स आव हिन्दू आइकोनोग्राफी (टी० गोपीनाथ राव)
ए० आर० बी० – अर्कियोलाजिकल रिमेन्स एट भुवनेश्वर (के०सी० पाणिग्रही)
ए० एस० आई० ए० आर० – आर्कियोलाजिकल सर्वे आव इण्डिया एनुअल रिर्पोट
ऐ० ब्रा० – ऐतरेय ब्राह्मण
एच० ओ० – हिस्ट्री आव उड़ीसा (आर० डी० बनर्जी)
एस० डबलू० ए० आई० – शक्ति कल्ट इन ऐंसियंट इण्डिया (पुष्पेन्द्र कुमार)
एम० ए० एस० आई० – मेमायर आव आर्कियोलाजिकल सर्वे आव इण्डिया
ओ० एच० आर० जे० – उड़ीसा हिस्टारिकल रिसर्च जनरल
ख० दे० प्र० – खजुराहो की देव प्रतिमाएँ (रामाश्रय अवस्थी)
ग० पु० – गरुण पुराण

गणेश	– गणेश (सम्पूर्णानन्द)
जे० बी० आर० एस०	– जरनल आव बिहार रिसर्च सोसायटी
जे० आर० ए० एस० बी०	– जरनल आव रायल एशियाटिक सोसायटी आव बंगाल
जे० यू० पी० एच० एस०	–जरनल आव यू०पी० हिस्टारिकल सोसायटी
प० पु०	– पद्मपुराण
प्रा० भा० मू०	– प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान (एन० पी० जोशी)
बौ० गृह०	– बौधायन गृह्यसूत्र
बृ० सं०	– बृहत्संहिता (वराहमिहिरकृत)
भ० पु०	– भविष्यपुराण
भा० पु०	– भागवतपुराण
भा० वा० शा० प्र० ल०	– भारतीय वास्तुशास्त्र एवं प्रतिमा-लक्षण (द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल)
म० पु०	– मत्स्यपुराण
महा०	– महाभारत
मार्क० पु०	– मार्कण्डेय पुराण
मु० उ०	– मुण्डक उपनिषद
तै० आ०	– तैत्तिरीय आरण्यक
दे० भा० पु०	– देवी भागवत पुराण
टी० एन० आई०	– टेम्पुल्स आव नार्थ इण्डिया (कृष्णदेव)
डी० एच० आई०	– डेवलपमेण्ट आव हिन्दू आइकोनोग्राफी (जे० एन० बनर्जी)
या० स्मृ०	– याज्ञवल्क्यस्मृति
रूप०	– रूपमण्डन (सूत्रधार मण्डन कृत)
लि० पु०	– लिंगपुराण
व० पु०	– वराहपुराण
वा० पु०	– वामनपुराण, वायुपुराण
वि० पु०	– विष्णुपुराण
वि० ध० पु०	– विष्णुधर्मोत्तर पुराण

सम० सूत्र	– समरांगण सूत्रधार
सां० गृह०	– सांख्यायन गृह्यसूत्र
श० ब्रा०	– शतपथ ब्राह्मण
शि० पु०	– शिवपुराण
शि० प्र०	– शिल्पप्रकाश
हि० गृ०	– हिरण्यकेशिन गृह्यसूत्र
बी० एस० एम० आर० एस०	– वैशनविज्म, शैविज्म एण्ड अदर माइनर रिलीजस सिस्टम (डी० आर० भण्डारकर)

प्रथम अध्याय

कुबेर के देवत्व की अवधारणा
और
यक्ष-संस्कृति

कुबेर के देवत्व की अवधारणा और यक्ष-संस्कृति

भारत वर्ष की सांस्कृतिक धारा प्राचीन समय से ही आगम, निगम तथा लोक परम्पराओं को अनुस्यूत करती हुयी प्रवाहित होती रही है। नानाधर्मा पृथ्वी पर आर्य तथा आर्येतर अथवा आदिम परम्परायें परस्पर एक दूसरे से इस प्रकार संपृक्त हैं कि उनके पार्थक्य का स्पष्ट वर्गीकरण सहज सम्भव नहीं है। अथर्ववेद के एक सूक्त[1] में ऋग्वैदिक देवताओं के साथ लोकदेवताओं के पारस्परिक समन्वय की परम्परा का विशद विवेचन प्राप्त होता है। इस सूक्त में वैदिक देवता अग्नि, इन्द्र, वरुण, मित्र, विष्णु, पुषा, बृहस्पति इत्यादि के साथ-साथ यक्ष, राक्षस, सर्प, चारों दिशाओं के देवता तथा पंचदिशाओं की देवियों की उपासना का उल्लेख किया गया है। यह उल्लेखनीय है कि वैश्रवण कुबेर तथा उनके पुत्र कावेरक को अथर्ववेद में [2] इतरजन कहा गया है, जिससे स्पष्ट है कि कुबेर की मान्यता अथर्ववेद तक वैदिक देवताओं से भिन्न थी । कुबेर भारतीय परम्परा में यक्ष-परिवार से सम्बन्धित स्वीकार किये गये हैं। कालिदास ने भी कुबेर का उल्लेख यक्षों के राजा के रूप में किया है। रामायण में भी राक्षस एवं यक्ष दोनों को प्रजापति के सन्तान के रूप में चित्रित किया गया है। [3] मुनि विश्रवा और देववर्णिनी के पुत्र के रूप में कुबेर की मान्यता वस्तुतः वैदिक एवं पौराणिक विचार धारा के साथ-साथ परस्पर सांस्कृतिक अन्तरावलम्बन की प्रक्रिया का ही परिचायक

---

1 अथर्ववेद 11,6,1-23

2 तत्रैव 8.10.5-9,11

3 रामायण उत्तर काण्ड 4.11. 13

है।[1] बौद्ध परम्परा में भी चतुर्महाराजिक, देवों का सम्बन्ध यक्षों से स्थापित किया गया है इनमें से वैश्रवण कुबेर भी एक था। धर्मधातुवागीश्वर मण्डल में यक्षों के आठ अधिपति का उल्लेख प्राप्त होता है, जिनमें कुबेर भी एक था। [2] प्रायः सम्पूर्ण बौद्ध साहित्य में यक्षाधिपति कुबेर की राजधानी अलकापुरी का उल्लेख मिलता है। जैन-ग्रन्थों में भी कुबेर का सम्बन्ध यक्ष-परम्परा से ही स्थापित किया गया है। उनके अनेक अनुचर जैसे पूर्णभद्र, मणिभद्र, शीतलभद्र, सुमनभद्र इत्यादि यक्ष भी थे। अंगविज्जा में वैश्रवण तथा यक्ख इत्यादि को निम्न देवता के रूप में चित्रित किया गया है। [3]

इस प्रकार स्पष्ट है कि वैदिक, पौराणिक तथा जैन और बौद्ध सभी परम्पराओं में कुबेर का सम्बन्ध यक्ष-संस्कृति से स्थापित किया गया है, तथा उनकी यक्षाधिपति उपाधि सर्वत्र प्राप्त होती है। अतः यह अप्रासंगिक नहीं होगा कि कुबेर के व्यक्तित्व के विकास तथा उनकी उपासना परम्परा में प्रचलित विविध तत्वों के विवेचन और उनकी मूर्तियों के विश्लेषण के पूर्व यक्ष-संस्कृति की प्राचीनता और उसके विविध मौलिक तथा आनुसंगिक तत्वों का विवेचन कर लिया जाये क्यों कि इन्हीं तत्वों में कुबेर के व्यक्तित्व का अधिकांश कलेवर निर्मित किया गया होगा।

यक्षोपासना के प्राचीनतम संकेत ऋग्वेद में प्राप्त होते हैं। ऋग्वेद के एक स्थल पर यक्षों को सौन्दर्य युक्त कहा गया है। [4] अन्यत्र मित्र और वरुण को सम्बोधित करते हुए यह कहा गया है कि उनकी प्रजा में न तो कोई आश्चर्य दिखायी पड़ता है और न कोई यक्ष। इससे स्पष्ट है कि यक्षोपसना प्रारम्भिक स्तर पर वैदिकेतर धारा से सम्बन्धित थी।[5] ऋग्वेद में प्रयुक्त 'अद्भुतक्रतु ' तथा 'महद्बल' शब्द भी यक्षों की

---

1 पार्जिटर, एफ० ई०, एन्शियेन्ट इण्डियन हिस्टारिकल ट्रेडिशन, पृष्ठ 24

2 भट्टाचार्य बी०, द इण्डियन बुद्धिस्ट आइकोनोग्रैफी, पृष्ठ 379

3 अंगविज्जा, देवताविजय-अध्याय 51, पृष्ठ 204-206

4 ऋग्वेद 7.56.16

5 तत्रैव 7.61.5

वैदिकेतर परम्परा के परिचायक प्रतीत होते हैं।[1] यही विशेषण कालान्तर में यक्षों की भीमकाय प्रतिमा के लक्षण के मूल में स्वीकार कर लिये गये। यक्षों की परम्परा भले ही प्राक्वैदिक रही हो, परन्तु ऋग्वेद के समय तक इन्हें अर्द्ध देवता के रूप में अवश्य स्वीकार कर लिया गया था। अथर्ववेद में यक्षों के लिए 'ब्रह्म' शब्द का प्रयोग प्राप्त होता है।[2] इससे स्पष्ट है कि यक्ष उपासना को आर्यों की मुख्य धारा में समाहित करने की प्रक्रिया प्रारम्भ हो चुकी थी। अमृत से गिरी हुयी, अपराजिता ब्रह्मपुरी में निवास करने वाले आत्मनवद्यक्ष का भी उल्लेख अथर्ववेद में हुआ है। इसी ब्रह्मपुरी में हिरण्यकोश था।[3] अथर्ववेद का यह उल्लेख अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। वीर, पहलवान तथा ब्रह्म के रूप में यक्षों की उपासना-परम्परा के जो अवशेष अद्यावधि उपलब्ध हैं तथा यक्ष और यक्षिणियों की उपासना से धन प्राप्त करने की जो परम्परा अधुनापि प्राप्त होती है, उसके मूल में अथर्ववेद के वर्णनों को स्वीकार किया जा सकता है। अथर्ववेद के कतिपय उद्धरणों से[4] यह ज्ञात होता है कि यक्षोपासना इतनी अधिक व्यापक थी कि उसे 'ब्रह्म' के साथ सम्बद्ध कर दिया गया। इस प्रकार 'ब्रह्मयक्ष' सर्वव्यापी आत्मन् का पर्याय बन गया। सुत्तनिपात में भी यक्ष की महत्ता का उल्लेख करते हुए उसे परमशुद्ध माना गया है। पूर्णज्ञान प्राप्त तथागत की तुलना यक्ष से की गयी है।[5] अथर्ववेद ऋग्वैदिक आर्यो तथा आदिम परम्पराओं के पारस्परिक सामञ्जस्य तथा संक्रमण का प्रतिनिधित्व करता है। इसीलिये इसमें एक ओर यक्षों से सम्बन्धित ऐसी विशेषताओं का उल्लेख मिलता है जो यक्षों को बुरी आत्मा अथवा हानिकारक शत्रु के रूप में चित्रित करती है।

---

1 तत्रैव 4.3.13 तथा 5.70.4

2 अथर्ववेद 1.32.1-4

3 तत्रैव 10.2.29-33

4 तत्रैव 10.8.43

5 सुत्तनिपात 478 तथा 875, उद्धृत कुमार स्वामी, द यक्ष आफ दि वेदाज एण्ड उपनिषदाज,क्वार्टरली जर्नल आफ दि मिथिक सोसायटी, जिल्द 28, भाग 4, पृष्ठ 235

शार्पेन्तिये ने [1] ऋग्वेद में वर्णित [2] 'नैचाशाख' की व्याख्या करते हुए यह वर्णित किया है कि यह बरगद के पेड़ के नीचे यक्ष उपासना करने वालों का एक ऐसा समूह था जो मानव बलि दिया करते थे। अथर्ववेद में [3] 'अवरे ये ते शाखां उपासते' का उल्लेख मिलता है। इससे स्पष्ट है कि यक्ष की उपासना करने वालों को प्रारम्भिक स्तर पर निम्न दृष्टि से देखा जा सकता था। कालान्तर में यक्षों को अर्द्ध देवता के रूप में स्वीकार किये जाने के मूल में यही धारणा विद्यमान थी। अथर्ववेद में महत्यक्ष को राष्ट्रधर अथवा राजाओं के द्वारा बलि देने का उल्लेख प्राप्त होता है [4] जिससे यह अनुमान ग्रहण किया जा सकता है कि यक्ष की अद्भुत शक्तियों से आशंकित होकर विघ्न निवारण हेतु उसकी उपासना सामान्य जन के साथ-साथ विशिष्ट वर्ग में भी विद्यमान थी। दीघनिकाय में [5] भी आदित्य उपस्थान के साथ महत् नामक देवता के उपस्थान का उल्लेख है। बुद्ध ने महदुपट्ठान या यक्ष-पूजा को तिरच्छानविज्जा और मि ऋछाजीवा कहा है, जो जनसाधारण में फैली हुयी थी। यक्षों की उपासना परम्परा ३ ार्यो से भिन्न होते हुए भी जनमानस में इस सीमा तक प्रतिष्ठित थी कि उसकी ॰पेक्षा सम्भव नहीं थी। अथर्ववेद में [6] वैश्रवण कुबेर और उनके पुत्र कावेरक को इतरजन कहा गया है। इससे यह ध्वनित होता है कि वैश्रवण कुबेर और उनके अनुयायी यक्ष-परम्परा से ही सम्बन्धित थे। धीरे-धीरे वैदिक कर्मकाण्डों के अनुयायी भी यक्ष तथा उनसे सम्बन्धित कर्मकाण्डों तथा उपासना पद्धतियों को स्वीकार कर उसे मान्यता प्रदान करते थे। इस प्रक्रिया में यदि एक ओर कतिपय यक्षों को अत्यधिक प्रतिष्ठा प्राप्त हुयी तो कुछ यक्ष भूत इत्यादि की ही श्रेणी

---

1 जर्नल ऑफ रायल एशियाटिक सोसायटी 1930, पृष्ठ 335-4‘5

2 ऋग्वेद 3.53.14

3 अथर्ववेद 10.7.21

4 तत्रैव 10.8.15

5 सिंह अमरेन्द्र कुमार, पृष्ठ 27

6 अथर्ववेद 8.10.5-9;11

में रह गये। पाणिनि के एक उद्धरण से यक्ष और वैदिक संस्कृति के पारस्परिक समन्वय पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है।

शतपथब्राह्मण में कुबेर को बलि प्रदान करने का उल्लेख किया गया है जिसमें यह कहा गया है कि कुबेर को बलि देने के पहले सर्पों को प्रसन्न करने के लिए बलि देनी चाहिए तत्पश्चात् कुबेर को और उसके पश्चात् असुरों को बलि दी जानी चाहिए। इस मंत्र में कुबेर का सम्बन्ध सर्पों एवं असुरों से भी ज्ञात होता है।[1] इसी प्रकार स्वर्ण, रजत, सुन्दर, वस्त्र, हीरे, वैदूर्य तथा मुक्तामणि इत्यादि के खो जाने अथवा किसी कार्य के प्रारम्भ करने में उत्पन्न होने वाले विघ्न का सम्बन्ध कुबेर से स्थापित करते हुए इसके लिए प्रायश्चित करने का निर्देश भी शतपथ ब्राह्मण में प्राप्त होता है।[2] तैत्तिरीय आरण्यक में कुबेर के लिए विशिष्ट यज्ञ का विधान प्राप्त होता है। कुबेर से यह प्रार्थना की गयी है कि वह ऐसे शत्रुओं को जो आर्यो के कार्यो में विघ्न डालते हैं, उन्हें दूर रखें।[3] इसी प्रकार कुबेर के दैवीय रथ का भी विवरण तैत्तिरीय आरण्यक में प्राप्त होता है जिसमें अनेक पहिये तथा एक हजार घोड़े लगे हुए थे।[4]

इस प्रकार यदि अथर्ववेद से लेकर के आरण्यक ग्रन्थों तक कुबेर से सम्बन्धित विवरणों के आलोचनात्मक परीक्षण से यह ज्ञात होता है कि कुबेर धीरे-धीरे अर्द्धदेव की श्रेणी से ऊपर उठकर पूर्ण देवत्व की श्रेणी को प्राप्त कर रहे थे। कुबेर की 'कामकाम' अथवा 'कामेश्वर' उपाधियाँ भी इस सन्दर्भ में अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रतीत होती है। सम्भवतः उस समय तक यह धारणा कुबेर के सम्बन्ध में दृढ़ हो चुकी थी

---

1 शतपथ ब्राह्मण, 13.4.3.10

2 "सः उदीचीं दिशम् अन्वावर्तते। अथ वदास्यो कनकरजत वरवस्त्र वज्रवैदूर्यमुक्तामणि वियोगो भवति। आरम्भावा विपद्यन्ते।"

शतपथ ब्राह्मण, 5.6.1-2

3 "तिरोधेहि सपत्नाननः। ये अपो स्नन्ति केचन्।"

तैत्तिरीय आरण्यक, 1.31.2

4 "त्वाष्ट्रीं मायां रथम्। पुरुश्चक्रम सहस्राश्वम् "

तत्रैव 1.31.2

कि वैश्रवण-यजन् के ज्ञान से मनुष्य के सभी कामनाओं की पूर्ति हो जाती है। सूत्रग्रन्थों में कतिपय ऐसे उदाहरण प्राप्त होते हैं जिससे कुबेर के आर्येतर स्वरूप पर प्रकाश पड़ता है। हिरण्यकेशी गृह्यसूत्र में जातक उत्पन्न होने के समय विविध प्रकार के पूजन तथा वस्तुओं को अर्पित करने का उल्लेख प्राप्त होता है। इन वस्तुओं को प्राप्त करने वालों में 'कौबेरकों' का ही उल्लेख किया गया है। तथा उन्हें राक्षसराज के द्वारा प्रेषित कहा गया है।[1] इन उल्लेखों में महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि कौबेरकों का उल्लेख ऐसे प्राणियों के साथ हुआ है जो सामान्यतया निन्दनीय माने जाते थे।

गृह्यसूत्रों में नवनिर्मित भवन में प्रवेश करते समय कुबेर की भी पूजा से सम्बन्धित कृत्यों का विवरण प्राप्त होता है। जैसे ही परिवार के सदस्य नये भवन में प्रवेश करते हैं, भवन का स्वामी कुबेर की प्रार्थना करता है तथा यह उच्चरित करता है कि हे हिरण्यवर्ण हरयक्ष महाराज कुबेर मुझे अर्थ प्रदान करो।[2] कौथुम गृह्यसूत्र में वैश्रवण की प्रार्थना द्वारा भूतों, प्रेतों को दूर करने का भी उल्लेख मिलता है।[3] इससे स्पष्ट है कि गृह्यसूत्रों की रचना के समय तक कुबेर न केवल आर्य परम्परा में स्वीकार कर लिये गये थे बल्कि उन्हें सभी प्रकार की दैवीय शक्तियों से सम्पन्न भी मान लिया गया था।

पाणिनि ने[4] सेवल, सुपरि और विशाल नामक यक्षों का उल्लेख करते हुए, इनके साथ-साथ वरुण और अर्यमा नामक देवताओं का उल्लेख किया है जो

---

1 ''कौबरेका विश्ववासो रक्षोराजेन् प्रे षितः। ग्रामान् सजातयो यान्ति पश्यन्तः परिजाकृतान्।''

हिरण्यकेशी गृह्यसूत्र, 2.3.7

2 ''त्वदत्तं वै वनं राज्ये त्वत्पुत्रम् इह जीवते। हिरण्यवर्ण हरयक्ष अर्थं मह्यं साधय स्वाहा। कुबेराय स्वाहा। महाराजाय स्वाहा। वैश्रवणाय स्वाहा।''

भारद्वाज गृह्यसूत्र, 2.5

3 कौथुम गृह्य सूत्र, 4.25.34

4 पाणिनि, अष्टाध्यायी- 3.84

निःसन्देह ऋग्वैदिक देवता थे। इसी प्रकार आटानाटीय सूची में [1] मणिभद्र और आल्वक यक्षों के साथ-साथ सोम, वरु ण, इन्द्र और प्रजापति को भी परिगणित किया गया है। चारों दिशाओं की उपासना भी प्राचीन लोकधर्म का महत्वपूर्ण अंग थी। प्रत्येक दिशा का अधिपति देवता होता था। वैदिक परम्परा के अनुसार पूर्व दिशा का स्वामी अग्नि, दक्षिण का इन्द्र, पश्चिम का वरुण तथा उत्तर का सोम था [2] परन्तु लोक मान्यता इससे भिन्न थी जो मुख्यतः जन्म विश्वास में प्रचलित यक्षों की उपासना पर आधारित थी। यक्ष ग्राम अथवा सन्निवेश विशेष के सीमा रक्षक होने के साथ-साथ भिन्न दिशाओं के भी स्वामी थे। बोद्ध साहित्य तथा भरहुत से उपलब्ध अभिलेखों से यह ज्ञात होता है कि पूर्व दिशा का लोकपाल गन्धर्वो का राजा धृतराष्ट्र, पश्चिम में नागों का राजा विरुपाक्ष, उत्तर में यक्षों का राजा कुबेर और दक्षिण में लोकपाल कुम्भाण्डों का राजा विरूढक था। यह उल्लेखनीय है कि अथर्ववेद में इनकी उपासना के अनेक उल्लेख मिलते हैं।[3] असित तिरश्चिराज, पृदाकु, स्वज, कल्माषग्रीव और स्वीय को छः दिशाओं के रक्षिता देव के रूप में स्वीकार करना भी इसी तथ्य का परिचायक है कि लोक परम्परा के यक्ष तथा अन्य अर्द्धदेवों को वैदिक परम्परा में मान्यता मिली थी। [4] यक्षों के स्वरूप से सम्बन्धित विवेचना से स्पष्ट है कि यक्ष की मान्यता बहुविध रूपों में थी और धीरे-धीरे यक्ष कुबेर और उनके अनुचर के रूप में परिगणित किये जाने लगे। यह उल्लेखनीय है कि ऋग्वेद में एक स्थल पर यक्षों को राजा कहा गया है। [5] शतपथ ब्राह्मण में कुबेर वैश्रवण को भी राजा कहा गया है तथा 'रक्षस' उनकी प्रजा के रूप में चित्रित है।[6] आश्वलायन श्रौतसूत्र तथा शांखायन

---

1 दीघनिकाय 3.195

2 अथर्ववेद 3.27.1-6 तथा 12.3.55-60

3 तत्रैव 11.9-17 तथा 8.6-15

4 कृष्ण यजुर्वेद तैत्तिरीय संहिता 5.5-10

5 ऋग्वेद 10,8,15

6 शतपथ ब्राह्मण 13.4.3.10

श्रौतसूत्र में भी कुबेर को 'राजा' के रूप में चित्रित किया गया है।[1] परवर्ती उपनिषदों में कुबेर को उत्तर दिशा का स्वामी कहा गया है तथा उन्हें पीत वर्ण, हाथों में गदा तथा अंकुश धारण करने वाला चित्रित किया गया है। वे अश्वलक नामक राक्षस से मनुष्यों की रक्षा करते हैं। उनकी शक्ति 'कौबेरी' का भी उल्लेख प्राप्त होता है। वह भी हाथों में गदा एवं अंकुश धारण किये रहती है। कुबेर के द्वारा बर्फ से बने हुए शिव लिंग की उपासना का भी विवरण प्राप्त होता है। [2] यक्ष ओर कुबेर के पारस्परिक सम्बन्धों का स्पष्टीकरण दोनों के धन से सम्बन्धित होने की मान्यता में ही देखा जा सकता है। भारतीय परम्परा में यक्ष तथा यक्षिणियाँ धन प्राप्त करने तथा भूमि के अन्दर निहित धन की रक्षा करने के लिए प्राचीन काल से ही लोकविश्रुत हैं। अथर्ववेद में यक्षों की नगरी में ' हिरण्यकोश ' होने का उल्लेख उनके धन से सम्बन्धित होने का प्राचीनतम प्रमाण है। [3] कुबेर की भी मान्यता इसीलिए अधिक विकसित हुई। उनका भी सम्बन्ध धन से स्थापित कर दिया गया था। मनोवांछित धन प्रदान करने में समर्थ कुबेर शीघ्र ही लोक परम्परा में प्रतिष्ठित हो गये। यह उल्लेखनीय है कि यक्षों का सम्बन्ध अमृत से भी माना गया था।[4] कालान्तर में भी यक्ष-यक्षिणियों की प्रतिमाओं के हाथ में अमृतघट का प्रदर्शन कलाकारों द्वारा उनके अमरत्व गुण को प्रदर्शित करने के लिए किया गया था। कुबेर का भी सम्बन्ध अमृत से स्थापित कर दिया गया। कुबेर के अमृत-तत्व का विवेचन महाभारत के उस कथन से स्पष्ट होता है जिसमें यह उल्लेख है कि अमृत एक प्रकार का पीला मधु था जिसे मक्खियाँ नहीं बनाती थीं। वह घड़े में बन्द रहता था और सर्प उसके रक्षक थे तथा कुबेर को वह सर्वाधिक प्रिय था। जम्भ साधकों की यह मान्यता थी कि इसको खाकर मनुष्य अमर हो जाता था,

---

1 आश्व० श्रौतसूत्र 1.7.1; शांखायन श्रौतसूत्र 16.2.17

2 देशाई, द माइनर डीटीज इन दि लेटर उपनिषदाज, भारतीय विद्या, भाग 27, अंक 1-4, पृष्ठ 29

3 अथर्ववेद 10.2.29-33

4 अथर्ववेद 10.2.30

वृद्ध युवा हो जाता था तथा नेत्रहीन नेत्र युक्त हो जाता था।[1] पितामह ब्रह्मा के द्वारा वैश्रवण कुबेर को अमरत्व, धन का आधिपत्य और लोकपालत्व तीनों वरदान प्रदान करना भी इसी तथ्य का परिचायक है।[2] प्रारम्भिक स्तर पर विकसित कुबेर और यक्ष की एकात्मकता कालान्तर मे सम्पूर्ण भारतीय वाङ्मय में परिलक्षित होती है। कुबेर की एक उपाधि 'महाराज' थी और उनको दी जाने वाली बलि 'महाराज बलि' कही जाती थी। पाणिनि ने भी महाराज को एक देवता कहा है।[3] इस महाराज देवता की उपासना करने वाले भक्तों को 'महाराजिक' कहा जाता था।[4] पालि साहित्य में भी 'चत्वारोमहाराजानों' का उल्लेख मिलता है जिसमें एक वैश्रवण अर्थात् कुबेर हैं। भरहुत अभिलेख में इन्हें यक्ष कहा गया है। कालिदास ने भी कुबेर को अलकापुरी के राजा के रूप में चित्रित करते हुए उन्हें यक्षाधिपति कहा है।[5]

पाणिनि ने कुबेर को गुह्यपति कहा है जो कुबेर के भूमि के अन्दर निहित धन से सम्बन्धित होने का परिचायक है।[6] महाभारत में वर्णित कुबेर के अन्य अभिधान धनाध्यक्ष,[7] धनपति,[8] धनानांईश्वर,[9] धनाधिप,[10]

---

1 महाभारत, उद्योग पर्व 62.23.25

2 तत्रैव, वनपर्व, 258.15

3 पाणिनि अष्टाध्यायी 4.2.35

4 तत्रैव अष्टाध्यायी 4.3.97

5 संतप्तानां त्वमसि शरणं तत्पयोद ! प्रियायाः
सन्देशं में हर धनपतिक्रोध विश्लेषितस्य।
गन्तव्या ते 'वसतिरलका नाम यक्षेश्वराणां
बाह्योद्यानस्थितहरशिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्या ।।

कालिदास, पूर्वमेघ, श्लोक 7

6 पाणिनि, अष्टाध्यायी, 3.26

7 महाभारत 1.179.18

8 तत्रैव, 1.216.16

9 तत्रैव 2.10.28-33

10 तत्रैव 13.19.52

धनेश्वर,[1] धनाधिपति,[2] धनेश, धनद,[3] धनदेश्वर,[4] धनाधिगोप्तृ,[5] नरवाहन,[6] निधिप,[7] वित्तगोप्तृ,[8] गदाधर, वित्तपति,[9] वित्तानांपति,[10] वित्तेश,[11] वैश्रवण,[12] यक्षराज, गुह्यकाधिप, यक्षपति, यक्षप्रवर, यक्षरक्षोधिप, यक्षराक्षसभर्तृ, यक्षाधिप, यक्षाधिपति,[13] राक्षसाधिपति, राजराजन् तथा राक्षसराज आदि हैं। महाभारत में प्रयुक्त ये उपाधियाँ कुबेर और यक्ष की एक ही उपजीव्यता तथा एक रूपता की निर्णायक प्रमाण हैं। अमरकोश में भी कुबेर की उपाधि 'यक्षराट्' तथा 'गुह्यकेश्वर' प्राप्त होती है। [14] बौद्धग्रन्थ महामायूरी में वैश्रवण को स्पष्ट रूप से यक्ष कहा गया है तथा इसका स्थान संकिसा स्वीकार किया गया है।[15]

यद्यपि बौद्ध-धर्म में प्रारम्भ में महदउपट्ठान या यक्ष-पूजा को तिरच्छानविज्जा तथा मिच्छाविज्जा अर्थात् तिरस्कृत और मिथ्या विद्या कहा गया है किन्तु धीरे-धीरे

---

1 तत्रैव 1.187.6

2 तत्रैव 3.161.30

3 तत्रैव 11.51

4 तत्रैव 2.10.29

5 तत्रैव 22.192.34

6 तत्रैव 3.89.5

7 तत्रैव 12.207.35

8 तत्रैव 8.10.35

9 तत्रैव 7.185.25

10 तत्रैव 8.34.32

11 तत्रैव 6.34.23

12 तत्रैव 1.1.166

13 तत्रैव, वनपर्व, अ० 161.17

14 अमरकोश 1.1.38-39

15 अग्रवाल वी०एस०, प्राचीन भारतीय लोकधर्म, पृष्ठ 127 तथा मिश्र रमानाथ, यक्ष कल्ट एण्ड आइकोनोग्रैफी, परिच्छेद 1, पृष्ठ 167-171

यक्षों की परम्परा उनमें भी प्रतिष्ठित हो गयी। महानिद्देश में कुबेर के लिए भगवान् का प्रयोग किया गया है और साथ ही साथ मणिभद्र नामक यक्ष को भी भगवान् कहा गया है।[1] सुत्तनिपात में अलकापुर के निवासी कुबेर को यक्षों का अधिपति कहा गया है। धर्म धातु बागीश्वर मण्डल में यक्षों के जिन आठ अधिपतियों का उल्लेख हुआ है उनमें कुबेर को सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना गया है।[2] इसी प्रकार जैन ग्रन्थ अंगविज्जा में भी वरुण, सोम, इन्द्र इत्यादि के समकक्ष वैश्रवण अर्थात् कुबेर का उल्लेख हुआ है।[3] इससे स्पष्ट है कि यक्ष और कुबेर की अभिन्नता तथा एकात्मकता को केवल वैदिक और पौराणिक साहित्य में ही नहीं,अपितु जैन और बौद्ध साहित्य में भी इसी परम्परा को स्वीकार किया गया है। यक्ष–परम्परा का प्रभाव कुबेर के व्यक्तित्व के साथ–साथ उनके स्थूल अभिव्यक्ति में भी परिलक्षित होता है। यक्षों के स्वरूप की जो कल्पना विविध साक्ष्यों में प्राप्त होती है उसी के अनुरूप प्रारम्भिक कुबेर प्रतिमायें भी निर्मित की गई।

यक्षों के मानवीय स्वरूप तथा उनकी आलौकिक शक्तियों के सन्दर्भ में विविध उल्लेख प्राप्त होते हैं। वैदिक संहिताओं में यक्ष को अद्‌भुत् स्वरूप, सुन्दर तथा महान् कहा गया है। ऋग्वेद में एक स्थल पर यह उल्लेख मिलता है कि जो मरूतदेव अश्वों के समान वेग से गमन करते हैं वे यक्ष की भांति सुन्दर हैं।[4] गोभिल गृह्यसूत्र में भी यक्षों को प्रिय तथा सुन्दर कहा गया है।[5] इसके अतिरिक्त इन्हें महाकाय तथा अद्‌भुत् भी अनेक स्थलों पर कहा गया है।[6] महाभारत में यक्षों को विरु पाक्ष, महाकाय, ताड़ के वृक्ष के सदृश ऊँचे तथा पर्वत समान कहा गया है।[7] हलायुध कोश

---

1 महानिद्देश, पृष्ठ 89

2 भट्टाचार्य, बी०, इण्डियन बुद्धिस्ट आइकोनोग्रैफी, पृष्ठ 379

3 अंगविज्जा, अध्याय 58, पृष्ठ 223-24

4 ऋग्वेद 7.56-16

5 गोभिल गृह्यसूत्र 3.4.28 तथा ब्राह्यायण गृह्यसूत्र 3.1.25

6 ऋग्वेद 5.70.4; अथर्ववेद 10.8.15; महाभारत आदिपर्व 21.12 इत्यादि।

7 महाभारत वनपर्व 297.20 21

में यक्षों को कुबेर के किंकर के रूप में स्वीकार करते हुए, उन्हें पर्वत सदृश, विकृत मुख वाले, पिंगलाक्ष, विशाल उदर वाले तथा विस्तृत स्कन्ध वाले कहा गया है।[1] जातकों में यक्षों को रक्ताक्ष, ताड़ वृक्ष की भाँति उन्नत कटोरे सदृश बड़ी बड़ी आँख वाले, मुख से बाहर निकले हुए दो विस्तृत दन्त युक्त, बाझ के सदृश नासिका वाले कहा गया है।[2] पुराणों में प्रायः उनके भयानक तथा विभत्स स्वरूप का वर्णन मिलता है जिनमें उन्हें विशाल दन्त वाले अत्यन्त विस्तीर्ण मुख वाले, चिपटे नासिका वाले इत्यादि कहा गया है।[3] यक्षों के स्परूप की विशेषताओं को प्रारम्भिक कलावशेषों में भी परिलक्षित किया जा सकता है। हाप्किन्स ने यह सम्भावना व्यक्त की है कि कुबेर प्रारम्भिक स्तर पर पर्वतीय स्थानों में निवास करने वाले अर्द्ध देवता थे। यूनानी कैबीरोयी तथा कुबेर के व्यक्तित्व में समानता की ओर भी उन्होंने संकेत किया है। [4] क्रेशमेर ने यह सम्भावना व्यक्त की है कि कुबेर की अवधारणा तथा उनसे सम्बन्धित पासा खेलना इत्यादि भारतीयों ने हित्तियों तथा मितन्नियों से ग्रहण किया था। यद्यपि उन्होनें इस अवधारणा के समर्थन में ऐतिहासिक प्रमाणों का उल्लेख नहीं किया है [5] इसी प्रकार मेरहोफर ने यह उल्लेख किया है कि कुबेर न तो भारोपीय परम्परा से

---

1 ''आजग्मुर्यक्षानिकराः कुबेरवर किंकराः। शैलज प्रस्तरकरा अञ्जनाकार भूर्तयः।
विकृताकारबदनाः पिङ् लाक्षामहोदराः। स्फटिका रक्तवेशांश्च दीर्घस्कन्धाश्च केचन्।''

हलायुधकोशः, जोशी, जयशंकर(स०) हिन्दी समिति सूचना विभाग, उ०प्र०।

2 मेहता, रतिलाल, प्री० बुद्धिस्ट इण्डिया पृष्ठ 324

3 विष्णुधर्मोत्तर पुराण Vol-1,197.5-14; स्कन्द पुराण काशी खण्ड 8.13.14; वायुपुराण 70.56.63; ब्रह्माण्ड पुराण उपोद्धातपाद 3.7.125 तथा ब्रह्मवैवर्त पुराण जन्म खण्ड 10; मत्स्य पुराण 189.4.11

4 संस्कृत कबैरास आर कुबेरास एण्ड ग्रीक कबेइरोस, जर्नल ऑव अमेरिकन ओरियन्टल सोसाइटी XXXIII,55-70

5 जोशी, जे०आर०, माइनर वैदिक डीटीज, पृष्ठ 98

सम्बन्धित थे और न ही हित्ती तथा मितन्नी अवधारणा से ग्रहण किये गये थे बल्कि कुबेर शब्द आस्ट्रो एशियाटिक 'कुब्ज' अथवा 'कुभ्र' से विकसित हुआ है।[1] ऐसा प्रतीत होता है कि कुबेर शब्द में मूल धातु 'कुप्' है। 'कुप्' धातु का अर्थ उभरना या ऊपर उठना है। 'कुप्' से ही 'कुब्ज' या 'कुभ्र' इत्यादि शब्द निर्मित हुए हैं। 'कुभ्र' से ही कुबेर शब्द की भी व्युत्पत्ति प्रतीत होती है। व्युत्पत्ति परक यह विशेषता कुबेर की प्रतिमाओं में भी दृष्टिगत होती है। उनका उदर प्रायः उभरा हुआ ही प्रदर्शित किया गया है जो समृद्धि का प्रतीक है।[2]

कुबेर के मानवीय स्वरूप के निर्माण में भी यक्षों की विशेषताएँ ही सर्वाधिक प्रभावी कारक प्रतीत हुई। कुबेर शब्द का अर्थ ही है- कुत्सित बेर अर्थात् भद्दी आकृति वाला। विष्णुधर्मोत्तर पुराण में कुबेर की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए, उन्हें लम्बोदर , पिङ्गलाक्ष, दाढ़ी और मूँछ वाले तथा मुख से बाहर निसृत होते हुए दो विस्तृत दन्तयुक्त वाला कहा गया है।[3] ये विशेषताएँ स्पष्टतः यक्षों की थीं जिन्हें यथारूप कुबेर के प्रतिमालक्षण में ग्रहण कर लिया गया।[4] परन्तु उपलब्ध प्रतिमा अवशेषों में उनके महोदर या घटोदर, महाकाय तथा विस्तृत आँख वाले, आयताक्ष स्वरूप को सर्वत्र प्रदर्शित किया गया है। साथ ही साथ प्रारम्भिक स्तर पर यक्षों के धन से सम्बन्धित होने की मान्यता उनके अनुरूप कुबेर धनद के स्वरूप के परिचायक रूप में नकुलक या धन की थैली को भी प्रदर्शित किया गया है परन्तु उन्हें दो विस्तृत द्रंष्ट्र से युक्त कहीं भी नहीं प्रदर्शित किया गया है। सम्भवतः इसका कारण यह था कि प्रतिमानिर्माण की परम्परा प्रारम्भ होने के समय तक कुबेर अर्द्धदेव से देव

---

1 द्वारा उद्धृत तत्रैव, पृष्ठ 98-93

2 प्रस्तुत सुझाव प्रो० हरिशंकर त्रिपाठी, संस्कृत विभाग, इलाहाबाद, विश्वविद्यालय द्वारा प्राप्त हुआ है। लेखक आपका आभारी है।

3 विष्णुधर्मोत्तर पुराण 53,3,4

4 मेहता, रतिलाल, प्री० बुद्धिस्ट इण्डिया, पृष्ठ 324

के रूप में प्रतिष्ठित हो गये थे। इसी प्रकार रामायण में वर्णित कुबेर का एकाक्ष स्वरूप भी प्रतिमावशेषों में प्राप्त नहीं होता है।[1]

कुबेर की उपासना से सम्बन्धित कर्मकाण्ड:-

कुबेर का व्यक्तित्व प्रारम्भिक स्तर पर यक्षों से सम्बन्धित होने के कारण अर्द्धदेव का ही था परन्तु धीरे-धीरे कुबेर को स्वतंत्र देवता के रूप में स्वीकार कर लिया गया। अथर्ववेद की रचना के समय तक उनकी उपासना से सम्बन्धित मंत्रों तथा कर्मकाण्डों का स्वतंत्र स्वरूप निर्मित हो चुका था। यह उल्लेखनीय है कि अथर्ववेद में कुबेर की प्रचलित संज्ञा वैश्रवण ही प्राप्त होती है। अथर्ववेद में कुबेर के पुत्र रजतनाग का उल्लेख मिलता है।[2] अथर्ववेद में कुबेर को धनपति, विशगपति, राजा इत्यादि उपाधियों से विभूषित किया गया है।[3] इनके द्वारा शत्रुओं के विनाश, वर प्रदान करना तथा उनके क्रोध से परित्राण पाने के उल्लेख इस ग्रन्थ में अनेक स्थलों पर द्रष्टव्य है।[4] कृष्ण यजुर्वेद से सम्बन्धित तैत्तिरीय आरण्यक में वैश्रवण यज्ञ का उल्लेख किया गया है तथा चार मंत्रों के द्वारा उनके आह्वान का विधान उल्लिखित है। प्रथम मंत्र में वैश्रवण के द्वारा शत्रुओं के विनाश तथा पुण्यकार्यों में विघ्न उपस्थित करने वालों के विनष्ट होने की प्रार्थना की गयी है। द्वितीय मंत्र में कुबेर के सहस्रचक्रों से युक्त तथा सहस्र अश्वों वाले रथ का उल्लेख मिलता है जिसे त्वष्ट्रा ने निर्मित किया था। तीसरे मंत्र में कुबेर के द्वारा धन, गाय, हाथी, अश्व, स्वर्ण इत्यादि प्रदान करने का उल्लेख किया गया है। इसमें कुबेर को अन्नमुखी लक्ष्मी को धारण किये हुए वर्णित किया गया है। चौथे मंत्र में कुबेर के निवास स्थान के रूप में सुदर्शन, क्रौञ्च तथा मैनाक नामक पर्वतों का उल्लेख मिलता है तथा उनके नगर को 'शतद्वाट्टार' कहा

---

1 वाल्मीकि रामायण, उत्तरखण्ड, 13.30

2 अथर्ववेद, 8.14.10-11 एवं 8.10-28

3 तत्रैव 4.22.3

4 तत्रैव 2.36.6;5.23.2;10.10.11;19.35.2 इत्यादि।

गया है[1] तैत्तिरीय आरण्यक का यह उल्लेख अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण है तथा कुबेर के व्यक्तित्व के अनेक नवीन आयामों को उद्घाटित करता है। इन मंत्रों में कुबेर के रथ को सहस्त्र चक्रों से युक्त तथा त्वष्ट्रा के द्वारा निर्मित होने का उल्लेख ऋग्वेद के उस वर्णन से प्रभावित प्रतीत होता है जिसमें परम पुरुष को सहस्रशीर्ष तथा सहस्रपाद कहा गया है।

सर्वाधिक महत्वपूर्ण कुबेर के आह्वान से सम्बन्धित तृतीय मंत्र है जिसमें उन्हें अन्नमुखी लक्ष्मी को धारण किये हुए चित्रित किया गया है। अन्नमुखी लक्ष्मी का सम्बन्ध कृषि से था और इस रूप में कुबेर को भी कृषि परक देवता के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। आह्वान से सम्बन्धित चौथे मंत्र में कुबेर के निवास स्थान के रूप में सुदर्शन, क्रौञ्च तथा मैनाक पर्वत का उल्लेख एक ओर इस तथ्य का परिचायक है कि कुबेर की उपासना भारत वर्ष में एक व्यापक क्षेत्र में प्रचलित थी तथा सम्भवतः उनकी उपासना करने वालों का सम्प्रदाय भी विकसित हो चुका था। इस दृष्टि से अथर्ववेद में प्रयुक्त 'कौवेरक' शब्द भी विशेष महत्वपूर्ण है। [2] तैत्तिरीय आरण्यक के बाद के मंत्रों में कुबेर-यज्ञ के सन्दर्भ में अग्निस्थापन, बलिहरण तथा उपस्थापन इत्यादि का उल्लेख किया गया है। तैत्तिरीय आरण्यक के इन मंत्रों से यह निष्कर्ष निकालना अस्वाभाविक नहीं प्रतीत होता कि इस समय तक कुबेर को आर्यो ने पूर्णतया वैदिक देवों की कोटि में आत्मसात करके उन्हें यज्ञ के द्वारा भी पूजित मान लिया था। अथर्ववेद परिशिष्ट में भी कुबेर की उपासना से सम्बन्धित अनेक श्लोक प्राप्त होते हैं। इनमें कुबेर के अट्टारह स्वरूप [3] तथा चैत्र तथा बैशाख मास में उनकी उपासना,[4] उनके उत्तर दिशा में निवास करने, गदा धारण करने[5] इत्यादि का उल्लेख मिलता है। शतपथ ब्राह्मण की माध्यन्दिनी संहिता में भी वैश्रवण अर्थात् कुबेर की

---

1 तैत्तिरीय आरण्यक 1-31

2 अथर्ववेद 8.14.10-11

3 अथर्ववेद परिशिष्ट 55.1.4

4 तत्रैव 55.5.1

5 तत्रैव परिशिष्ट 36.1 9

उपासना से सम्बन्धित अनेक सन्दर्भ प्राप्त होते हैं।[1] इसी प्रकार शांखायन गृह्यसूत्र तथा कौशिकी गृह्यसूत्र में भी उत्तर दिशा के स्वामी तथा धनपति कुबेर की उपासना का उल्लेख मिलता है।[2] शांाखायन श्रौत सूत्र में वैश्रवण कुबेर के लिए तथा कुबेर वैश्रवण की प्रसन्नता के लिए आहुति देने का विधान प्राप्त होता है।[3] गृह्यसूत्रों में विवाह संस्कार के समय सम्पादित होने वाली सप्तपदी के साथ-साथ वैश्रवण कुबेर एवं ईशान की भी पूजा परम्परा का वर्णन किया गया है।[4]

कुबेर की उपासना महाकाव्यों तथा पुराणों के विविध सन्दर्भों से भी परिलाक्षित होती है। कुबेर के दिक्पाल स्वरूप का विकास भी इस समय तक हो चुका था। महाभारत का यह उल्लेख कि पितामह ब्रह्मा ने कुबेर को अमरत्व, धन का आधिपत्य तथा लोकपालत्व तीन वरदान प्रदान किये थे। कुबेर की उपासना सम्बन्धी धारणा के विकास में सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण है।[5] महाभारत में एक स्थल पर यम, कुबेर, वरुण, इन्द्र का उल्लेख चार दिक्पालों के रूप में हुआ है।[6] अन्यत्र कुबेर के स्थान पर सोम को लोकपाल के रूप में मान्यता प्रदान की गयी है।[7] उद्योग पर्व में कुबेर को आहुति देने का उल्लेख प्राप्त होता है।[8] मनुस्मृति में भी कुबेर को आठ दिक्पालों में भी एक स्वीकार किया गया है।[9] इसी प्रकार अमरकोश से भी ज्ञात होता है कि इस

---

1 माध्यन्दिनि संहिता 13.4.3.10

2 शांखायन गृह्यसूत्र 2.14.17 तथा कौशिकी गृह्यसूत्र 3.10.16

3 तत्रैव 16.2.17

4 कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया भाग 1, पृष्ठ 208

5 महाभारत, वनपर्व 258.15

6 महाभारत 7.70.45 तथा 1.74.85, द्रष्टव्य हाप्किन्स, इपिक माइथालाजी, पृष्ठ 149

7 महाभारत, कर्णपर्व 45,31-32

8 तत्रैव उद्योगपर्व 16.26

9 मनुस्मृति 7.4-7

समय तक कुबेर के दिक्पालत्व स्वरूप का अभिनिश्चयन हो चुका था।[1] 'रोच ' नामक देवताओं की सूची वैश्रवण रोच का उल्लेख कुबेर की स्वतंत्र उपासना परम्परा का परिचायक है। सम्भवतः वैश्रवण रोच का रहस्य धन प्राप्ति से ही रहा होगा, क्योंकि कुबेर को धन का देवता सभी पौराणिक साक्ष्यों में स्वीकार किया गया है। 'रोच-व्रत ' में केवल रात्रि में भोजन करने का विधान है तथा आहार काल के अतिरिक्त जल का भी निषेध है। यह व्रत वर्ष पर्यन्त चलता था। पाणिनि ने भी महाराज की भक्ति का उल्लेख किया है।[2] कुमार स्वामी ने महाराज को लोकपाल के अर्थ में ग्रहण किया है।[3] यह उल्लेखनीय है कि महाभारत में लोकपालों से सम्बन्धित भिन्न-भिन्न विवरण प्राप्त होते हैं। परन्तु एक स्थल पर कुबेर को इन्द्र के साथ-साथ वैश्रवण अर्थात् कुबेर को भी पूर्व दिशा से सम्बन्धित किया गया है।[4] हाप्किंस के अनुसार कुबेर और इन्द्र दोनों ही उत्तर और पूर्व दिशा के संरक्षक थे।[5] मत्स्य पुराण में भी सभी दिशाओं में लोकपालों के ध्वज स्थापन तथा गन्ध-धूप इत्यादि से उनका अर्चन एवं मंत्रों के द्वारा उन्हें बलि प्रदान करने का उल्लेख मिलता है।[6] विष्णुधर्मोत्तर पुराण में भी माला कुंकुम इत्यादि से कुबेर की उपासना तथा उन्हें बलि प्रदान करने का विधान प्राप्त होता है।[7] उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कुबेर की उपासना पौराणिक परम्परा में अत्यन्त प्राचीनकाल से प्रचलित थी। कुबेर की उपासना पद्धति और उनके मन्दिर पतञ्जलि के समय विद्यमान थे।[8] कुषाणकाल में

---

1 अमरकोश 2.2.6

2 पाणिनि अष्टध्यायी 4.3.97

3 कुमारस्वामी, ओरिजिन आफ बुद्धा इमेज, पूना संस्करण, क़लकत्ता पृष्ठ 18

4 महाभारत 163.3

5 हाप्किंस, इपिक माइथालाजी, पृष्ठ 151

6 मत्स्य पुराण, 263.21-24

7 विष्णुधर्मोत्तर पुराण द्वितीय खण्ड, श्लोक 110

8 डी०ए०आई० 1956 ई०डी० पृष्ठ 338

अनेक स्थलों से प्राप्त प्रतिमाएँ भी उस तथ्य का परिचायक है कि कुबेर की उपासना द्वितीय शताब्दी ई० तक पूर्णतया विकसित हो चुकी थी।

कुबेर केवल पौराणिक परम्परा में ही नहीं, बल्कि बौद्ध परम्परा में भी अत्यधिक लोकप्रिय थे। महानिद्देश में कुबेर तथा मणिभद्र के लिए 'भगवान्' शब्द का उल्लेख किया गया है।[1] यह उल्लेखनीय है कि पालि साहित्य में वर्णित चारों महाराज में से केवल कुबेर के साथ मणिभद्र का सम्बन्ध उल्लिखित है।[2] निद्देश के मणिभद्र के उपासकों का उल्लेख प्राप्त होता है।[3] महामायूरी में मणिभद्र और पूर्णभद्र का ब्रह्मावती के क्षेत्र में उपासना का वर्णन प्राप्त होता है। मणिभद्र की पूजा सार्थो अथवा व्यापारियों के मध्य व्यापक स्तर पर प्रचलित थी, इसका प्रमाण कौशाम्बी के समीप मसफा नामक ग्राम से प्राप्त एक अभिलेख से भी होती है।[4] मणिभद्र यक्षों के स्वामी होने के कारण कुबेर की उपासना भी निश्चित रूप से व्यापारियों के मध्य में प्रचलित रही होगी। भरहुत से प्राप्त लेख में 'कुपिरोयक्खो' का उल्लेख प्राप्त होता है जो इस तथ्य का परिचायक है कि कुबेर की उपासना विकसित होने के पश्चात् भी कुबेर का यक्षपरक स्वरूप प्रमुख बना रहा।[5] धर्मधातुवागीश्वरमण्डल तथा निस्पन्न योगावली में भी कुबेर को उत्तर दिशा के अधिपति के रूप में स्वीकार करते हुए, उनकी उपासना का विधान प्रस्तुत किया गया है।[6] कुबेर के धनद स्वरूप की उपासना जम्भल के रूप में पर्याप्त विश्रुत थी।

जम्भल बौद्ध परम्परा में मुख्यतः वज्रयान के विकास के साथ ही अधिक प्रतिष्ठित हुआ। साधनमाला में जम्भल से सम्बन्धित तेरह साधनाओं का उल्लेख प्राप्त

---

1 महानिद्देश, पृष्ठ 89

2 सरकार, डी०सी०, स्टडीज इन दि रीलीजियस लाइफ आफ एन्शियेन्ट एण्ड मेडिवल इण्डिया।

3 भण्डारकर, जी०आर०, वैष्णव, शैव और अन्य धार्मिक मत, पृष्ठ 3

4 इपिग्राफिया इण्डिका Vol-18, पृष्ठ 158-59

5 बरूआ, भरहुत इन्सक्रिप्शन, पृष्ठ- 67

6 निस्पन्नयोगावली, पृष्ठ 61

होता है।[1] इन साधनाओं में जम्भल को कभी द्विभुजी, कभी षट् भुजी, एक मुखी, तथा त्रिमुखी रूप में वर्णित किया गया है तथा उनके परिकरों और अनुचरों के रूप में पूर्णभद्र, मणिभद्र, विचित्रकुण्डल, जीतमूखेन्द्र , वसुधारा इत्यादि का भी उल्लेख मिलता है। जम्भल का स्वरूप वज्रयान परम्परा में तांत्रिक प्रभाव के कुबेर के प्रारम्भिक स्वरूप की तुलना में अत्याधिक संकुल हो गया था। विशाल दंष्ट्र धारण करने वाले अनन्त, तक्षक, कार्कोटक, महापद्म, कुलिक, शंखपाल, वासुकी तथा आठ सर्पो के आभूषण से विभूषित, कृष्णवर्ण, वसनरहित रक्त से परिपूरित कपाल धारण करने वाले आदि रूप में उच्छुष्म-जम्भल का वर्णन निश्चित रूप से वज्रयानियों के भयावह साधना का परिणाम है, जो कुबेर के स्वरूप पर आरोपित कर दिया गया। कुबेर को धनद के साथ-साथ 'द्विष्टानां प्रणाशक' अर्थात् दुष्टों को नाश करने वाले, सौभाग्यरोग्यवर्द्धन् ' तथा 'सर्वकामफलप्रद' कहा गया है। जम्भल की उपासना के सन्दर्भ में मंत्र जप के साथ 108 बार अञ्जलि से जल समर्पण तथा फाल्गुन, बैशाख तथा आषाढ़ की पूर्णिमा के दिन उनकी प्रतिमा का निर्माण करके उनकी उपासना करने का विधान प्राप्त होता है।

कुबेर की उपासना जैन-धर्म में भी प्राप्त होती है। कुबेर को जैन देव समूह में स्थान सम्भवतः छठी शताब्दी ई० के पश्चात् ही प्राप्त हुआ। यद्यपि कुषाण कालीन अंगविज्जा नामक ग्रन्थ में वैश्रवण का उल्लेख मिलता है, परन्तु उनका स्थान सहायक ही था।[2] भगवती सूत्र में कुबेर के अनुचर मणिभद्र और पूर्णभद्र को शक्तिशाली बताया गया है।[3] जैन परम्परा में भी कुबेर को उत्तर दिशा का स्वामी स्वीकार किया गया है।[4] इसी प्रकार बारहवीं शताब्दी के ग्रन्थ निर्वाणकलिका, मंत्राधिराजकल्प, आचारदिनकर, प्रतिष्ठासारसंग्रह इत्यादि में कुबेर के दिक्पाल स्वरूप का विवरण प्राप्त

---

1 साधन माला के तिथिक्रम के लिए साधनमाला, सम्पादित विनयतोष भट्टाचार्या, बड़ौदा , भूमिका भाग, पृष्ठ 564-582

2 अंगविज्जा, अध्याय 58, पृष्ठ 223-24

3 सिंह अमरेन्द्र कुमार, यक्ष, किन्नर और दिक्पाल, पृष्ठ 125

4 बनर्जी जे०एन०, डेवलपमेण्ट ऑफ हिन्दू आइकोनोग्रेफी, पृष्ठ 519

होता है।[1] दिक्पालों की पूजा अर्चना वास्तु देवता के रूप में जैन परम्परा में दसवीं शताब्दी के पश्चात् विकसित हो गई थी। इस प्रकार कुबेर को वास्तु से सम्बन्धित देवता के रूप में जैन-परम्परा में स्वीकार कर लिया गया था।[2]

---

1 शाह यू०पी०, सम माइनर जैन डीटीज मात्रिकाज एण्ड दिक्पालाज, जर्नल ऑफ एम०एस० यूनिवर्सिटी ऑफ बड़ौदा खण्ड-30, अङ्क- 1, 1981, पृष्ठ 84

2 भट्टाचार्य बी०सी०, जैन आइकोनोग्रैफी, पृष्ठ 148

द्वितीय अध्याय

कुबेर–परिकर

कुबेर-परिकर

(i) लक्ष्मी/गजलक्ष्मी

लक्ष्मी की समृद्धि एंव धन धान्य की देवी के रूप में मान्यता पौराणिक, बौद्ध एवं जैन सभी विचारधाराओं में प्रतिष्ठित है। विभिन्न साहित्य ग्रन्थों में इन्हें सुन्दरता, उर्वरता एवं भाग्य की देवी के रूप में स्वीकार किया जाता है। सामान्यतया उनकी उपासना अत्यधिक समृद्धि की प्राप्ति के लिए की जाती है। जिस समय सम्पूर्ण भारत में दीपावली का त्योहार मनाया जाता है उसी समय एक विशेष पूजा इनके सम्मान में प्रत्येक वर्ष कार्तिक महीने की अमावस्या को आयोजित की जाती है। हमें मातृ देवी की उपासना के प्रमाण प्राचीन समय से ही प्राप्त होने लगे हैं। इसके पर्याप्त प्रमाण है कि मातृ देवी की उपासना प्राग्-इतिहास[1] काल में ही होती थी, फिर भी स्त्री आकृतियाँ मातृदेवी के सम्प्रदाय के रूप में 'सैन्धव घाटी' के पुरास्थलों से खोजी गयी थी। प्रो० ए०एल०बाशम का विचार है कि हड़प्पा के पतन के एक हजार वर्ष बाद पुनः मातृदेवी की प्रतिमा का उद्भव हुआ।

हड़प्पा एवं मोहनजोदड़ो के पुरातत्वीय उत्खनन से अनेक स्त्री मृण्मूर्तियाँ प्रकाश में आयी हैं जो स्कर्ट को धारण किये हुए हैं तथा उनके कटि प्रदेश पर कमरबन्द है।[2] ये स्त्री आकृतियाँ अनेक आभूषणों एवं पंखे के आकार के शिरोभू षण से सुसज्जित हैं। इनका नितम्ब भारी तथा कटिभाग क्षीण है। ये प्रायः बिखरी हुई भग्नावस्था में पायी जाती हैं जिनकी पहचान मातृ देवी से की जाती है। इनकी उपासना चौथी तीसरी सहस्राब्दी ई०पू० में मेसोपोटामिया तथा प्राचीन मेडिटेरेनियन की भूमि में

---

1 श्रीवास्तव, एम०सी०पी०, मदर गाडेस इन इण्डियन आर्ट, आर्कियोलाजी एण्ड लिट्रेचर, पृष्ठ–4

2 मैके, ई, अर्ली इण्डस सिविलाइजेशन, पृष्ठ–53, आकृति XVI .2

प्रचलित थी।[1] ये मृण्मूर्तियाँ अपने शिरोभूषण एवं आभूषण के साथ समृद्धि की देवी के रूप में पहचानी जा सकती है। हड़प्पा से प्राप्त एक महत्वपूर्ण मुहर पर एक ऐसा चित्र मिलता है जिसमें मातृदेवी की योनि से वृक्ष को निकलते हुए प्रदर्शित किया गया है जो इनके उर्वरता की देवी होने के चरित्र को प्रमाणित करता है।[2] इस सन्दर्भ में मोहनजोदड़ो एवं हड़प्पा से आधे-इंच से लेकर चार इंच तक के गोलाकार प्रस्तर प्राप्त हुए हैं जो मातृदेवी के सम्प्रदाय के महत्वपूर्ण सामग्री के रूप में प्रदर्शित हैं। इन गोलाकार प्रस्तर खण्डों का उल्लेख मार्शल ने उर्वरता एवं मातृत्व के प्रतीक के रूप मे किया है। इन्होंने बाद में यह अनुमान व्यक्त किया है कि ये छोटी गोलाकार प्रस्तर आकृतियाँ उर्वरता की देवी की नग्न आकृतियाँ हैं ।[3] लौरियानन्दनगढ़ से[4] एक सुनहली नग्न स्त्री की आकृति प्राप्त हुई है, यद्यपि निश्चित रूप से उसका समीकरण नहीं किया जा सका है परन्तु सम्भवतः वह पृथ्वी माता के रूप में मातृदेवी की भावाभिव्यक्ति प्रतीत होती है। ब्लॉख[5] महोदय इसका समीकरण पृथ्वी माता के रूप में करते हैं। वह सामने शसक्त मुद्रा में खड़ी पूर्णतः नग्न, कामभावना से आप्लावित, भारी नितम्बों से युक्त, पतली कमरवाली तथा स्तनों से परिपूर्ण दिखाई गई हैं । अतः इन्हें निःसन्देह सिन्धुघाटी के समय की मातृदेवी परम्परा में स्वीकार किया जा सकता है। ब्लाख ने इस आकृति का समय प्रारम्भिक मौर्यकाल से पहले आठवीं-सातवीं

---

1 तत्रैव, पृष्ठ-53-54

2 तत्रैव, अध्याय - XVIII; मार्शल, जे०, मोहनजोदड़ो एण्ड दि इण्डस सिविलाइजेशन, पृष्ठ 52 (सी०एफ० भीटा से प्रारम्भिक गुप्तकाल की एक मृण्मूर्ति इसी आकृति के समान प्राप्त हुई है, किन्तु उसके योनि के बजाय उसके गले से एक कमल निकलता हुआ दिखाया गया है- ए० एस० आई० ए० आर०, 1911-12, आकृति XXIII. 40)

3 मार्शल, वही, पृष्ठ 62

4 ए०एस०आई०ए०आर०, 1906-07, पृष्ठ 122-23, आकृति-4

5 तत्रैव, पृष्ठ-123

शताब्दी ई०पू० माना है।[1] किन्तु यह सम्भावना भी व्यक्त की जा सकती है कि यह परवर्तीकाल में निर्मित हुई होगी। उत्तर प्रदेश के बस्ती जनपद के पिपरहवा नामक स्तूप से इसी आकृति के समान चौथी-तीसरी शताब्दी ई०पू० की तथा दिल्ली के समीप तिलपत से अनेक मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं।[2]

देवी लक्ष्मी को सुन्दरता, भाग्य, धन एवं समृद्धि की देवी के रूप में स्वीकार किया जाता है। शब्द 'लक्ष्मी' एवं 'श्री' दोनों की व्याख्या विवादास्पद है। वेदों में लक्ष्मी शब्द आश्चर्य अथवा प्रसन्नता के सन्दर्भ में सर्वप्रथम दिखाई पड़ता है।[3]

श्री सूक्त में यह उल्लेख मिलता है कि 'श्री' समृद्धि, प्रसिद्धि, सफलता एवं कल्याण की संरक्षिका देवी हैं।[4] ऋग्वेद में श्री का उल्लेख 'हस्तिनादप्रमोदिनी' के रूप में मिलता है जो गजलक्ष्मी के दो हाथियों से घिरे हुए स्वरूप का परिचायक है।[5] वाजसनेयी सँहिता में 'लक्ष्मी' एवं 'श्री' का विवरण कुछ देवताओं की पत्नियों के रूप में मिलता है। उनके पहचान एवं अन्तर की परम्परा समय के अन्तराल के साथ धीरे-धीरे धूमिल होती गयी।[6] सूत्र साहित्य में 'श्री' को उर्वरता की देवी के रूप में स्वीकार किया गया है।[7] बौद्ध साहित्य में देवी लक्ष्मी को 'श्रीमाता' के रूप में सन्दर्भित किया गया है। श्री कल्किनी जातक में कहा गया है- ''मैं व्यवहार की अधिष्ठातृ देवी हूँ तथा मानव को स्वामित्व प्रदान करती हूँ; मैं सुन्दरता (श्री), भाग्य (लक्ष्मी) हूँ।[8] एक दूसरे जातक में श्री कहती हैं-मनुष्य को मैं प्रसन्नता प्रदान करती हूँ

---

1 तत्रैव, पृष्ठ-123

2 मुन्शी, के०एम०, सागा ऑफ इण्डियन स्कल्पचर, पृष्ठ - 5

3 कुमारस्वामी,ए०के०, अर्ली इण्डियन आइकोनोग्राफी, श्री लक्ष्मी, पृष्ठ - 175

4 गोण्डा, जे० एस्पेक्ट्स ऑफ अर्ली विष्णुइज्म, पृष्ठ- 231-32

5 कुमार स्वामी, ए० के० अर्ली इण्डियन आइकोनोग्रैफी, श्री लक्ष्मी, पृष्ठ-175

6 भट्टाचार्या, एन० एन०, दि इण्डियन मदर गाडेस, पृष्ठ-156

7 मोतीचन्द, आवर लेडी ऑफ ब्यूटी एण्ड एबुन्डेन्स, नेहरू अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ- 501

8 सिंह,एस० एस०, अर्ली क्वायन्स ऑफ नार्दर्न इण्डिया, पृष्ठ-159

जो सभी स्थितियों में आनन्द को प्राप्त करता है। '' धम्मपद अट्ठ कथा में देवी को भाग्य प्रदर्शित करने वाली के रूप में चित्रित किया गया है।[1]

पुराणों मे लक्ष्मी के विविध सन्दर्भ प्राप्त होते हैं। वाल्मीकि रामायण में वह कुबेर के साथ पुष्पक विमान पर बैठी हुई तथा हाथ में कमल लिये दिखाई गयी हैं।[2] समुद्र मंथन के समय जो वस्तुएँ बाहर निकलीं उनमें लक्ष्मी कमलासीन हैं तथा वह हाथों में कमल एवं लीला पुष्प को ग्रहण किये हुए हैं। [3] विष्णु पुराण में देवी लक्ष्मी की उत्पत्ति सम्बन्धी विविध कथानक वर्णित हैं। उनमें से सबसे महत्वपूर्ण एवं प्रसिद्ध कथा समुद्र मंथन की है जिसमें लक्ष्मी को कमल पर बैठी हुयी तथा हाथ में कमल लिये हुए दिखाया गया है। एक दूसरी कथा में लक्ष्मी को दक्ष की पुत्री के रूप में उल्लिखित किया गया है-

''श्रद्धा लक्ष्मीर्धृतिस्तुष्टिर्मेधा पुष्टिस्तथा कृपा।''[4]

उनकी उत्पत्ति के अतिरिक्त उनका उल्लेख मुहर सिक्कों इत्यादि पर मिलता है जिनका प्रतिमालक्षण सम्बन्धी परीक्षण करने के लिए हमें सैन्धव सभ्यता की ओर दृष्टिपात करना पड़ता है। जॉन मार्शल ने हड़प्पा की मुहरों पर उच्चित्रित चित्रणों को 'मातृदेवी' अथवा 'पृथ्वीदेवी' नाम दिया है। [5] कतिपय मुहरों पर देवी की आकृति हाथी के उच्चित्रण के साथ मिलती है। इस सन्दर्भ में कतिपय विद्वानों का यह कथन विचारणीय है कि ये दोनों तत्व 'पृथ्वी देवी' और 'हाथी' समय के साथ अपने स्वाभाविक रूप में देवी गजलक्ष्मी के साथ मिला दिये गये हैं। [6] लघु चक्रिका फलक के मुख्य छिद्र से तक्षशिला, संकिसा, मथुरा, कोसम, राजघाट, बसाढ़ [7] तथा

---

1 तत्रैव, पृष्ठ 159

2 राय, गोविन्द चन्द्र, प्राचीन भारत में लक्ष्मी प्रतिमा, पृष्ठ 58

3 गोण्डा, जे०, एस्पेक्ट्स ऑफ अर्ली विश्णुइज्म, पृष्ठ- 128

4 राय, गोविन्द चन्द्र, तत्रैव, पृष्ठ- 35

5 मार्शल, जॉन, मोहनजोदड़ो एण्ड इण्डसवैली सिविलाइजेशन,पृष्ठ- 4

6 सिंह, ओ०पी०, आइको नोग्रैफी ऑफ गजलक्ष्मी, पृष्ठ - 4

7 बनर्जी, जे०एन०, डी०एच०आई, पृष्ठ-170-71

पटना[1] के भीर टीले से नारी आकृतियाँ कुछ विशेष सजावट के साथ जिसमें परम्परागत पशु मकर, घड़ियाल, अश्व एवं ताड़ वृक्षों के अलङ्करण के साथ प्राप्त होती हैं। इनकी तिथि का निर्धारण तृतीय शताब्दी ई०पू० किया जा सकता है। इसी प्रकार हैथियल चक्र वाली चार नग्न आकृतियाँ एक के बाद दूसरी क्रमशः मधुर स्तनपान कराते हुए मध्य छिद्र में अङ्कित हैं जो देवी लक्ष्मी की महत्वपूर्ण विशेषताओं को अभिव्यक्त करती है।[2] राजघाट से प्राप्त एक मुहर पर घोड़े के साथ ताड़वृक्ष का महत्वपूर्ण अलङ्करण है। इसके बगल में एक स्त्री आकृति अपने उठे हुए दाहिने हाथ में अर्ध मुकलित पुष्प को लिए हुए अच्छी तरह से उच्चित्रित है। लम्बकर्ण तथा छोटे जानवर एवं विशेष प्रकार का पक्षी तथा आगे पुनः स्त्री आकृति, पारम्परिक पशु और अन्त में पैर के पास एक पक्षी का चित्रण है।[3] राजघाट से प्राप्त दूसरे फलक पर दो नग्न स्त्री आकृतियाँ हाथ को उठाये हुए मध्य छिद्र के दोनों ओर अङ्कित है तथा उसके अन्त में दो बन्दर के समान अलङ्करण मकर के साथ उन दोनों के मध्य में उच्चित्रित है।[4] भारत कला भवन में संरक्षित कोसम से प्राप्त एक दूसरे टूटे हुए एवं खुदे हुए फलक पर नग्न स्त्री आकृतियाँ तथा मकर समूह का एक क्रम चित्रित है।[5] पटना के मुरतजीगंज से मौर्यकालीन प्रस्तर फलक प्राप्त हुए हैं जिन पर नग्न खड़ी हुई स्त्री-आकृतियाँ एवं ताड़ वृक्षों तथा कुछ निश्चित पशुओं का अलंङ्करण विद्यमान है। इसके अतिरिक्त दूसरे फलक पर कुछ नग्न आकृतियाँ अलङ्करण के साथ प्रदर्शित हैं जो लौरिया से प्राप्त स्वर्णिम चिन्ह वाले अलङ्करण से साम्य रखती हैं।[6] ये आकृतियाँ पूर्णतया नग्न एवं भारी नितम्बों से युक्त निःसन्देह धार्मिक महत्व को रखती हैं तथा

---

1 जे०बी०आर०एस०, XXXVII, पृष्ठ 178 तथा आगे

2 ए०एस०आई०ए०आर०, 1927-28, पृष्ठ-66, आकृति- 7

3 बनर्जी, जे०एन०, डेवलपमेन्ट ऑफ हिन्दू आइकोनोग्रैफी, पृष्ठ-170-71

4 तत्रैव, पृष्ठ 170

5 तत्रैव, पृष्ठ-171

6 तत्रैव, पृष्ठ- 172; जर्नल आफ दि बिहार रिसर्च सोसायटी, XXXVII, पृष्ठ-178

अपने सम्बन्ध को सिन्धु सभ्यता से प्राप्त स्त्री मृण्मूर्तियों के साथ स्थापित करती हैं जिन्हें मातृदेवी के रूप में स्वीकार किया गया है।

शुङ्ग और कुषाण काल में गजलक्ष्मी के प्रतीक भरहुत, साँची, बोधगया, कौशाम्बी, पीतलखोरा, उदयगिरि, मथुरा तथा फरूखाबाद से प्राप्त होते हैं। कौशाम्बी से शुङ्ग काल का एक महत्वपूर्ण टूटा हुआ चित्र फलक प्राप्त हुआ है जो अब इलाहाबाद संग्रहालय में सुरक्षित है।[1] इसके दाहिनी ओर पहले निकले हुए दाँत वाले हाथी की आकृति है जो स्त्री आकृतियों का अनुकरण कर रही है। ये आकृतियाँ पूर्ण विकसित कमल पर सामने खड़ी हैं। उनके मध्य में कमल कलिका है तथा वे हाथों में कमल कलिका को धारण किये हुए है। दूसरी ओर कमल पर खड़े होकर दो हाथी अपने उठाये हुए सूड़ों से मूर्तियों का अभिषेक कर रहे हैं। आगे की आकृतियों में नग्न स्त्री आकृतियाँ भारी नितम्ब, क्षीण कटि तथा पूर्ण विकसित स्तनों से युक्त हैं। इस प्रकार इसमें कोई सन्देह नहीं रह जाता है कि ऐतिहासिक काल की देवी लक्ष्मी मातृदेवी से अलग नहीं है जिनका उच्चित्रण प्राक् मौर्यकाल तथा मौर्यकाल के छोटे फलक पर मिलते हैं। दो हाथियों से घिरे हुए कमल पुष्प के साथ जिन स्त्री आकृतियों का निदर्शन मिलता है वे गजलक्ष्मी की प्रतीक हैं।

प्रथम, द्वितीय शताब्दी ई० की एक महत्वपूर्ण प्रतिमा मथुरा कला में प्राप्त होती है[2] जो लखनऊ के राज्य संग्रहालय में सुरक्षित है। इस निष्कर्ष को भलीभाँति प्रमाणित करती है। यह स्त्री प्रतिमा को सुन्दर ढंग से कमल पर खड़े हुए प्रदर्शित करती है। पुष्पों, कलियों एवं पत्तियों से युक्त पूर्ण विकसित कमल पर मयुर युगल बैठे हुए चित्रित हैं। देवी अत्यधिक आभूषणों से सुसज्जित हैं जिनमें मोतियों का हार, मयुर चित्रित भुजबन्द तथा कमरबन्द उल्लेखनीय है। इनके दो हाथ प्रदर्शित हैं जिसमें बायाँ स्तन को सहारा दिये हुए है अथवा उसे दबाये हुए है जबकि दाहिना उसकी

---

1 काला, एस०सी०, स्कल्पचर इन दि इलाहाबाद म्यूनिसिपल म्यूजियम, पृष्ठ–28, आकृति XVI

2 अग्रवाल, वी०एस०, अ सार्ट गाइड टू दि आर्कियोलाजिकल सेक्सन ऑफ दि प्राविन्सियल म्यूजियम, लखनऊ, पृष्ठ 14-15, आकृति–8

कामभावना को प्रदर्शित करता है। छोटे कमल को धारण करने के अतिरिक्त कमरबन्द में सामने मध्य में तीन कलियों को भी चित्रित किया गया है। डॉ० आनन्द कुमार स्वामी ने मूर्तियों को अत्यधिक कमल से घिरे होने के कारण इन्हें 'श्री लक्ष्मी' देवी के रूप में स्वीकार किया है। इस प्रकार स्त्री आकृति का प्रतीक जो अपने स्तन को दबाये हुए है, वह मानव स्वभाव एवं उसकी कामभावना की अभिव्यक्ति तथा उर्वरता की शक्ति का परिचायक है। समयावसान के साथ आगे चलकर मातृदेवी के प्रकारों को देवी लक्ष्मी के साथ सम्बन्धित कर दिया गया तथा अत्यधिक आभूषणों से परिपूर्ण होने के कारण इन्हें धन की देवी के रूप में स्वीकार किया गया।

प्रारम्भिक स्तर पर कमल जल का प्रतिनिधित्व करता है, ऐसा आनन्द कुमार स्वामी ने उल्लेख किया है।[1] यह समृद्धि, जीवन तथा आन्तरिक विश्व सृष्टि का प्रतीक है। कमल सदैव शुद्धता तथा आध्यात्मिक शक्ति को सन्दर्भित करता है।[2] पूर्णघट के साथ कमल का उच्चित्रण हमें प्रायः दो रूपों में मिलता है-

(1) उगते हुए कमल से युक्त पूर्णघट तथा

(2) अधिसंख्य पत्तियों एवं कमल पुष्पों से परिपूर्ण पूर्णघट।[3]

यद्यपि ये प्रतीक एक दूसरे के समान तथा पर्यायवाची हैं, फिर भी ये सभी जीवन की समृद्धि, नैतिकता तथा आध्यात्म को प्रदर्शित करते हैं।[4]

प्रारम्भिक साहित्य में हमें गजलक्ष्मी का विस्तृत विवरण प्राप्त होता है, पुरातात्विक उत्खनन के दौरान लक्ष्मी का गजलक्ष्मी स्वरूप अनेकशः प्राप्त हुआ है। ऋग्वेद का 'श्रीसूक्त' लक्ष्मी से श्रीदेवी को अलग प्रदर्शित नहीं करता है। ये दोनों

---

1 कुमार स्वामी, ए०के०, दि यक्षाज़, पृष्ठ- 56

2 किंसले, डेविड, हिन्दू गाडेस, पृष्ठ-48

3 कुमार स्वामी, ए०के०, दि यक्षाज, पृष्ठ-61

4 अग्रवाल, वी०एस०, स्टडीज इन ऐंशेंट इण्डियन आर्ट, पृष्ठ-6

क्रमशः आर्द्रा एवं पद्ममालिनी कहे गये हैं।[1] श्री सूक्त के अनुसार 'श्री' हाथियों के चिघ्घाड़ (हस्तिनादप्रमोदिनी) तथा उनके द्वारा सुवर्णघट से स्नान कराई जाती हुई दिखाई गई है-

(गजेन्द्राह----------स्नपीठाहेमकुम्भीर)[2]

वैदिक काल में देवी की अनेकशः प्रतिमाएँ जिनका उल्लेख प्रायः ऋग्वेद एवं अन्य संहिताओं में है, भारतीयों को प्रारम्भिक साहित्य में ही ज्ञात थी। अदिति के अलावा कतिपय छोटी विशेषताएँ उनके साथ जोड़ दी गयी। पुरामधि [3] ने अवेस्तन के वैदिक रूप परेण्डी को सौभाग्य की देवी तथा राका [4] को समृद्धि एवं सुन्दरता की देवी के रूप में स्वीकार किया है। वासिनी शासन करने वाली देवी जिनका उल्लेख विभिन्न गृह्यसूत्रों में उपलब्ध होता है, सम्भवतः मातृदेवी हैं। इनकी पहचान प्रायः विविध रूपों में शिव की पत्नी के रूप में की जाती है जो मुख्य आध्यात्मिक ग्राम शक्ति की प्रतीक है। दूसरी महत्वपूर्ण देवी सरस्वती को विष्णु की पत्नी एवं देवताओं की बहन कहा गया है। जिसका उल्लेख अथर्ववेद में किया गया है।[5] सम्भवतः यह कहना कठिन है कि ये विभिन्न देवियाँ जो देवी लक्ष्मी की प्रतिरूप हैं, वे सभी समृद्धि की देवियाँ हैं। [6] शब्द 'श्री' निःसन्देह ऋग्वेद से ग्रहण किया गया है, जहाँ पर देवियों

---

1 श्रीसूक्त, 15,11,14; यह ऋग्वेद से सम्बन्धित सूक्त है जिसे पाली बौद्ध ग्रन्थों के पहले रखा जा सकता है।
मोती चन्द्र, आवरलेडी ऑफ ब्यूटी एण्ड एबुन्डेन्स, पद्मश्री, पृष्ठ - 501

2 "अश्वपूर्वां रथमध्यां हस्तिनादप्रमोदिनीम्।
श्रियं देवीमुप हये श्रीमां देवी जुषताम्।।
श्रीसूक्त श्लोक - 3

3 मैकडानेल, वैदिक माइथालाजी, पृष्ठ-124

4 ऋग्वेद, 2.32.7; 5.42.12

5 अथर्ववेद, VIII. 46,3

6 बनर्जी, डी०एच०आई०, पृष्ठ-371

को सामान्यतया सुन्दरता के सन्दर्भ में प्रस्तुत किया गया है।[1] 'श्री' से सम्बन्धित शतपथ ब्राहमण में एक कहानी मिलती है कि जब प्रजापति अपनी संरचना से थक गये तो एक अद्वितीय स्वर्ग की महिला को 'श्री' के रूप में स्वयं अपनी तपस्या से उत्पन्न किया।[2] मोतीचन्द्र[3] ने इसका उल्लेख सुन्दरता के अमूर्त-प्रत्यय एवं दिव्य शरीर के वास्तविक स्वरूप के रूप में किया है। यह सम्भवतः भारतीय आर्यो की महान् देवी मातृदेवी थी जो स्वयं में सुन्दरता की प्रत्यय एवं समृद्धि की प्रतीक थीं। तैत्तिरीय-उपनिषद भी देवी लक्ष्मी के स्वरूप को भलीभाँ ति उद्घाटित करता है। जहाँ 'श्री' को वस्त्र, गाय, भोजन एवं पेय पदार्थ देने वाला कहा गया है।[4]

'श्री' एवं लक्ष्मी की स्वर्ग की दो अप्सरा के रूप में तैत्तिरीय आरण्यक[5] एवं वाजसनेयी सँहिता[6] में उल्लेख मिलता है। इसमें दोनों का परिचय पूर्णरूप से प्राप्त होता है। दोनों में समरूपता दिखाई गई है। श्रीसूक्त[7] में 'श्री' एवं लक्ष्मी दोनों का उल्लेख मिलता है। इस साहित्यिक ग्रन्थ में उन्हें एक कमल धारण करने के कारण 'पद्मिनी', कमल पर खड़ी होने के कारण 'पद्मस्थिता', कमल के रंगों के कारण 'पद्मवर्णा' एवं कमल से उत्पन्न होने के कारण 'पद्मसंभवा' कहा गया है। इसी प्रकार कमलवत आँखों के कारण 'पद्माक्षी', कमल के समान ऊरु भाग होने के कारण 'पद्मऊरु', कमलवत आकृति के कारण 'पद्मनामा', कमलों के मध्य भाग में स्थित होने के कारण 'सरसिजनिलया', कमल प्रिय होने के कारण 'पद्मप्रिया' तथा हाथ में कमल धारण करने के कारण 'पद्महस्ता' इत्यादि नामों से उल्लिखित किया

---

1 ऋग्वेद, 1.87.6: 'श्रीयस काम भानुभिह साम मिमिस्कीरे'।

2 शतपथ ब्राहमण, 11.4,1 तथा आगे

3 जर्नल ऑफ यू०पी० हिस्टारिकल सोसायटी, XXI, भाग 1 तथा II, 1948, पृष्ठ- 21

4 तैत्तिरीय उपनिषद, I.4

5 तैत्तिरीय आरण्यक, X.46

6 वाजसनेयी सँहिता, 31.1

7 श्रीसूक्त, 10.11.14

गया है। वह भूमि की उर्वरा देवी है जो जल से उत्पन्न हुई है। सुवर्ण, गाय एवं घोड़े प्रदान करने के साथ साथ वे समृद्धि एवं वैभव की देवी है। लक्ष्मी सोने एवं चांदी की माला धारण करती है तथा व्यक्ति को प्रसिद्धि (कीर्ति) तथा सफलता (ऋद्धि) प्रदान करती है। वह पृथ्वी की देवी (क्षमादेवी) तथा सृष्टि की जन्मदातृ के कारण (परजन्म भवसि माता) हैं।[1] डॉ० आनन्द कुमार स्वामी की धारण है कि कमल जल का प्रतीक है जो उर्वरता से सम्बन्धित है। [2] देवी लक्ष्मी को अलक्ष्मी,[3] दुर्भाग्य, गरीबी को नष्ट करने वाली तथा पशु एवं सन्तान को प्रदान करने वाली बताया गया है। वे यहाँ पर बिल्व (बेल) वृक्ष से भी सम्बन्धित है।[4]

महाकाव्यों में देवी लक्ष्मी का उल्लेख पूर्ण प्रतिमालक्षण के साथ किया गया है। विभिन्न ग्रन्थों में उनके विविध रूप मिलते हैं। वह समुद्र मंथन के दौरान उच्चैश्रवा अश्व, मदिरा एवं अमृत के साथ बाहर आयीं तथा विष्णु को प्राप्त हुई। [5] महाकाव्य में वह कामदेव की माता के प्रतीक के रूप में मकर को हाथ में धारण किये हुए प्रदर्शित की गई हैं । [6] महाभारत के कुछ अंशों में कुबेर के साथ उनका घनिष्ठ सम्बन्ध बताया गया है। वह कुबेर की सभा में नलकुबेर के साथ खड़ी हुई दिखाई गई हैं। [7] महाभारत में यत्र-तत्र लक्ष्मी के साथ यक्षों का उल्लेख मिलता है।[8] रामायण में वे कुबेर के रथ पर अपने हाथ में कमलपुष्प को लिये हुए दिखाई गई है। [9] वह भाग्य की प्रतीक भी है। कमल के साथ उनका सम्बन्ध उन्हें पद्मालया एवं पद्महस्ता

---

1 ज़िमर, एच०, दि आर्ट ऑफ इण्डियन एशिया, पृष्ठ-159-60

2 कुमार स्वामी, ए०के०, दि इस्टर्न आर्ट, भाग I, पृष्ठ-178

3 ऋग्वेद, खिल अंश, II.6.5

4 तत्रैव, V.6

5 महाभारत, I, 110,111

6 महाभारत, I, 61, 44; 67, 156

7 महाभारत, II.10,19 (नलकुबेर कुबेर के पुत्र के रूप में वर्णित है।)

8 महाभारत, III.168,3

9 रामायण, V.7,14

के रूप में सन्दर्भित करता है। वह अपने को सफलता एवं समृद्धि को प्रदान करने वाली देवी के रूप में प्रस्तुत करती है।[1] महाकाव्य के कुछ बाद के अंशों में उन्हें विशेष रूप से कुबेर की पत्नी के रूप में बताया गया है तथा समृद्धि की देवी एवं धन के देवता के साथ जोड़ा गया है। [2]

बौद्ध साहित्य मिलिन्दपह्न में देवी लक्ष्मी को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है । [3] श्री काल्किनी जातक में वह श्रीमाता तथा पूर्व दिशा की संरक्षिका देवी हैं।[4] वह कहती हैं कि मैं सदाचार के सन्दर्भ में मनुष्य का स्वामित्व देती हूँ,मैं सुन्दरता(श्री), भाग्य (लक्ष्मी) तथा 'भूरिपन्न' हूँ।[5] धम्मपद अट्ठकथा[6] में उनका वर्णन सामान्य देवी के रूप में किया गया है जो भाग्य, एवं साम्राज्य (राज्य श्री दायिक देवता) को प्रदान करती है। इनके सन्दर्भ में कतिपय ये विशेषताएँ गुप्तकाल तक बहुत अच्छी तरह से प्राप्त होने लगती हैं।

जैन साहित्य में श्रीलक्ष्मी की विशेषताएँ शुभ लक्षणों से युक्त बताई गयी है। कल्पसूत्र[7] में 'श्री' चौदह शुभ लक्षणों से युक्त, त्रिसला को स्वप्न में महावीर के जन्म की भविष्यवाणी करती हैं। उनकी विशेषताएँ सही-सही उनके प्रतिमालक्षण स्वरूप को अभिव्यक्त करती हैं। उनका वर्णन स्तन पर दीनार (स्वर्ण सिक्कों) की माला, कमल पर आराम की मुद्रा में आसीन, कमलों के वृक्षों एवं पुष्पों से घिरी हुई तथा हथिनियों द्वारा अपनी सूड़ों से बार-बार अभिषेक कराई जाती हुई के रूप में किया गया है।

मध्यकालीन हिन्दू साहित्य में 'श्रीलक्ष्मी' का महाकाव्य सम्बन्धी विश्लेषण

---

1 महाभारत, XII.83,45

2 बनर्जी, डेवलपमेन्ट ऑफ हिन्दू आइकोनोग्रैफी, पृष्ठ-372

3 मिलिन्दपन्ह, 191

4 जातक संहिता, 392

5 तत्रैव 535

6 धम्मपद अट्टकथा, ii.17

7 कल्पसूत्र, 36

प्राप्त होता है जिसमें इन्हें भाग्य की देवी, हाथ में कमल तथा राजा से सम्बन्धित बताया गया है।[1] अभिलसितार्थचिन्तामणि [2] श्री लक्ष्मी का वर्णन श्वेतवर्णा, कमलासीन, दाहिने हाथ में श्रीफल तथा बायें हाथ में कमल को धारण किये हुए तथा दो हाथियों द्वारा अभिषेक की जाती हुई करता है। न्यायसंग्रह की मान्यता के अनुसार उनके हाथ में कमल तथा कमल की माला के साथ दो हाथियों द्वारा अभिषेक कराया जाना चाहिए। [3] मत्स्य पुराण भी इस बात की पुष्टि करता है कि गजलक्ष्मी को दो हाथियों द्वारा स्नान कराई जाती हुई तथा अपने हाथों में क्रमशः श्रीफल एवं कमल धारण करना चाहिए।[4] वह सुनहले रंग की है तथा कमल पर बैठी हैं। विष्णुधर्मोत्तर पुराण के अनुसार जब वे 'हरि' के साथ होती है तो उन्हें दोनों हाथों में सुन्दर कमल को धारण करना चाहिए परन्तु जब वे अलग प्रदर्शित की जाती हैं तो उन्हें चार भुजाओं वाली होनी चाहिए। इस रूप में देवी लक्ष्मी पद्म को ष के ऊपर बैठी हुई, दाहिने हाथ में बहुसंख्य कमल एवं बायें हाथ में अमृतघट तथा दूसरे दो हाथों में क्रमशः शंख तथा बिल्व फल को धारण करती हैं। उनके दोनों ओर हाथी स्थित हैं जो सेवकों द्वारा दिये गये पात्र से स्नान करा रहे हैं। [5] अंशुमदभेदागम में इनका उल्लेख कुछ भिन्न रूप में किया गया है । [6] इन्हें सद्य युवती कुमारी कन्या के समान, स्वर्णिम पीले रंग में, देखने में अत्यन्त सुन्दर एवं हाथ में कमल पुष्प एवं बिल्व वृक्ष के साथ दिखाया गया है। शिल्परत्न[7] लक्ष्मी का वर्णन दो या चार भुजाओं के रूप में करता है। ऐसा उल्लेख मिलता है कि वि ष्णु के साथ उनकी द्विभुजी आकृति है जिसमें दाहिने हाथ में बिल्वफल तथा बायें में कमल धारण किये हुए हैं। उनकी चतुर्भुज

---

1 रघुवंश , IV.5

2 अभिलषितार्थचिन्तामणि, 3/1/838

3 चतुरवर्ग०, 2/78

4 मत्स्य पुराण,अध्याय- 261.40

5 विष्णुधर्मोत्तर , बी०के० III, अध्याय.82,1-16

6 राव, एलिमेन्ट्स, ऑफ हिन्दू आइकोनोग्रैफी, पृष्ठ–373-74

7 तत्रैव, I, ii, पृष्ठ 374

मूर्तियों में हाथ में समान आयुध होते हैं [1] जिसका उल्लेख विष्णुधर्मोत्तर पुराण करता है। इसके अलावा एक अलग आकृति प्राप्त होती है जिसमें देवी के दो हाथों में कमल तथा दो क्रमशः अभय एवं वरदमुद्रा में प्रदर्शित किये गये हैं। [2] साहित्यिक ग्रन्थों में उनके दो या चार हाथ का नहीं, अपितु अनेकशः हाथों वाली मूर्तियों का उल्लेख मिलता है। [3] दो हाथ वाली आकृति अत्यधिक संख्या में प्राप्त होती है। [4] सभी साहित्य देवी का उल्लेख अच्छी तरह से सुसज्जित, विविध आभूषणों से युक्त, पूर्णविकसित स्तनों एवं क्षीणकटि वाली देवी के रूप में करते हैं। वे वास्तव में सुन्दर शरीर वाली हैं। जे०एन०बनर्जी के अनुसार बाद के ग्रन्थ उनका एक दूसरा नाम 'न्यग्रोध परिमण्डल ' देते हैं। [5]

पश्चिमी दक्कन के कोल्हापुर (करवीरा) मन्दिर में महालक्ष्मी की प्रतिमा प्राप्त हुई है जिसका उल्लेख विश्वकर्माशास्त्र[6] में किया गया है। इसमें देवी के दाहिने दोनों हाथों में क्रमशः पात्र एवं गदा (कौमोदकी) तथा बायें हाथों में खेटक तथा बिल्व फल है। मार्कण्डेय पुराण[7] के देवी-महात्म्य खण्ड में आठ हाथों में विभिन्न आयुधों को धारण किये हुए लक्ष्मी का उल्लेख मिलता है। जे०एन० बनर्जी [8] की धारणा है कि प्रस्तुत प्रतिमा प्रारम्भिक शाक्त सम्प्रदाय के स्वरूप को प्रदर्शित करती है। देवी लक्ष्मी का कमल से सम्बन्धित विभिन्न स्वरूप उनके जल के प्रतिनिधत्व को दर्शाता है।

---

1 तत्रैव, पृष्ठ- 374

2 तत्रैव, पृष्ठ- 374

3 बनर्जी, डेवलपमेन्ट ऑफ हिन्दू आइकोनोग्रैफी, पृष्ठ 373

4 तत्रैव, पृष्ठ- 373

5 तत्रैव , पृष्ठ 373 (शब्द कल्पद्रुम में हारावली मिलता है)

6 राव, एलिमेन्ट्स ऑफ हिन्दू आइकोनोग्रैफी, पृष्ठ 375, चित्र- CXII

7 बनर्जी, जे०एन०, ई०एच०आई०, पृष्ठ- 373

8 तत्रैव, पृष्ठ- 373

आनन्द कुमार स्वामी [1] के अनुसार प्रतिमालक्षण के आधार पर श्रीलक्ष्मी को तीन विभिन्न रूपों में प्रदर्शित किया जा सकता है-

(i) दाहिने हाथ में कमल धारण करने के कारण 'पद्महस्ता'।

(ii) चारों तरफ से कमल का आधार होने के कारण ' पद्मपीठा '

(iii) सभी ओर से पत्तियों तथा पुष्पों से घिरी हुई तथा प्रत्येक हाथ में कमल होने के कारण 'पद्मवासिनी' अथवा 'पद्मालया '। गज-लक्ष्मी अथवा अभिषेक-लक्ष्मी के रूप में उनके उच्चित्रण में हाथी भलीभाँति सम्बद्ध होते हैं।

प्राचीन भारत के जनजातीय सिक्कों पर लक्ष्मी की इस प्रकार की सभी आकृतियाँ मिलती हैं। उज्जयिनी से प्राप्त सिक्कों पर वह पूर्ण-विकसित कमल पर आसीन है। [2] कुणिन्द शासक अमोघभूति के सिक्कों पर भी वह कमलासीन हैं तथा हाथ में कमल धारण किये हुए हैं।[3] इसी प्रकार मथुरा के हिन्दू शासकों यथा-गोमित्र [4], ब्रह्ममित्र,[5] दर्धमित्र,[6] सूर्यमित्र,[7] विष्णुमित्र, [8] पुरुषदत्त,[9] उत्तमदत्त,[10] बलभूति,[11] रामदत्त[12] तथा कामदत्त का अङ्कन प्राप्त होता है। मथुरा के क्षत्रप

---

1 कुमारस्वामी, ए०के०, दि इस्टर्न आर्ट, I, पृष्ठ-178

2 एलन, जे०, कैटलाग ऑफ दि क्वाइन्स ऑफ ऐंशेन्ट इण्डिया, पृष्ठ-252, चित्र- XXXVIII, 23,24 और 25

3 तत्रैव, चित्र- XXII.1-16, XXIII.1-10

4 तत्रैव, चित्र- XXV. 1-7, XLIV.6, XLV1

5 तत्रैव, चित्र-XXV. 12-14

6 तत्रैव, चित्र-XLIII.16

7 तत्रैव, चित्र-XXV. 17-21, XLIV.9

8 तत्रैव, चित्र-XXV. 15-16

9 तत्रैव, चित्र- XXIV. 1-4,XLIV.10

10 तत्रैव, चित्र- XXIV. 15-17

11 तत्रैव, चित्र- XXV. 22-24

12 तत्रैव, चित्र- XXIV. 5-14

शिवदत्त [1] और हगमास के सिक्कों, राजनय जनपद के सिक्कों पर देवी लक्ष्मी तथा पाञ्चाल के भद्रघोष के सिक्कों पर लक्ष्मी का इस प्रकार का अङ्कन मिलता है। कौशाम्बी तथा उज्जयिनी के सिक्कों पर देवी का गज-लक्ष्मी का रूप प्राप्त होता है। इनका यही स्वरूप अयोध्या के शिवदत्त एवं विशाखदेव के सिक्कों तथा मथुरा के विदेशी क्षत्रप रज्जुवुल एवं सोदास के सिक्कों पर मिलता है। एशियाई परम्परा में नृत्य करती हुई तथा दाहिने हाथ में पुष्प को लिए हुए एक बाला को कुमार स्वामी श्रीलक्ष्मी की प्रतिमा से सम्बन्धित करते हैं। [2] इण्डोसिथियन सिक्के पर अद्वितीय रूप से पुष्कलावती की रक्षिका देवी का अंङ्कन प्राप्त होता है जिसे कुमार स्वामी श्री लक्ष्मी देवी के रूप में स्वीकार करते हैं। [3] अजिलिसेस के सिक्कों पर भी देवी की दो हाथियों के बीच में प्रदर्शित किया गया है। [4] इस प्रकार से सभी स्थानों पर लक्ष्मी का चित्रांङ्कन इस बात के प्रमाण की पुष्टि करता है कि वह सभी के द्वारा धन देने वाली देवी के रूप में स्वीकार कर ली गई थीं।

प्रथम द्वितीय शती ई०पू० के भरहुत, बोधगया तथा साँची की वेदिकाओं एवं तोरण द्वारों पर भी श्रीलक्ष्मी का अङ्कन मिलता है। बसाढ़ [5] से शुङ्गकालीन कतिपय 'श्रीलक्ष्मी' की मृण्मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। एक विशेष मृण्मूर्ति पर पूर्ण विकसित कमल पर आकृति खड़ी है जिसके चारों ओर उगते हुए कमल के वृक्ष हैं तथा उसका हाथ नितम्ब पर हैं। वह क्षीणकाय तथा पंखों को धारण किये हुए है। यह आकृति निश्चित रूप से भारतीय प्रतीत नहीं होती है। ब्लाख महोदय इस पर पर्सियन प्रभाव मानते हैं।

गजलक्ष्मी अथवा अभिषेक प्रकार की देवियों का उच्चित्रण न केवल सिक्कों पर अपितु मुहरों पर भी मिलता है। मृण्मूर्तियों एवं उच्चित्रणों में भरहुत, बोधगया तथा

---

1 तत्रैव, चित्र- XXV.26

2 व्हाइटहेड, पी०एम०सी०, I, पृष्ठ-16, चित्र II.35 तथा पृष्ठ -17, चित्र-II,45

3 गार्डेनर, बी०, एम०सी०, पृष्ठ-162

4 आर्कलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया ऐनुएल रिपोर्ट, 1914-15, पृष्ठ 31

5 तत्रैव, 1913-14, पृष्ठ-116, चित्र-XLIV, संख्या 550

साँची से भी देवी प्रतिमाएँ उपलब्ध होती हैं। किन्तु मथुरा एवं अमरावती से इस प्रकार का कोई उल्लेख नहीं मिलता है। 200 ई०पू० से ही गजलक्ष्मी का उल्लेख मुख्यरूप से उत्तर भारत में प्राप्त था। भरहुत [1] से प्राप्त एक दृश्य में देवी को कमल पर आराम मुद्रा में बैठे हुए तथा अपने हाथों को स्तनों पर मोड़े हुए दिखाया गया है, जबकि उनके दोनों ओर हाथी अपनी सूड़ों से पात्र द्वारा उन पर जल गिरा रहे हैं। दूसरे उच्चित्रण में देवी सुसज्जित खड़ी हैं दो हाथी उनका अभिषेक कर रहे हैं तथा दाहिना हाथ उनके बायें स्तन पर स्थित है जो अतिशय वात्सल्य की भावना को व्यक्त करता है। [2] भरहुत की गजलक्ष्मी का प्रस्तुतीकरण अद्वितीय महत्व का है। यह पूर्णघट से परिपूर्ण कमल पर आसीन है जो जल, समृद्धि एवं प्रचुरता को दर्शाता है। [3] इसी से मिलता जुलता देवी का उच्चित्रण दीवाल के ऊपरी भाग वाले प्रस्तर पर भी है।[4] साँची के तोरण द्वार पर भी लक्ष्मी का चित्रण अद्वितीय रूप में प्रदर्शित है जिसमें लक्ष्मी को पूर्ण विकसित कमल पर हाथ को मोड़े हुए दिखाया गया है तथा दो हाथी उनका अभि षेक करा रहे हैं। [5] इस उच्चित्रण के साथ एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि इसमें दो पात्रों के मध्य यक्ष-मिथुन खड़े हैं तथा एक मानव कमल-कलिका को अपने दाहिने हाथ में लिए हुए है।

प्रथम शताब्दी ई०पू० तक गजलक्ष्मी की प्रतिमा भूरिशः प्राप्त होने लगती है। गजलक्ष्मी का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अङ्कन साँची के दक्षिणी तोरण द्वार पर मिलता है [6] जिसका समय प्रथम शती ई०पू० है। यहाँ पर देवी अपने बायें हाथ को नितम्ब पर रखे हुए पूर्ण विकसित कमल पर खड़ी है। उनके दाहिने हाथ में कमल है तथा दो हाथी

---

1 बरूआ, बी०एम०, भरहुत, I, पृष्ठ 85;III ,पृष्ठ , 47, आकृति-79

2 वही, I, पृष्ठ-85; III, पृष्ठ-47, आकृति-80

3 शर्मा, बी०एन०, अभिषेक इन इण्डियन आर्ट, जर्नल ऑफ दि ओरियन्टल इन्स्टीट्यूट, XXI, पृष्ठ 168-69, चित्र-I

4 बरूआ, बी०एम०, भरहुत, आकृति-80,

5 मार्शल और फूशे, दि एलिमेन्ट्स ऑफ साँची, III, चित्र-LXXXIII,49

6 तत्रैव, II, चित्र-XI

स्नान करा रहे हैं। उच्चित्रण का सम्पूर्ण भाग पत्तियों एवं पुष्पों से परिपूर्ण है तथा उनके मध्य भाग में प्रत्येक दिशा में हंस युगल बैठे हुए हैं। साँची के उत्तरी तोरण द्वार के पूर्वी छोर पर देवी गजलक्ष्मी का सुन्दर चित्रण है। वह दाहिने हाथ में कमल कलिका तथा बायें हाथ में तौलिया लिये हुए दिखाई गई हैं। [1]

कुषाण कालीन प्रतिमाओं में देवी लक्ष्मी को दो भुजाओं वाली स्त्री-आकृति के रूप में प्रदर्शित किया गया है। उनका दाहिना हाथ अभयमुद्रा में तथा बायें में कमल है तथा दो हाथियों द्वारा उनका अभिषेक किया जा रहा है। मथुरा से लक्ष्मी की एक स्वतंत्र कलात्मक प्रतिमा मिली है जो लखनऊ संग्रहालय [2] में सुरक्षित है तथा जिसका समय प्रथम-द्वितीय शताब्दी ई० निर्धारित किया गया है। इस काल की सभी प्रतिमाओं में लक्ष्मी का सम्बन्ध धन एवं ऐशवर्य के स्वामी कुबेर के साथ है। महाकाव्यों में लक्ष्मी को कुबेर की पत्नी बताया गया है। [3] प्रारम्भिक कुषाण काल की एक छोटी पट्टिका पर समूह में चार ब्राहमण देवताओं यथा-अर्द्धनारीश्वर, विष्णु, गजलक्ष्मी एवं कुबेर का अङ्कन है।[4] मथुरा से प्राप्त उन प्रतिमाओं में लक्ष्मी कमल के साथ, भद्रा फल के साथ, हारीति बच्चे के साथ तथा चौथी आकृति के रूप में कुबेर स्वयं हैं। [5] इसी समय की एक अन्य प्रतिमा में[6] कुबेर मद्य चषक लिए हुए प्रदर्शित हैं तथा उनके सामने दोनों ओर दो स्त्री देवियाँ बैठी हैं जिसमें से एक कमल को धारण किए हुए है जिसका समीकरण देवी-लक्ष्मी के साथ किया जा सकता है।

गुप्तकालीन सिक्कों एवं मुहरों पर श्रीलक्ष्मी एवं गजलक्ष्मी का प्रायः अङ्कन प्राप्त होता है। गुप्तकालीन सुवर्ण-सिक्कों पर 'श्रीलक्ष्मी' विभिन्न रूपों में प्रदर्शित की

---

1 तत्रैव, II, आकृति-XXIV

2 अग्रवाल, वी०एस०, ए शार्ट गाइड-बुक टू दि प्राविन्सियल म्यूजियम, लखनऊ, आकृति 14- 15, आकृति 8; जिमर, एच०, वही, पृष्ठ-372

3 बनर्जी, वही, पृष्ठ -372

4 अग्रवाल, कैट० ऑफ ब्राह्मनिकल इमेज इन मथुरा आर्ट, पृष्ठ - ix तथा 41

5 तत्रैव, आकृति X-XI, नं० 0.241

6 तत्रैव, नं० सी० 30

गई हैं। समुद्रगुप्त के स्वर्ण-सिक्कों[1] पर देवी को समृद्धि की प्रतीक के रूप में दिखाया गया है। अभिषेक अथवा गजलक्ष्मी प्रकार का अङ्कन शशांक एवं जय के सिक्कों पर उपलब्ध होता है।[2] गुप्तकालीन मुहरों पर यह आकृति प्रायः सामान्य थी। बसाढ़[3] से प्राप्त एक मुहर पर अङ्कित लक्ष्मी प्रतिमा का विशेष उल्लेख किया जा सकता है। इस प्रतिमा में लक्ष्मी वृक्ष-समूह के मध्य स्थित हैं तथा दो हाथी उन पर जल-वृष्टि कर रहे हैं जबकि दो बौनी आकृतियाँ धन की थैली के समान कुछ लिए हुए हैं। मुहर पर जिन आकृतियों का उच्चित्रण धन की थैली के साथ किया गया है, उनका समीकरण श्रेष्ठि, सार्थवाह एवं कुलिक-निगम के रूप में किया जा सकता है।[4] दूसरे एक मुहर पर गजलक्ष्मी के साथ मनुष्य की आकृति उत्कीर्ण है जो उनके बगल में स्थित थैले से सिक्के निकाल कर बाहर फेंक रहा है।[5] अनेक मुहरों पर लक्ष्मी का अङ्कन यक्ष के साथ किया गया है जो उनकी थैली से धन को निकाल रहा है।[6] ब्लॉख के अनुसार ये कुबेर के सेवक हैं जबकि बनर्जी[7] उनकी पहचान यक्षों के साथ करते हैं। नालन्दा से प्राप्त मुहर ठीक इसी प्रकार की है।

भीटा से प्राप्त मुहर पर गजलक्ष्मी गरुड़ के साथ अथवा अलग से उच्चित्रित है।[8] मुहर संख्या 32 के सन्दर्भ में बनर्जी महोदय की अवधारणा है कि यह गरुड़ नहीं बल्कि 'चौरी' हैं।[9] इन विभिन्न मुहरों के अध्ययन से एक महत्वपूर्ण तथ्य यह अभिव्यंजित होता है कि गुप्तकाल में लक्ष्मी धन के स्वामी कुबेर के साथ अविच्छिन

---

1 अल्टेकर, जी०जी०सी०, बी०एच०, आकृति I, 11-15, II और III

2 एलन, बी एम सी, जी०डी०, पृष्ठ 148,151

3 ए०एस०आई०ए०आर०, 1903-04, पृष्ठ 107, मुहर नं० 3

4 तत्रैव, मुहर सं०-4

5 तत्रैव, मुहर सं०-6

6 तत्रैव, मुहर सं०- 7,8,10,11,13, आकृति XI

7 बनर्जी, वही, पृष्ठ-195

8 ए०एस०आई०ए०आर०, 1911-12, आकृति-XVIII-XIX

9 बनर्जी, वही,पृष्ठ -196

रूप से सम्बद्ध हो चुकी थीं। कुषाण काल की कतिपय प्रतिमाओं में लक्ष्मी कुबेर के साथ हैं तथा उनके दोनों ओर दो देवियाँ प्रदर्शित हैं। साँची के तोरण द्वार पर लक्ष्मी यक्ष एवं यक्षिणी के साथ हैं। उनके साथ उच्चित्रित चित्रों में या तो वे खाना अथवा पेय पदार्थ के साथ हैं या मिथुन। किन्तु गुप्तकाल में लक्ष्मी का स्वरूप पूर्ण रूप से धन की देवी के रूप में प्रतिष्ठित हो चुका था। लक्ष्मी का धन की देवी के रूप में अङ्कन भीटा से प्राप्त एक मुहर पर मिलता है जिसमें वे अपने एक हाथ में शंख को लिए हुए है जो एक निधि का प्रतीक है।[1] इस प्रकार की देवी की आकृतियाँ चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य – चक्रविक्रम प्रकार तथा कुमार गुप्त प्रथम महेन्द्रादित्य के गजारोहण प्रकार की मुद्राओं पर भी मिलता है।[2] मार्कण्डेय पुराण[3] लक्ष्मी को अष्टनिधियों की देवी स्वीकार करता है, यथा- पद्म, महापद्म, मकर, कच्छप , मुकुन्द, नील, आनन्द तथा शंख। बसाढ़[4] से प्राप्त एक गुप्तकालीन मुहर पर लक्ष्मी का उल्लेख धन एवं व्यापार की देवी के रूप में किया गया है, जिसमें देवी के वाहन के रूप में सिंह का अङ्कन है।

गुप्तकालीन कला में लक्ष्मी को विष्णु की पत्नी के रूप में स्वीकार किया गया है। गुप्त-अभिलेख ऐसे प्रथम अभिलेखीय प्रमाण हैं जो श्रीलक्ष्मी को विष्णु के साथ जोड़ते हैं। स्कन्दगुप्त[5] के समय का जूनागढ़ अभिलेख तथा मिहिरभोज का ग्वालियर प्रस्तर अभिलेख[6] विष्णु के साथ लक्ष्मी का उल्लेख करते हैं। जूनागढ़ अभिलेख में लक्ष्मी को कमल पर आसीन वर्णित किया गया है जबकि ग्वालियर अभिलेख में श्रीलक्ष्मी को विष्णु के वक्षस्थल पर बैठी हुयी प्रदर्शित किया गया है। प्रकटादित्य के

---

1 ए० एस०आई०ए०आर०, 1911-12 आकृति-XIX.42

2 अल्तेकर, वही, आकृति-XVIII.14

3 मार्कण्डेय पुराण, अध्याय-68.4

4 ए०एस०आई०ए०आर०, 1913-14, पृष्ठ-129-30, आकृति- XLVI.93

5 फ्लीट, सी II, iii, नं०-14,1.1

6 तत्रैव, नं०-37,1.8

सारनाथ [1] तथा आदित्यसेन के अपसढ़ [2] अभिलेख में 'श्री' को वासुदेव की पत्नी के रूप में भी स्वीकार किया गया है।

चन्द्रगुप्त कुमार देवी, चन्द्रगुप्त द्वितीय और कुमार गुप्त प्रथम के सिंहनिहन्ता तथा कुमारगुप्त प्रथम के राजा-रानी प्रकार के सिक्कों पर लक्ष्मी सिंह के पीठ पर बैठी हुई दिखाई गई हैं। इस प्रकार के सिक्कों पर देवी अपने हाथों में विशेष प्रकार की रस्सी एवं कार्नुकोपिया लिए हुए है जिसमें चन्द्रगुप्त-कुमार देवी [3] प्रकार के सिक्के महत्वपूर्ण हैं। समुद्रगुप्त के सिक्कों पर वह अपने आयुध के साथ प्रदर्शित हैं। कुछ सिक्कों पर देवी को एक विशेष प्रकार की रस्सी एवं कमल के साथ प्रदर्शित किया गया है तो कभी एक हाथ में कमल है दूसरा हाथ रिक्त या कटिभाग पर स्थित रूप में अथवा नीचे लटकते हुए , इत्यादि रूपों मे उच्चित्रित किया गया है। कुमारगुप्त प्रथम के सिंहनिहन्ता [4] प्रकार के सिक्कों पर वह सिंह पर दाहिने हाथ में कमल को नीचे किये हुए तथा एक विशेष रस्सी अथवा माला और कमल या दाहिने हाथ में केवल कमल के साथ चित्रित हैं। कुमार गुप्त प्रथम के ही राजा-रानी प्रकार के सिक्कों पर देवी दाहिने हाथ में कमल के साथ आराम मुद्रा में बायें हाथ को जंघे पर रख कर सिंह पर बैठी हुई हैं। [5] परम्परा के अनुसार सिंह दुर्गा का वाहन है। विष्णुधर्मोत्तर पुराण [6] के अनुसार दुर्गा का मन्दिर सिंह-चिह्न के प्रतीक द्वारा जाना जाता है। सामान्यतया दुर्गा एवं लक्ष्मी का उल्लेख एक दूसरे के साथ भेद के रूप में प्रदर्शित है। यद्यपि गुप्तकालीन स्वर्ण-सिक्कों पर दोनों देवियों में समानता दिखाई देती है। खुजराहो से प्राप्त एक प्रतिमा सम्बन्धी साक्ष्य के आधार पर लक्ष्मी एवं उनसे सम्बन्धित देवी दुर्गा की पहचान और अधिक प्रमाणित हो जाती है, जिसमें लक्ष्मी को

---

1 तत्रैव, सी II, iii, नं॰ 79, 1.4

2 तत्रैव, सं॰-42, 11, 11-12

3 अल्तेकर, जी॰जी॰सी॰बी॰एच॰, आकृति-I, 1-10

4 तत्रैव, आकृति- XXVIII तथा XXIX

5 तत्रैव, आकृति-XXXI.14

6 विष्णुधर्मोत्तर पुराण, III,94.38

सिंहवाहिनी के रूप में दिखाया गया है।[1] गजलक्ष्मी सिंह पर अर्द्धपर्यङ्कक मुद्रा में प्रदर्शित है तथा दो हाथी सूड़ों में घट लिए हुए उनका अभि षेक कर रहे हैं। देवी चतुर्भुजी हैं जिसमें से दो भुजाओं में कमल-समूह है तथा उनके आसन के नीचे उकड़ू बैठा हुआ तथा मुँह उठाये हुए सिंह का उच्चित्रण है। हेमाद्रि ने सम्भावना व्यक्त की है कि इस प्रकार की लक्ष्मी प्रतिमाओं का चित्रांकन प्रायः सिंहवाहिनी के रूप में होता था।[2] प्रतिमालक्षण के आधार पर यदि हम खुजराहो की प्रतिमा एवं गजलक्ष्मी की प्रतिमा का मूल्यांकन करें तो इनमें कोई विशे ष अन्तर नहीं प्राप्त होता।

उत्तरी भारत के विभिन्न भागों से गुप्तकाल एंव मध्यकाल में गजलक्ष्मी की प्रस्तर मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं जो उनकी प्रसिद्धि को स्वयं ही प्रमाणित कर देती हैं। मध्य प्रदेश के सागर जिले के एरण[3] नामक स्थान से प्राप्त प्रस्तर मूर्ति प्रारम्भिक गुप्तकाल की है जो देवी को हस्ति-युगलों द्वारा अभि षेक की मुद्रा में प्रदर्शित करती है। कौशाम्बी[4] से प्राप्त एक स्तम्भ पर देवी को पद्म कोष में स्थित अर्द्धमुकलित पुष्पों एवं खिले हुए पुष्पों से घिरी हुई रूप में चित्रित किया गया है। देवी कमलासीन हैं तथा कमल-समूह को धारण किये हुए हैं एवं उच्चित्रित हाथी उन्हें स्नान करा रहे हैं।

चुनार के बलुआ पत्थर से निर्मित मध्यकालीन मन्दिर के चौखट से गजलक्ष्मी की एक प्रतिमा प्राप्त हुई है, जो अब सारनाथ संग्रहालय[5] में सुरक्षित है। तीन प्रक्षेपों वाली प्रतिमा में चतुर्भुजी गजलक्ष्मी को झरोखे के मध्य में कुशन (गद्दी) पर बैठी हुई प्रदर्शित किया गया है। झरोखे में नवग्रह की आकृति के अतिरिक्त बगल में गणेश तथा सरस्वती का भी उच्चित्रण है। देवी के निचले बायें हाथ में जलपात्र है जबकि दाहिना हाथ वरदमुद्रा में स्थित है। ऊपर के दोनों हाथों में कमल है तथा दो खड़े हाथी उनके मस्तक पर जल डाल रहे हैं।

---

1 एन्शियेन्ट इण्डिया, सं०-15, पृष्ठ-61; पी आई एच सी- 1960, पृष्ठ-83

2 तत्रैव, पृष्ठ-83; अग्रवाल, यू०, खजुराहो स्कल्पचर्स, पृष्ठ-58

3 इण्डियन आर्कियोलाजी, 1960-61, पृष्ठ -62, आकृति-LXXI.ए

4 तत्रैव, 1956-57, पृष्ठ-29, आकृति-XXXVIII

5 मजूमदार, बी०, अ गाइड टू सारनाथ, पृष्ठ-44(सं० जी-38)

उड़ीसा के मन्दिर के प्रवेश द्वार के ऊपरी चौखट के मध्य भाग में गजलक्ष्मी का स्वरूप अंकित है। अर्द्धपर्यङ्कमुद्रा में स्थित देवी का कमल पर खड़े हाथियों द्वारा पात्र से अभिषेक कराया जा रहा है। इस प्रकार के उच्चित्रण हमें मुक्तेश्वर,[1] ब्रह्मेश्वर[2] और भुवनेश्वर के परशुरामेश्वर [3] मन्दिर, कटक[4] के नरसिंह मन्दिर, भीमापुर[5] के पास मणिनागेश्वर मन्दिर तथा खिचिंग [6] के सभी प्राचीन मन्दिरों के प्रवेश द्वारों पर एवं मयुरभञ्ज [7] तथा कटक[8] की गुफाओं में भी मिलते हैं।

खुजराहो से भी लक्ष्मी की प्रतिमा प्रवेश द्वार के ऊपरी चौखट के मध्य भाग से प्राप्त हुई है। इसी प्रकार की लक्ष्मी की आकृति लक्ष्मणमन्दिर [9] के प्रवेश द्वार के ऊपरी भाग में प्राप्त होती है। लक्ष्मण मन्दिर में एक दूसरी खड़ी हुई लक्ष्मी की चतुर्भुज प्रतिमा मिली है। [10] दो हाथ क्रमशः कमल एवं प्रलम्ब मुद्रा में स्थित हैं तथा अन्य दो अस्त-व्यस्त हैं। दो सेवक माला एवं पुष्प पत्तियों से युक्त कमल उनके सिर के ऊपर लिये हुए हैं। सम्भवतः उनका यह 'पद्मालया' का स्वरूप है। उनके पैर के समीप एक पक्षी की आकृति है जो भग्न हो चुकी है सम्भवतः वह उल्लू है। देवी लक्ष्मी का प्रस्तुत निदर्शन उनकी प्रारम्भिक अवधारणा को व्यक्त करता है। वामन मन्दिर के प्रवेश द्वार से देवी लक्ष्मी की एक प्रतिमा मिली है, जिसमें देवी के दो हाथों को वरदमुद्रा तथा कमल के साथ दिखाया गया है तथा चक्र और अमृत-पात्र अन्य

---

1 रामबाच, पी०, दि गोल्डेन एज ऑफ इण्डियन आर्ट, आकृति-68-69

2 मित्रा, डी०, भुवनेश्वर, पृष्ठ-48

3 तत्रैव, पृष्ठ-26

4 ए०एस०आई०ए०आर०, 1904-05, पृष्ठ-121-23

5 वसु, एन०एन०, दि आर्कियोलाजिकल सर्वे ऑफ मयूरभञ्ज , I, आकृति-29

6 तत्रैव, 1, पृष्ठ- 1XV-1XVi

7 तत्रैव, I, पृष्ठ- IXV-IXVi

8 फर्ग्युशन एण्ड बर्जेस, केव टेम्पुल आफ इण्डिया, पृष्ठ - 71 आकृति-1

9 धम्मा, बी०एल०, खुजराहो,पृष्ठ -16

10 गांगोली, ओ०सी०, दि आर्ट ऑफ दि चन्देलाज, पृष्ठ - 36, चित्र 43

हाथों में है। लक्ष्मण मन्दिर में देवी को अपने दोनों ऊपरी हाथों में कमल को धारण किये हुए आसीन मुद्रा में दिखाया गया है तथा उनको दो हाथी अभिषेक कर रहे हैं। उनका नीचे का एक हाथ वरदमुद्रा में है, जबकि दूसरे में अमृत-पात्र है। दूसरी प्रतिमा में देवी का चित्रण स्थानक रूप में प्राप्त होता है। हाथों में वरदमुद्रा तथा शंख का अंकन किया गया है। कतिपय अन्य प्रतिमाएँ ऊपरी हाथों में कमल पुष्प तथा अन्य दो हाथों में या तो घट या विल्व-फल के साथ उच्चित्रित की गई है किन्तु इन प्रतिमाओं में हाथियों के द्वारा देवी लक्ष्मी के अभिषेक का अङ्कन नहीं प्राप्त होता। [1]

नालन्दा के ब्राह्मण मन्दिर से एक फलक पर देवी की अत्यन्त सुन्दर प्रतिमा गजलक्ष्मी के रूप में प्राप्त होती है। पूर्ण विकसित कमल पर पैरों को एक दूसरे से काटते हुए बैठी हैं। वह अपने दाहिने हाथ में कमल-समूह को धारण किये हैं जिसमें पूर्णविकसित तथा अर्द्धविकसित कमल पुष्प हैं। देवी अपने दाहिने हाथ में शंख को धारण किये हुए हैं तथा उच्चित्रित दो हाथी कमल पर खड़े होकर दोनों ओर से देवी को जलपात्र से स्नान करा रहे हैं। देवी के कान में गोलाकार आभूषण, गले में हार, भुजबन्द तथा हाथ में चूड़ी या कड़ा है। उनका मस्तक विभिन्न पुष्पों के द्वारा आर्कषक ढंग से सुसज्जित है तथा बालों का चित्रण 'धम्मिल शैली' में किया गया है। [2]

राजस्थान के आबनेरी नामक स्थान से एक उच्चित्रण प्राप्त हुआ है जो अब आमेर संग्रहालय [3] में सुरक्षित है। इसमें देवी अपने दोनों हाथों में कमल-पु ष्प लिये हुए है तथा बायें हाथ में एक चकोतरा फल है जो कमल को स्पर्श किये हुए है। दो हाथी देवी का अभिषेक कर रहे हैं। उनके स्तन अत्यन्त उन्नत हैं तथा वह सामान्य आभूषणों से सुसज्जित हैं। उनके दोनों ओर क्रमशः गणेश एवं कुबेर चित्रित हैं। ये तीनों ललितासन मुद्रा में बैठे हैं। कुबेर की पत्नी ऋद्धि मदिरा-पात्र को लिए हुए हैं

---

1 अग्रवाल, यू०, खुजराहो स्कल्पचर्स एण्ड देयर सीग्निफिकेन्स, पृष्ठ - 58-59

2 सहाय, भगवन्त, आइकोनोग्रैफी ऑफ माइनर हिन्दू एण्ड बुद्धिस्ट डीटीज, आकृति-28

3 ललित कला, सं०-1-2,पृष्ठ-132-33, आकृति-5

तथा धन के देवता कुबेर के दाहिने हाथ में स्थित चषक में मदिरा डाल रही हैं। मथुरा [1] से भी इसी प्रकार का समान उच्चित्रण प्राप्त होता है।

बोगरा से ग्यारहवी शताब्दी की गजलक्ष्मी की एक काँस्य प्रतिमा प्राप्त हुयी है जो अब राजशाही संग्रहालय [2] में सुरक्षित है। देवी की चर्तुभुजी प्रतिमाओं में यह अद्वितीय उदाहरण है। यहाँ देवी त्रिभुङ्गमुद्रा में खड़ी हैं। वह अपने तीनो हाथों में क्रमशः मातुलुंग, अंकुश तथा एक विशेष प्रकार की पिटारी को लिए है। चौथा हाथ टूट गया है। उसी मुद्रा में स्थित दो ' चौरियों' द्वारा उनकी सेवा की जा रही है। सुन्दर कमल की आभा देवी के मस्तक को सुशोभित कर रही है तथा दो हाथी उन्हें स्नान करा रहे हैं। सम्पूर्ण प्रतिमा की बनावट अत्यन्त कलात्मक है। राजशाही संग्रहालय में ही आभा एवं हाथियों से रहित दो भुजाओं वाली लक्ष्मी की कांस्य प्रतिमा अत्यन्त सुन्दर है। [3]

बंगीय साहित्य[4] परिषद के संग्रहालय में भी चार भुजा वाली देवी की एक प्रतिमा रखी हुयी है। वह कमलासीन है तथा दो हाथी उन्हें स्नान करा रहे हैं। अपने दाहिने हाथों में क्रमशः अक्षमाला तथा बाण एवं बायें में क्रमशः कमल समूह तथा पुस्तक है। बृहत्संहिता [5] में भी देवी का कुछ इसी प्रकार का वर्णन प्राप्त होता है। प्रज्ञापारमिता के अनुसार लक्ष्मी की इस मूर्ति की पहचान बौद्ध देवी के साथ की जा सकती है।

लक्ष्मी को विष्णु की पत्नी स्वीकार किया गया है जिसका उल्लेख पहले से ही प्राप्त होता है। विष्णु-लक्ष्मी के पारस्परिक सम्बन्धों को हम गुप्तकालीन मुहरों एवं सिक्कों पर देख सकते हैं, जहाँ वह न केवल विष्णु के प्रमुख चिन्हों-शंख के साथ

---

1 शर्मा, बी०एन०, बुलेटिन ऑफ एन्शियेन्ट इण्डियन हिस्ट्री एण्ड आर्कियोलाजी, सागर यूनिवर्सिटी, सं०-2, पृष्ठ- 73-75, आकृति VI

2 एच०बी०आर०, I, पृष्ठ-439

3 तत्रैव, पृष्ठ-439

4 बनर्जी, आर० डी०, स्टर्न इण्डियन स्कूल आफ मेडिवल स्कल्पचर्स, पृष्ठ 1&2

5 बृहत्संहिता, अध्याय-57, VV.38-39

प्रदर्शित हैं, बल्कि उनके वाहन गरुड़ के साथ भी यही एक वास्तविक अङ्कन है जिसमें लक्ष्मी अपने पति के साथ दिखाई देती हैं। देवगढ़ [1] में अनन्तशायी विष्णु का उच्चित्रण उल्लेखनीय है जिसमे विष्णु सप्त-फण वाले विशेष सर्प के मुड़े हुए भाग के ऊपर लेटे हैं तथा लक्ष्मी को उनके पैर के पास बैठकर दाहिने पैर को दबाते हुए दिखाया गया है। यह प्रतिमा देवगढ़ के प्रवेश द्वार के ऊपरी भाग के मध्य में स्थित है।

लक्ष्मी नारायण की प्रतिमा में देवी प्रायः विष्णु के बायें जंघे पर बैठी हुई हैं। उनका दाहिना हाथ उनके गले में है तथा बायें में कमल-समूह को धारण किये हुए हैं। उनका दाहिना पैर विष्णु के जंघे के ऊपर मुड़ा हुआ है तथा बांया पैर लटक रहा है। प्रणाम करते हुए गरुड़ को नीचे कमल का सहारा लिये हुए चित्रित किया गया है। इसी प्रकार का एक उच्चित्रण ढाका जिले के बस्ता नामक स्थान से भट्टशाली[2] के द्वारा प्रतिवेदित किया गया है। मथुरा [3] से लक्ष्मी नारायण की एक छोटी पीतलकी प्रतिमा प्राप्त हुई है जो भारतीय संग्रहालय में सुरक्षित है जिसके पीछे नागरी में एक तिथि युक्त अभिलेख है (सम्वत् 1538 आई०ई० 1481ई०)। इस प्रकार की प्रतिमाएँ खुजराहो के लक्ष्मण एवं परशुरामेश्वर मन्दिर से भी मिली हैं।

भारतीय कला में सरस्वती के साथ विष्णु जब खड़े दिखाये जाते हैं, तो प्रायः उनके साथ लक्ष्मी भी होती हैं। इस प्रकार की प्रतिमा प्रायः मध्यकाल में मिलती है जिसमें लक्ष्मी एवं सरस्वती के क्रमशः दो हाथ हैं तथा विष्णु के बगल में दोनों ओर खड़ी हैं। लक्ष्मी का बायाँ हाथ उनके कमर पर है तथा दाहिना उठा हुआ है जिसमें कमल-पुष्प वृन्त है। विष्णु के साथ ऐसी लक्ष्मी की प्रतिमा देश के सम्पूर्ण उत्तरी भाग से प्राप्त होती हैं। पाल कालीन प्रतिमाओं में इस प्रकार की अनेक मूर्तियाँ मिलती हैं। [4] श्रीलक्ष्मी का प्रतिमालक्षण सम्बन्धी प्रमाण इस बात की पुष्टि करता है कि

---

1 एम०ए०एस०आई०-70, पृष्ठ-14, आकृति-X, बी

2 भट्टशाली, एन०के०, आइकोनोग्रैफी ऑफ बुद्धिस्ट एण्ड ब्राह्मनिकल स्कल्पचर्स इन दि ढाका म्यूजियम, पृष्ठ-88, आकृति-XXXIV

3 ए०एस०आई०ए०आर०, 1924-25, पृष्ठ-129-30

4 पटना म्यूजियम, आर्कियोलाजी सं०-10609,10610 और 6361

श्रीलक्ष्मी का सम्प्रदाय मातृदेवी से घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ था। ये प्रतिमाएँ विभिन्न रूपों में बनारस, तक्षशिला एवं राजघाट इत्यादि स्थानों से प्राप्त हुई हैं। ये नग्न मृण्मूर्ति वाली स्त्री आकृति सैन्धव नगरों से भी अनेक रूपों में उपलब्ध होती है। प्रायः ये मकर तथा अन्य जानवर तथा पक्षियों के साथ सम्बन्धित की गई है। ऋग्वेद में 'श्री' सुन्दरता के प्रत्यय के रूप में उल्लिखित है। शुभ एवं प्रसन्नता को वह प्रदान करने वाली है। कालान्तर में यह अत्यधिक समृद्धि एवं वैभव की देवी के रूप में ग्रहण की जाने लगी। श्रीसूक्त में श्रीलक्ष्मी के पूर्ण प्रतिमालक्षण सम्बन्धी प्रमाण मिलते हैं। वह कमल-पुष्प एवं हस्ति युगलों के द्वारा अभिषेक कराई जाती हुई प्रतिमालक्षण सम्बन्धी ग्रन्थों में वर्णित है। वैदिक-साहित्य में 'श्रीलक्ष्मी' का उल्लेख विष्णु की पत्नी के रूप में नहीं किया गया है। किन्तु उनकी उर्वरता की देवी के रूप में पहचान 'अदिति' के सन्दर्भ में है जिनका उल्लेख कतिपय स्थानों पर विष्णु की पत्नी के रूप में किया गया है। महाकाव्य एवं पौराणिक साहित्य में विष्णु की पत्नी के अतिरिक्त उन्हें कामदेव की माता कहा गया है तथा वह कुबेर के साथ भी सम्बन्धित हैं। प्रारम्भिक पौराणिक प्रतिमालक्षण में 'श्रीलक्ष्मी' को दाहिने हाथ में कमल को लिये हुए, पूर्ण विकसित कमल पर खड़ी, पद्मपीठा, या पद्मवासिनी प्रकार में उनके चारों तरफ उगते हुए कमल को दिखाया गया है। गजलक्ष्मी प्रकार में वह हाथियों द्वारा सेवित हैं तथा हाथी उनके सिर के ऊपर जल वृष्टि कर रहे हैं। कतिपय शुङ्ग कालीन मृण्मूर्तियों में वह पंखों के साथ प्रदर्शित हैं । कुछ प्रतिमाओं में देवी अपने सेवकों के साथ प्रदर्शित हैं जो खाने एवं पीने की सामग्री को लिये हुए हैं। गुप्तकाल में श्रीलक्ष्मी का अङ्कन भाग्य एवं विजय की देवी के रूप में किया गया है जो इस काल की मुद्राओं एवं मुहरों पर सामान्य प्रतीक के रूप में देखा जा सकता है। गुप्तकालीन मुहरों पर लक्ष्मी यक्षों के साथ हैं जो थैले से सिक्कों को उड़ेल रहे हैं । इस प्रकार का दृश्यांकन लक्ष्मी के धन की देवी होने के प्रमाण की पुष्टि करता है। बसाढ़ से प्राप्त एक मुहर पर इन्हें समुद्र में यात्रा करने वाले व्यापारियों की संरक्षिका देवी के रूप में चित्रित किया गया है जहाँ उनके हाथ में वैष्णव प्रतीक है। कतिपय गुप्तकालीन सिक्कों एवं खुजराहो की प्रतिमाओं में इनका अङ्कन सिंहवाहिनी के रूप में किया गया है। मध्यकाल में देवी की श्रीलक्ष्मी एवं गजलक्ष्मी प्रकार की प्रतिमाएँ निरन्तर अत्यन्त प्रसिद्धि को प्राप्त हुई

तथा उनका विविध प्रतिमालक्षण स्वरूप हमें भारत के सम्पूर्ण उत्तरी भागों से प्राप्त होता है। प्रतिमालक्षण में वह विष्णु के साथ उनकी पत्नी के रूप में हैं। लक्ष्मीनारायण प्रतिमा में वह अपने स्वामी के जंघे पर बैठी हुई प्रदर्शित की गयी हैं।

दक्षिण भारतीय कला के उच्चित्रण में भी गजलक्ष्मी एवं श्रीलक्ष्मी का स्वरूप प्राप्त होता है। महाबलिपुरम [1] तथा एलोरा [2] से ऐसी प्रतिमाएँ प्राप्त हुयी हैं जिसमें देवी का अभिषेक हाथियों द्वारा किया जा रहा है। यह अत्यन्त महत्वपूर्ण उल्लेखनीय तथ्य है कि एलोरा में देवी नागों की आकृति का आश्रय लिए हुए हैं तथा नाग अपने हाथ में पात्र को लिए हुए अपनी पत्नियों के साथ उपस्थित हैं। पीतलखोरा [3] से भी गजलक्ष्मी के वास्तविक स्वरूप का अङ्कन प्राप्त होता है। यहाँ देवी आभूषणों से सुसज्जित हैं। सत्रहवीं-अठारहवीं शती ई० की बहुतायत काँस्य प्रतिमाओं का चित्रण श्रीलक्ष्मी [4] के रूप में प्राप्त होता है। अपने कुछ निश्चित उच्चित्रण में वह वैष्णव प्रतीक शंख और चक्र को धारण किये हुए दिखाई गई है। उत्तरी अर्काट [5] जिले के सियामंगलम नामक स्थान से देवी की उल्लेखनीय प्रतिमा प्राप्त होती है जिसमें वह अपने पति विष्णु के साथ हैं। लक्ष्मी नारायण प्रतिमा में वह विष्णु के साथ बगल में खड़ी दिखाई गयी है।[6] यदि हम लक्ष्मी के विविध प्रतिमालक्षण स्वरूपों पर विचार करें तो ऐसा प्रतीत होता है कि इनके उत्तर एवं दक्षिण भारतीय स्वरूप में कोई व्यवहारिक अन्तर नहीं है। यद्यपि तकनीक सम्बन्धी अन्तर है। दक्षिण भारत में देवी के विभिन्न प्रकार नहीं मिलते जैसा कि हमें गुप्तकालीन सिक्कों एवं मुहरों पर मिलते हैं।

---

1 राव, एलिमेन्टस ऑफ हिन्दू आइकोनोग्रैफी, I,ii, आकृति CIX

2 तत्रैव, आकृति-सी X

3 ए०एल०, सं०-15,1959, पृष्ठ-80, आकृति, एल०वी०ए०

4 कुमारस्वामी, ए०के०, कैटलाग ऑफ दि म्यूजियम ऑफ फाइन आर्ट्स, बोस्टन, पृष्ठ 111, सं०- 15,83.113, 21.1299

5 ए०एस०आई०ए०आर०, 1935-36, पृष्ठ-70, आकृति-XXX,

6 हेलबिड से:----------- सा
मुन्शी, के०एम०, सागा ऑफ इण्डियन स्कल्पचर, आकृति-29, पृष्ठ-121

(ii) हारीति

हारीति कुबेर परिवार की कल्पना में पत्नी के रूप में चित्रित की गई है जिसका अनेकशः अङ्कन कला में प्राप्त होता है। बौद्ध ग्रन्थों में हारीति के सन्दर्भ में अनेक कथानक प्राप्त होते हैं। सर्वास्तिवाद शाखा के विनयपिटक में यह कथानक प्राप्त होता है कि हारीति राजगृह में निवास करने वाली एक यक्षी थी जिसके पाँच सौ पुत्र थे। [1] इसे मगध की संरक्षिका देवी के रूप में भी वर्णित किया गया है। लेकिन अपने पूर्व जन्म के संस्कारों के परिणाम स्वरूप उसने राजगृह के बच्चों को चुराकर खाना प्रारम्भ कर दिया। [2] बच्चों के हरण करने के कारण ही उसे हारीति की संज्ञा से चिह्नित किया गया है। प्रारम्भ में इसका नाम हांसी था। परेशान होकर राजगृह के निवासियों ने गौतमबुद्ध की शरण ली तथा बुद्ध ने हारीति के सबसे छोटे एवं प्रिय बच्चे को अपने भिक्षा-पात्र में छिपा लिया। हारीति इधर-उधर भटकने तथा बच्चे को खोजने में असमर्थ होने के कारण गौतमबुद्ध के पास गई। गौतमबुद्ध ने उसे धिक्कारते हुए उस माता-पिता की मनोदशा को समझने के लिए उत्प्रेरित किया जिनके बच्चों को वह खा जाती थी। इससे प्रभावित होकर उसने अपने ऐसे बुरे कर्मों को छोड़ दिया तथा बौद्ध धर्म की उपासिका बन गयी। कुमारस्वामी [3] ने इस कथानक में यक्षी के मनोविज्ञान परिवर्तन का संकेत स्वीकार किया है। गौतमबुद्ध ने उसके बच्चों तथा स्वयं हारीति के निर्वाह हेतु सभी बौद्ध विहारों में भिक्षु के द्वारा भोजन प्रदान करने का निर्देश भी दिया था। इसके प्रत्युत्तर में हारीति और उसके बच्चे बौद्ध चतुःस्थानों के संरक्षक के रूप में निवास करने लगे। [4] चीनी यात्री युवान च्वांग ने यह

---

1 कथानक के कतिपय संस्करण, 10,000, जापानी संस्करण 1000; ललित विस्तर- पृष्ठ 177, यक्षो का अधिपति हारीति का पति 'पञ्चिक' था।

2 कुमारस्वामी, ए०के०, दि यक्षाज, ii, पृष्ठ-5

3 तत्रैव, पृष्ठ-5

4 वाटर्स, ऑन युवान् च्वांग, I, पृष्ठ-216

अनुमान व्यक्त किया है[1] कि बौद्धों के पवित्र स्थानों की संरक्षिका के रूप में होने के कारण हारीति की प्रतिमाएँ या तो बरामदे में या पाकशाला के एक कोने में रखी जाती थीं। यही कथानक किञ्चित विस्तृत रूप में संयुक्तरत्न सूत्र में भी प्राप्त होता है। जिसमे उसके सबसे छोटे पुत्र को पिङ्गल अथवा पिलिङ्गक कहा गया है। इत्सिंग ने हारीति को न केवल पुत्र प्रदान करने वाली बल्कि लक्ष्मी प्रदान करने वाली भी कहा है।[2] इत्सिंग[3] के इस कथन से स्पष्ट है कि हारीति के व्यक्तित्व का आयाम उसके समय तक अत्यधिक विस्तृत हो चुका था। क्षेमेन्द्र के बोधिसत्वावदान-कल्पलता [4] में उसके छोटे बच्चे का नाम 'प्रियङ्कर' उल्लिखित किया गया है।

इस प्रकार हारीति से सम्बन्धित इन कथानकों का प्रभाव कला पर भी पड़ा। गेटी [5] के अनुसार हारीति की कतिपय प्रतिमाओं में उसे हाथ में अनार फल लिये हुए प्रदर्शित किया गया है। अनार का वह अंश मानव मांस का तथा उसके बीज अस्थि के प्रतीक हैं। यद्यपि उनका यह अनुमान उचित प्रतीत नहीं होता। कला में हारीति को कई रूपों में चित्रित किया गया है। इसका प्रारम्भिक अंङ्कन गान्धार-कला में प्राप्त होता है। तख्त-ए-वाही से प्राप्त एक प्रतिमा में हारीति को घड़े पर वृक्ष की शाखाओं के नीचे प्रदर्शित किया गया है। वह अनेक बच्चों में से छोटे बच्चे को गोद में लिए है। यह प्रतिमा इस समय पेशावर संग्रहालय [6] में संरक्षित है। इसी प्रकार सीकरी से प्राप्त तथा लाहौर संग्रहालय [7] में सुरक्षित एक प्रतिमा में बच्चे को उसके स्तन का पान करते हुए प्रदर्शित

---

1 तक्ककुसु, ए रेकार्ड आफ दि बुद्धिस्ट रेलिजन, द्वारा-इत्सिंग, पृष्ठ-37

2 वाटर्स, वही, पृष्ठ-216, फुट नोट -3

3 तक्ककुसु, वही पृष्ठ-37

4 जे०बी०टी०एस०, पी०टी०आई०, 1897, पृष्ठ- 26-29

5 गेटी, दि गाड्स ऑफ नार्दर्न बुद्धिज्म आर्ट आफ गान्धार, पृष्ठ-86

6 मार्शल, जे०, दि बुद्धिस्ट आर्ट आफ गान्धार, पृष्ठ-84, आकृति-112

7 फूशे, ए०, दि बिग्निंग ऑफ बुद्धिस्ट आर्ट, पृष्ठ-283, आकृति-XLVII.2

किया गया है। गान्धार कला शैली में निर्मित अनेक प्रतिमाएँ इण्डियन म्यूजियम कलकत्ता में संग्रहीत है। इसमें से कुछ प्रतिमाओं में हारीति अपने पति पञ्चिक के साथ चित्रित की गई है। जमालगढ़[1] से प्राप्त एक प्रतिमा इस दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है। इसमें पाञ्चिक को हारीति के दाहिने भाग में उत्कीर्ण किया गया है। हारीति का दाहिना हाथ उसके पति की ओर उठा हुआ है तथा नकुलक जैसी कोई वस्तु उसके हाथ में प्रदर्शित की गई है। दोनों के मध्य भाग में एक छोटा शिशु नग्नावस्था में चित्रित है। इसी प्रकार एक दूसरी प्रतिमा में पञ्चिक को हारीति के बायें भाग में प्रदर्शित किया गया है।[2] कतिपय प्रतिमाओं में उसके हाथ में चौड़े मुँह का पात्र प्रदर्शित किया गया है जो खाद्य पदार्थ का वाहक हो सकता है।[3] हारीति की इन स्थानक प्रतिमाओं के अतिरिक्त गान्धार-कला में उसकी आसीन मुद्रा में भी प्रतिमाएँ निर्मित की गई हैं। ब्रिटिश संग्रहालय[4] में रखी प्रतिमा में हारीति को चौकी पर बैठे हुए चित्रित किया गया है तथा उसके अङ्क में एक शिशु अंकित है। पाँच अन्य शिशु विभिन्न अवस्थाओं में प्रदर्शित किये गये हैं। सहर-ए-बहलोल[5] से हारीति एवं पञ्चिक का अत्यन्त कलात्मक प्रस्तर-फलक प्राप्त होता है। पाञ्चिक के दाहिने हाथ में भाला तथा बायें हाथ में धन की थैली प्रदर्शित है तथा हारीति प्रजनन का प्रतीक पुष्प-गुच्छ या कार्नुकोपिया धारण किये हुए है। इसी तरह तख्त-ए-वाही[6] से भी हारीति की इसी परम्परा में निर्मित प्रतिमा प्राप्त हुई है। मार्शल ने यह अनुमान व्यक्त किया है कि हारीति के साथ पञ्चिक की जो प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं उनसे स्पष्ट है कि

---

1 मजूमदार, एन०जी०, अ गाइड टू दि स्कल्पचर्स इन दि इण्डियन म्यूजियम, भाग 7, II. पृष्ठ-110, नं०-100, आकृति XII,बी०

2 तत्रैव, पृष्ठ-100, सं०-111

3 तत्रैव, पृष्ठ-100, सं०-113

4 जर्नल आफ इण्डियन आर्ट एण्ड हिस्ट्री , 1898, आकृति-4.2

5 गेटी, ए०, दि गाड्स ऑफ नार्दर्न बुद्धिज्म, पृष्ठ-87

6 ए०एस०आई०ए०आर०, 1911-12 , पृष्ठ-8; गेटी, वही पृष्ठ-87

पञ्चिक प्रारम्भ में उग्र व्यक्तित्व वाला तथा धन का स्वामी था। धीरे-धीरे उसके हाथ से भाले का प्रदर्शन समाप्त हो गया और वह सौम्य स्वभाव वाला हो गया। अफगानिस्तान के पइतवा [1] नामक स्थान से प्राप्त एक फलक में हारीति के बगल में पञ्चिक के स्थान पर 'वज्रपाणि' का अङ्कन किया गया है। गान्धार कला में निर्मित उपरोक्त प्रतिमाओं के विवेचन से यह स्पष्ट है कि गौतमबुद्ध के द्वारा हारीति के हृदय परिवर्तन का कथानक जनमानस में अत्यधिक लोकप्रिय था तथा गान्धार के कलाकारों ने हारीति के अंकन में जहाँ एक ओर उसके सन्तानवती रूप को चित्रित किया है वहीं दूसरी ओर इसे उर्वरता से सम्बन्धित किया है। पञ्चिक का अंकन उसके रक्षक तथा धनद दोनों रूपों को अभिव्यञ्जित करता है। यह उल्लेखनीय है कि पञ्चिक के यही दोनों रूप कुबेर के भी व्यक्तित्व के आधार थे। इसके हाथ में धन की थैली तथा नकुलक दोनों ही कुबेर की प्रतिमा के विशिष्ट लक्षण थे।

मथुरा के कलाकारों ने भी हारीति का अनेकशः अङ्कन किया है। मथुरा कला की ये प्रतिमाएँ कुषाण काल में निर्मित की गईं। इनमें भी हारीति के उत्पादकता तथा सन्तानवती पक्ष को प्राथमिकता प्रदान की गई। मथुरा संग्रहालय [2] में इस तरह की अनेक प्रतिमाएँ संग्रहीत हैं। एक प्रतिमा में जम्भल और हारीति को साथ-साथ अंकित किया गया है। जम्भल दाहिनी ओर चित्रित है तथा दाहिने हाथ में भाला तथा बायें हाथ में मद्य चषक प्रदर्शित है। हारीति के हाथ में छोटा शिशु प्रदर्शित है। यह उल्लेखनीय है कि गान्धार कला में हारीति के साथ पञ्चिक की जो प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं इनमें मद्य-चषक का अंकन नहीं किया गया है। यद्यपि कुबेर का आसवपायी रूप ज्ञात था। हारीति की प्रतिमाओं का अंङ्कन केवल गान्धार एवं मथुरा तक ही सीमित नहीं था बल्कि अन्य कला केन्द्रों पर भी इनका निर्माण किया गया। कौशाम्बी से अत्यन्त महत्वपूर्ण तथा

---

1 स्कल्पचर्स ग्रीको-बौद्धिक दे हाकिन, आकृति- IV; गेटी, वही, पृष्ठ-87, फुट नोट 3

2 सं०- एफ० 8 तथा 144; अग्रवाल, वी० एस०, ए हैण्ड बुक आफ दि स्कल्पचर्स इन दि कर्जन म्युजियम ऑफ आर्कियोलाजी, मत्रा, प ष्ठ-25

प्रभावोत्पादक मृण्मूर्ति हारीति की प्राप्त हुई है तथा साथ ही कुबेर का भी मृण्फलक प्राप्त हुआ है। दोनों का एक ही उत्खात से प्राप्त होन पर यह सम्भावना व्यक्त की गई कि सम्भवत: इस समय तक दोनों पति-पत्नी के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके थे।

हारीति की द्विभुजी प्रतिमाएँ नालन्दा संग्रहालय [1] में भी रखी हुई हैं जो पाल राजवंश के समय में निर्मित की गई थीं। इनमें से एक प्रतिमा में हारीति को ललितासन-मुद्रा में प्रदर्शित किया गया है तथा जिसके बायें घुटने पर छोटा शिशु प्रदर्शित है और दाहिने हाथ में फल दिखाया गया है। प्रतिमा पर उल्लिखित अभिलेख से ज्ञात होता है कि इसका निर्माण देवपाल के समय में किया गया था। नालन्दा संग्रहालय की एक अन्य प्रतिमा[2] में उसके दाहिने हाथ को वरद मुद्रा में तथा बायें हाथ में घट पाँच वल्लरी तथा अधोमुख घटों का अंकन उनके पैरों के पास किया गया है।

द्विभुजी प्रतिमाओं के अतिरिक्त हारीति की चतुर्भुजी प्रतिमाएँ भी निर्मित की गई थी। यद्यपि उनकी संख्या अपेक्षाकृत कम है। पैकपारा से एक हारीति की महत्वपूर्ण ऐसी ही प्रतिमा प्राप्त हुई है जो ढाका संग्रहालय [3] में संरक्षित है। इसके एक हाथ में खप्पर तथा दूसरे हाथ में मत्स्य तथा दाहिनी ओर एक हाथ में मद्य चषक और दूसरे हाथ में शिशु प्रदर्शित किया गया है। वासुदेव शरण अग्रवाल ने ऐसी प्रतिमाओं के निर्माण में दुर्गा एवं हारीति के परस्पर समन्वय की पृष्ठभूमि को स्वीकार किया है। इस प्रकार हारीति की मान्यता भारतवर्ष तथा उसके समीपवर्ती देशों तक ही सीमित नहीं रही बल्कि सुदूर मध्य एशिया में भी हारीति का अंकन प्राप्त होता है। [4]

---

1 घोष, ए०, ए गाइड टु नालन्दा, पृष्ठ-30-31, सं०-1-372

2 तत्रैव, पृष्ठ-31, संख्या-1-459

3 भट्टशाली, वही, पृष्ठ-63 और 67; बनर्जी, ई० आई० एस० एम० एस०, आकृति-LXIII(डी); एच०बी०आर०, I, पृष्ठ-461

4 अग्रवाल, वी०एस०, वही, पृष्ठ-289

हारीति के इन प्रतिमाओं के विश्लेषण से स्पष्ट है कि प्रारम्भ में इसकी मूर्तियाँ द्विभुजी बनती थीं। बौद्ध परम्पराओं के अनुसार यह राजगृह की यक्षी थी तथा कुबेर स्वयं यक्षाधिपति थे अतः दोनों का सम्बन्ध स्वाभाविक था। धीरे-धीरे हारीति को यक्षी से ऊपर उठकर स्वतंत्र देवी के रूप में मान्यता प्राप्त होने लगी। परिणामतः उसके साथ समृद्धि, उत्पादकता इत्यादि की भावना भी सम्बद्ध हो गई। लक्ष्मी भी समृद्धि की देवी मानी जाती है। कुबेर को भी गुह्यनिधियों का स्वामी कहा गया है। अतः हारीति भी लक्ष्मी की भाँति कुबेर की पत्नी के रूप में स्वीकृत कर ली गई। हारीति की प्रतिमाओं के शिल्पाङ्कन में पौराणिक तथा बौद्धों की वज्रयान परम्परा का प्रभाव पड़ा। इसकी प्रतिमाओं में त्रिशूल का अंकन पौराणिक परम्परा का प्रभाव है तो पैरों के नीचे पाँच घटों का अङ्कन तथा हाथ में फल का प्रर्दशन कुबेर के बौद्ध रूप जम्भल का परिणाम है। इसी प्रकार ढाका संग्रहालय की मूर्ति मत्स्य और खप्पर का अङ्कन बौद्धों की वज्रयान परम्परा की देन है।

भारत के बाहर से भी हारीति की प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं। 1900-1901 ई० में पूर्वी तुर्कीस्तान में किये गये पुरातत्वीय उत्खनन में श्री एम०ए०स्टाइन[1] को खोतान के डण्डान-उलीक नामक स्थान से बौद्ध मन्दिर की दीवाल पर एक महत्वपूर्ण भग्न प्रस्तर चित्रफलक प्राप्त हुआ है। इसके अतिरिक्त एफ०ए०एण्ड्रूज तथा आनन्द कुमारस्वामी ने भी अपनी पुस्तकों में इसे उद्धृत किया है। वर्तमान उच्चित्रण कई दृष्टियों से रोचक एवं महत्वपूर्ण है जिसमें एक स्त्री कमल-समूह से परिपूर्ण, जलयुक्त आयताकार तालाब में प्रसन्न चित्त स्थानक-मुद्रा में प्रदर्शित है। यौवन सम्पन्न स्त्री शारीरिक सौन्दर्य का प्रतिमान है। वह क्षीण कटि भाग वाली, भारी नितम्बों से युक्त है तथा उसके स्तन गोलाकार हैं। शिरोभूषण के अतिरिक्त शरीर के ऊपरी भाग पर भुजबन्द, कंगन, हार तथा नितम्बों के चारों ओर लटकती हुई छोटी घन्टियाँ हैं। उसका दाहिना हाथ स्तन के सामने है तथा बायाँ कटिभाग के मध्य में आगे की ओर मुड़ा हुआ है। एक नग्न बालक उसके

---

1 स्टाइन, एम०ए०, ऑन एन्शियेन्ट सेन्ट्रल एशियन ट्रैक्स; एण्ड्रूज की पुस्तक वाल पेन्टिंग फ्राम एन्शियेन्ट श्राइन इन सेण्ट्रल एशिया तथा आनन्द कुमार स्वामी की पुस्तकों ईस्टर्न आर्ट, भाग I तथा हिस्ट्री ऑफ इण्डियन एण्ड इण्डोनेशियन आर्ट में उद्धृत है।

दाहिनी ओर खड़ा है जिसका चेहरा उसके आगे की आगे की ओर मुड़ा है। दृश्याङ्कन से ऐसा प्रतीत होता है कि बालक जल से निकलकर उसके बगल में चढ़ना या लटकना चाहता है। स्टाइन के अनुसार बायीं ओर दूसरी छोटी आकृति का जो कंधा और मस्तक दिखाई दे रहा है वह तैरने की मुद्रा में है। तालाब के किनारे एक छोटा सवार रहित घोड़ा दौड़ने के लिए अपना पैर उठाये हुए है।[1]

इस चित्राङ्कन के सन्दर्भ में विभिन्न विद्वानों ने अपना विचार व्यक्त किया है। स्टाइन ने यह सम्भावना व्यक्त की है कि इसे हम नाग की विधवा नागिन की कथा या मिथक से जोड़ सकते हैं जिसका उल्लेख ह्वेनसांग ने भी किया है। [2] स्टाइन के अनुसार तालाब के मध्य स्थित स्त्री नागिन है तथा उसकी दाहिनी ओर नग्न आकृति कर्मचारी या मन्त्री की है जो जल में विलुप्त हो गया था तथा सवार रहित अश्व मन्त्री का है जो लौटकर नगर में आया था। एण्ड्रूज ने स्वीकार किया है कि यह उच्चित्रण पाश्चात्य विचारधारा से प्रभावित है। यहाँ कमल-झील अथवा जल के तालाब में खड़ी हुई नागिन का चित्रण है जिसका बायाँ घुटना थोड़ा झुका हुआ है तथा युवती के हाथों का कलात्मक प्रदर्शन उसे शीलवती कन्या के रूप में प्रदर्शित करता है।[3] परन्तु इस आकृति में स्थित स्त्री को नागिन मानना समीचीन नहीं प्रतीत होता है क्योंकि इसके हाथ में कोई सर्प का प्रतीक नहीं प्राप्त होता है। कुमारस्वामी ने इसका समीकरण जल की अप्सरा के रूप में किया है जो लक्ष्मी की भारतीय विचारधारा से सम्बद्ध तथा उपयुक्त है।[4]

शिवराम मूर्ति [5] ने उस चित्रांङ्कन में गर्मी के अत्यधिक ताप के प्रभाव को स्वीकार किया है जो तालाब में प्रसन्नता के रूप में प्रदर्शित है। जल स्त्री के कटिभाग तक ही है

---

1 स्टाइन, एम०ए०, एन्शियेन्ट खोतान, भाग I, पृष्ठ-253

2 तत्रैव, भाग I, पृष्ठ-227-28

3 एण्ड्रूज, एफ०एच०, बाल पेन्टिंग्स फाम बुद्धिस्ट श्राइन इन सेन्ट्रल एशिया, पृ ष्ठ 110, आकृति-XXXii

4 कुमारस्वामी, ए०के०, इस्टर्न आर्ट भाग-I, सं०-2, पृष्ठ-181

5 शिवराम मूर्ति, सी०, स्कल्पचर इन्सपायर्ड बाई कालिदास, पृष्ठ-39

तथा लम्बे-लम्बे कमल वृक्ष चारों ओर दिखाई दे रहे हैं। ऐसा उल्लेख कालिदास ने अपने ग्रन्थ रघुवंश [1] में भी किया है। पी० बनर्जी ने इस उच्चित्रण को लक्ष्मी एवं हारीति की विशेषताओं से सम्बद्ध किया है। दोनों की उत्पत्ति अन्य दैवीय स्त्रियों के समान ही है। वह इसे प्रारम्भिक परम्परा की मातृदेवी के रूप में स्वीकार करते हैं जो उर्वरता एवं समृद्धि की देवी के रूप में प्रदर्शित है। भारत में उर्वशी नामक अप्सरा मातृदेवी की प्रारम्भिक अवधारणा से सम्बद्ध थी। महाकाव्य परम्परा की 'लक्ष्मी' तथा ईरानियन पौराणिक आख्यान की 'अनाहिता' के समान अप्सराओं का निवास स्थान जल में था। [2]

पुराणों के अनुसार लक्ष्मी समुद्र मंथन से अन्य वस्तुओ के साथ बाहर आयीं। कालान्तर में उर्वरता एवं समृद्धि की विचारधारा लक्ष्मी के साथ अधिक रूप से सम्बद्ध हुई तथा हिन्दू पौराणिक विचारधारा में सर्पों की देवी मनसा तथा वसुन्धरा के साथ एवं बौद्ध परम्परा में हारीति के साथ भी यह विस्तृत रूप से जुड़ गई। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि हारीति के समान मनसा भी कभी-कभी बच्चे के साथ प्रदर्शित की गई है।[3] पाश्चात्य परम्परा की अनाहिता तथा अफ्रोदित की भाँति श्रीलक्ष्मी का सम्बन्ध जल से ही था। महाकाव्य एवं पौराणिक परम्परा उनकी उत्पत्ति समुद्र मंथन से बताती हैं। विष्णुपुराण [4] भी लक्ष्मी की उत्पत्ति को इस प्रकार उल्लिखित करता है- 'श्री देवी अपनी सुन्दरता

---

1 ''दिने-दिने शैवालवन्त्याधस्त्यत सोपाना पर्वणि विमुञ्चदम्भाह।
उद्दण्डपद्मं गृह-दीर्घिकानां नारी नितम्बाद्वय सम्बभूव।।''
रघुवंश, सर्ग 16 श्लोक 46

2 मैकडानेल, वैदिक माइथालाजी, पृष्ठ-134-35

3 बनर्जी, आर० डी०, ईस्टर्न इण्डियन स्कल्पचर, पृष्ठ-42, आर्कियोलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, आकृति -LXIva

4 ''ततः स्फुरत्कान्तिमती विकसित कमले स्थिता।
श्रीदेवी पयसास्तमदुद्भूता धृता पङ्कजा।।''
विष्णु पुराण, भाग -I, अध्याय-9, श्लोक-100

बिखेरती हुई, पूर्णविकसित कमल के ऊपर खड़ी हो कर तथा अपने हाथों में कमल को धारण किये हुए समुद्र से बाहर आयीं।'

लक्ष्मी का कमल एवं जल के साथ समीकरण भी इनकी उपाधियों में व्यक्त होता है। अमरकोश में इन्हें 'क्षीरब्धि-तनया' एवं 'पद्मालया' के रूप में उल्लिखित किया गया है। कामदेव के साथ उनके सम्बन्ध का उल्लेख महाभारत[1] में है जहाँ वह मकरध्वज की माता के रूप में मकर प्रतीक को अपने हाथ में धारण करती हैं।[2] यहाँ यह उल्लेखनीय है कि हारीति जो लक्ष्मी की कतिपय विशेषताओं से संयुक्त मातृदेवी के रूप में है, कभी-कभी अपने एक हाथ में मछली के साथ प्रदर्शित की जाती है।[3]

हारीति एवं लक्ष्मी दोनों मातृदेवियाँ एक दूसरे के प्रतिमालक्षण को अनेकशः प्रभावित करती हैं। यह उल्लेखनीय तथ्य है कि गान्धार के समय की हारीति के प्रतीक के रूप में जो कार्नुकोपिया है, वह गुप्तकालीन सिक्कों पर लक्ष्मी के हाथों में भी दिखाई देती है।[4]

बौद्ध साहित्य में हारीति के विषय में अनेक कथानक मिलते हैं। इत्सिंग[5] ने उल्लेख किया है कि हारीति की प्रतिमा प्रत्येक भारतीय विहार के छज्जे तथा सभाकक्ष में देखने को मिलती है जहाँ उसका उच्चित्रण बच्चों को निगलने वाली न होकर देने वाली के रूप में है। प्रायः कुबेर अथवा पञ्चिक जो धन का स्वामी है उसके पीछे दिखाया गया

---

1 महाभारत, Xiii, 11.3

2 कुमार स्वामी, ए०के०, ईस्टर्न आर्ट, भाग I, सं०-2, पृष्ठ-175

3 भट्टशाली, एन०के०, आइकोनोग्रैफी ऑफ बुद्धिस्ट एण्ड ब्राह्मनिकल स्कल्पचर इन दि ढाका म्यूजियम, आकृति-XXV

4 अल्टेकर, ए०एस०, दि गुप्ता गोल्ड क्वायन्स इन दि बयाना होर्ड, बाम्बे, 1954, पृष्ठ-6,51,53,54, आकृति-V,7,vi,5, इत्यादि

5 फूशे, ए०, बिग्निंग्स ऑफ बुद्धिस्ट आर्ट, पृष्ठ-280 तथा आगे

है। इत्सिंग के अनुसार हारीति को अपने बाँह में एक बच्चे के साथ एवं उसके घुटने के चारों ओर तीन या चार बच्चों को दिखाया गया है।

प्रतिमालक्षण में हारीति बैठी हुई या कभी स्थानक मुद्रा में प्रदर्शित है। उसका प्रिय पुत्र कभी उसके वक्षस्थल पर तो कभी उसके नितम्ब पर दिखाया गया है। इसके साथ-साथ उसके पति को भी कभी-कभी प्रदर्शित किया जाता है। ह्वेनसांग ने अपने यात्रा-विवरण में उल्लेख किया है कि हारीति की पूजा भारत के उत्तर-पश्चिम भाग में अधिक प्रसिद्ध थी। प्रमाण स्वरूप हारीति की अनेक प्रतिमाएँ गान्धार क्षेत्र से खोजी जा चुकी हैं। कालान्तर में हारीति की उपासना मध्य एशिया, चीन, जापान, इण्डोनेशिया तथा दूसरे स्थानों पर भी फैल गई।

मध्य एशिया में हारीति को प्रदर्शित करने वाले कतिपय महत्वपूर्ण चित्रफलक खोजे जा चुके हैं। इसी प्रकार का एक उच्चित्रण स्टाइन महोदय के द्वारा 'फरहद-बेग येलाकी' के बौद्ध मन्दिर से प्राप्त किया गया है जो अब राष्ट्रीय संग्रहालय नई दिल्ली में है। इस पर पर्सियन प्रभाव अलङ्करण के रूप में स्पष्ट दिखाई देता है। इसमें हारीति पैरों को एक दूसरे से काटते हुए बैठी है। उनका दाहिना हाथ एक बालक को सहारा दिये हुए है जो उसके कमर पर बैठा है तथा पाँच बच्चे उसके पाँच सौ बच्चों को प्रदर्शित करते हैं। इनमें क्रमशः एक उसकी कमर पर, द्वितीय बाँयें स्तन को स्पर्श किये हुए तथा दो उसके दाहिने कन्धे एवं एक बायीं कन्धे की ओर है। इनमें से तीन पूर्णतः नग्नावस्था में हैं। पाँचवी आकृति स्पष्ट नहीं होती। सम्भवतः वह नाचता हुआ प्रतीत होता है।[1] तुरफान से दस किलोमीटर पश्चिम यारखोतो से जर्मन पुरातत्वीय मिशन द्वारा हारीति का एक महत्वपूर्ण दृश्यांकन खोजा गया है। इस चित्रण के साथ अधिक संख्या में लिपियाँ सोग्डियन, तुर्की, चीनी तथा अन्य भाषाओं में मिली हैं जो बौद्ध धर्म के महत्व को अभिव्यक्त करती हैं। हारीति की इस प्रतिमा का उल्लेख फूशे ने किया है।[2] इसमें हारीति

---

1 ऐन्ड्रूज, एफ० ए०, वाल पेण्टिंग्स फ्राम एन्शियेन्ट श्राइन इन सेन्ट्रल एशिया, पृष्ठ-17, आकृति-iv

2 फूशे, ए०, बिग्निंग्स आफ बुद्धिस्ट आर्ट, पृष्ठ-272 तथा आगे

भुजाओं से रहित एक लम्बा रोम देश की पोशाक को धारण किये हुए है जो उसके स्तनों पर खुला हुआ है। वह चतुर्दिक प्रभामण्डल से मुक्त एक विभूषित सिंहासन पर आसीन है तथा अपने दाहिने हाथ में कपड़े में कसकर लपेटे हुए एक बच्चे को लिए हुए है। इस प्रकार हारीति की प्रतिमा दक्कन संग्रहालय में संरक्षित है। यहाँ वह आठ छोटे बच्चों से घिरी हुई प्रदर्शित है। इनमें चार हाकी के प्रकार का कोई खेल खेलते हुए दिखाये गये हैं तथा पाँचवा जमीन पर बैठा गिटार बजा रहा है। छठाँ एक टोकरी में कुछ तरबूजों के टुकड़ों को लिए हुए है तथा कोने की आठवीं मूर्ति भग्नावस्था में है।

इस प्रकार 'डण्डान-उलीक' की स्त्री प्रतिमा तथा उसके दाहिने नग्न बालक हारीति के बच्चों से सम्बन्धित हैं जिसका उल्लेख तुरफान एवं फरहद-बेग येलाकी से प्राप्त हारीति-प्रतिमा से हो जाता है।

(iii) मणिभद्र

मणिभद्र नामक यक्ष कुबेर के साथ घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध था। इसे कुबेर के कोष में रखी हुई भद्रमणि अथवा मांगलिक मणि के रक्षक के रूप में स्वीकार किया गया है। यह सार्थवाहों का भी अधिष्ठातृ देवता माना जाता था। ऐसी मान्यता थी कि इसकी उपासना करने से सार्थवाह निर्विघ्न रूप से व्यापारिक मार्गों से गुजरते हुए सकुशल ऐश्वर्य की प्राप्ति कर सकते थे। मणिभद्र की उपासना से सम्बन्धित अनेकशः उल्लेख साहित्य में भी प्राप्त होते हैं। भगवती सूत्र में विशला (उज्जैन या वैशाली) [1] के समीप स्थित बहुपुत्रिका के मन्दिर का उल्लेख है। साहित्यिक ग्रन्थों में बहुपुत्रिका को मणिभद्र तथा पूर्णभद्र दोनों यक्षेन्द्रों की चार प्रमुख रानियों में से एक बताया गया है। [2] यू०पी० शाह ने यह अनुमान प्रस्तुत किया है कि जैन देवकुल के प्राचीनतम यक्ष-यक्षी, सर्वानुभूति (या मातंग या गोमेध)[3] तथा अम्बिका की कल्पना निश्चित रूप से मणिभद्र-पूर्णभद्र यक्ष तथा बहुपुत्रिका यक्षी के पूजन की प्राचीन परम्परा पर आधारित है।[4]

पद्मावती अर्थात् वर्तमान पद्मपवैया से प्राप्त एक अभिलेख से ज्ञात होता है कि मणिभद्र की उपासना करने वालों की एक गोष्ठी वहाँ पर विद्यमान थी। ग्वालियर के पास स्थित पद्मावती मणिभद्र की पूजा का प्रधान केन्द्र था। कौशाम्बी [5] से प्राप्त एक प्रस्तर अभिलेख में भी सार्थवाहों के द्वारा मणिभद्र की उपासना करने का उल्लेख किया गया है जिसका विस्तृत विवरण दयाराम साहनी ने प्रस्तुत किया है। प्रस्तर-पट्टिका की माप साहनी के अनुसार (2फीट 10इंच x 1फीट x 2 इंच) है। यह कोसम के प्रस्तर स्तम्भ के

---

1 शाह, यू०पी०, पूर्व निर्दिष्ट, पृष्ठ-61, पाद टिप्पणी-43

2 भगवती सूत्र, 18.2,10.5

3 प्रारम्भ से ही यक्ष का कोई एक नाम स्थिर नहीं हो सका था।

4 शाह, यू०पी०,पूर्व निर्दिष्ट, पृष्ठ-61-62

5 इपीग्राफिका इण्डिका, वाल्यूम XVIII, पृष्ठ-158-59

उत्तर पश्चिम में डेढ़ मील की दूरी पर मशार्फा गाँव के कुएँ पर स्थित था। इस लेख में कुल चौदह पंक्तियाँ हैं तथा प्रत्येक पंक्ति में पाँच से सात अक्षर है, सबसे अन्तिम पंक्ति में केवल तीन अक्षर ही है। इस अभिलेख की भाषा सोडास के समय की मथुरा लेख के समान है।[1] अतः इसकी तिथि प्रथम शताब्दी ई०पू० रखी जा सकती है। लेख की भाषा प्राकृत है जिस पर संस्कृत का भी प्रभाव कुछ दृष्टिगोचर होता है। लेख 'भगवत' (जिसका नाम उसमें उपलब्ध नहीं है) की प्रार्थना के साथ प्रारम्भ होता है तथा वह प्रसन्न हों, इस आशय के साथ समाप्त होता है। यह उल्लेखनीय है कि यहाँ या तो उसके नाम को नहीं दिया गया हो या फिर अन्तिम पंक्ति के नाम नष्ट हो गये हों। डी०सी०सरकार की धारणा है कि यह यक्ष मणिभद्र से ही सम्बन्धित है।[2] प्रथम तीन पंक्तियाँ लेख की इस प्रकार हैं- 'नमो भगवतो सातवाहस मणिभदस ', इसमें कारवाँ के स्वामी मणिभद्र की भक्ति का उल्लेख है। प्रस्तुत लेख की समाप्ति भगवत प्रसन्न हों के साथ होती है। यहाँ पर मणिभद्र का उल्लेख नहीं है क्योंकि इसका नाम प्रारम्भ में ही आ चुका था। ऐसा प्रतीत होता है कि साहनी महोदय ने प्रथम पंक्ति में 'भगवतो' के बाद पूर्ण विराम की कल्पना करके, उसे उन्होनें भगवते पढ़ा था। इन्होंने मणिभद्द को मणिभद्र का भक्त स्वीकार किया है, जबकि इसे यक्ष मणिभद्र मानना ही उचित है। पद्मावती से प्राप्त मणिभद्र के अभिलेख में इनका यही नाम प्राप्त होता है।[3] मोनियर विलियम की संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी में भी यही नाम वर्णित है।

यक्ष मणिभद्र के उपासकों की एक सत्ता थी जिसका उल्लेख महानिद्देश में मणिभद्द-वतिक तथा मिलिन्दपह्नों में मणिभद्द के रूप में मिलता है।[4] अतः अभिलेख

---

1 तत्रैव, पृष्ठ-118

2 सरकार, डी०सी०, स्टडीज इन दि रेलिजस लाइफ ऑव ऐन्शियेन्ट एण्ड मेडिवल इण्डिया, पृष्ठ 144

3 ए० एस० आर०, ए० आर०-1915-16, भाग-2, पृष्ठ-106

4 मललसेकर, डिक्शनरी ऑव पाली प्रापर नेम्स, भाग-2, पृष्ठ-426

के 'मणिभदस' को मणिभद्र ही मानना उचित होगा। मणिभद्र की प्रतिमाएँ मौर्य काल में ही निर्मित होने लगी थीं। मथुरा के समीप परखम से प्राप्त मणिभद्र यक्ष की प्रतिमा न केवल प्राचीनत है, अपितु अत्यन्त प्रभावोत्पादक भी है। मथुरा के परखम गाँव से प्राप्त यक्ष-मूर्ति सबसे प्रसिद्ध एवं टकसाली है। ऊँचाई में (8फीट 8इंच) काय-परिमाण से भी विशाल यह मूर्ति देखने में बड़ी कद्दावर तथा डीलदार है। इसके कटाव में सादगी है तथा अलंकरण कम से कम हैं। यद्यपि इसे चारों ओर से कोर कर गढ़ा गया है, फिर भी सामने की ओर से ही इसका दर्शन विशेषतः इष्ट था। लेख के अनुसार यह यक्ष मणिभद्र की प्रतिमा थी। दुर्भाग्य से इसकी दोनों भुजाएँ कन्धों के नीचे से खण्डित हैं। कानों में भारी कुण्डल, गले में चपटा कण्ठा या ग्रवेयक, छाती पर तिकोना हार, ऊपर छाती पर सामने की ओर बंधा हुआ उत्तरीय तथा नीचे पटवीदार धोती पहने हुए यह सीधी खड़ी मुद्रा में है। इस प्राचीन शैली में धार्मिक भावना की अपेक्षा ठेठ मानवीय तक्षण की ही प्रधानता है।[1]

सार्थवाहों के अधिष्ठाता देवता यक्ष-मणिभद्र थे। इनकी उपासना सार्थवाहों के रक्षक-देवता के रूप में प्रचलित थी।[2] इनके सम्पूर्ण उत्तर भारत में पूजा के लिए मन्दिर निर्मित किये गये थे। मथुरा के परखम स्थान से प्राप्त महाकाय यक्ष-मूर्ति मणिभद्र की है। उत्तर भारत में दक्षिण दिशा की ओर जाने वाले सार्थ मणिभद्र की उपासना में विश्वास करते थे। यात्रियों और सार्थवाहों के द्वारा यक्ष-मणिभद्र की उपासना का उल्लेख महाभारत में भी प्राप्त होता है [3] जहाँ व्यापारियों के एक कारवाँ पर जंगली हाथियों द्वारा आक्रमण का वर्णन किया गया है जिसका कारण मणिभद्र की उपासना की उपेक्षा थी। अतः इस तथ्य से स्पष्ट है कि मणिभद्र कारवाँ का रक्षक माना जाता था। उसकी तुलना

---

1 अग्रवाल, वासुदेवशरण, भारतीय कला, फलक 72, चित्र 183

2 "गणस्थ्य मणिभद्रभक्त गर्भसुखितः भगवतो
मणिभद्रस्य प्रतिमा प्रतिस्थापयन्ति।"
बनर्जी, जे०एन०, 'डेवलपमेन्ट' ऑव हिन्दू आइकोनोग्राफी, पृष्ठ-97

3 महाभारत, 3,65,22

दक्षिण भारतीय देवता वलिटुनायी नयनार (मार्गसहायेश्वर) से की जा सकती है जो कि व्यापारियों द्वारा पूज्य था। वन-पर्व के नलोपाख्यान में यह उल्लेख प्राप्त होता है कि एक बहुत बड़ा सार्थ लाभ कमाने के उद्देश्य से चेदि जनपद को जाता हुआ वेत्रवती नदी पार करता है तथा दमयन्ती उसी का साथ पकड़कर चेदि पहुँच जाती है, उस सार्थ का नेता घने जंगल में पहुँच कर यक्षराट् मणिभद्र का उल्लेख करता है। [1]

महाभारत के वन पर्व में महासार्थ का बहुत ही अच्छा वर्णन उपलब्ध होता है। [2] उस महासार्थ में हाथी घोड़े तथा रथों की भीड़-भाड़ थी(हस्त्यश्वरथसंकुलम्) उसमें बैल, गधे, ऊँट तथा पैदलों की इतनी अधिक संख्या थी [3] कि चलता हुआ महासार्थ 'मनुष्यों का समुद्र' [4] सा प्रतीत होता था। इनका सम्बन्ध मणिभद्र यक्ष से था।[5]

इस प्रकार आज जब मणिभद्र की पूजा-विषयक हमारा ज्ञान अत्यन्त अल्प है तो ऐसी स्थिति में इस लेख का महत्व और भी बढ़ जाता है। यक्ष-मणिभद्र की तुलना मणिनाग से भी की जा सकती है जिसके राजगृह में तीर्थ का उल्लेख महाभारत में उपलब्ध होता है।[6] तथा उड़ीसा में स्थित जिसके दो मठों का उल्लेख मिलता है। [7] प्रस्तुत अभिलेख में गोति-पुत्र (गौप्ति-पुत्र) के द्वारा मणिभद्र के सम्मान में वेदिका निर्माण की बात कही गयी है तथा इसकी निर्माण स्थली को 'असिक' कहा गया है।

---

1 'पश्याम्यस्मिन्वने कष्टे अमनुष्य निषेविते। तथा नो यक्षराड् मणिभद्रः प्रसीदतु।'
तत्रैव, वनपर्व, 61,123

2 तत्रैव, वनपर्व, 61-62

3 'गोखरोष्ट्राश्वबहुल पदातिजन संकुलम्।'
तत्रैव, अध्याय-62, श्लोक 9

4 तत्रैव, अध्याय-62, श्लोक 12 'जनार्णव'

5 मोतीचन्द्र , सार्थवाह, पृष्ठ- 4, भूमिका भाग

6 महाभारत, 111,84,106

7 इपीग्राफिका इण्डिका, वाल्यूम XXVIII, पृष्ठ-328

तृतीय अध्याय

बौद्ध एवं जैन वाङ्मय में कुबेर

बौद्ध एवं जैन वाङ्मय में कुबेर

यक्षों के अधिपति कुबेर की पूजा भारत की प्राचीन परम्परा रही है। बौद्ध-धर्म में भी इस सर्वव्यापी परम्परा को स्वीकृति मिली हुयी थी। यक्षाधिपति कुबेर की जम्भल तथा अन्य रूपों में बौद्ध परम्परा में उपासना प्रचलित थी। जैन ग्रन्थों की देव-सूची में कुबेर का उल्लेख वैश्रवण के रूप में हुआ है। बौद्ध एवं जैन साहित्य में दिक्पाल-सूची के साथ भी इनका उल्लेख प्राप्त होता है तथा इनसे सम्बन्धित अनेक कथानक भी उपलब्ध हैं।[1]

बृद्ध-काल के पूर्व ही यक्षोपासना का लोक-मानस में व्यापक प्रचार-प्रसार था। आटानाटीय सुत्त में यक्षों के विषय में पर्याप्त वर्णन प्राप्त होता है। [2] इसके अनुसार वैस्सवण (कुबेर) स्वयं बुद्ध से कहते हैं कि उनके उपदेश लोगों को विभिन्न पापों से बचने का आग्रह करते हैं, इसीलिए यक्षों को वह प्रिय नहीं हैं। कतिपय यक्ष बुद्ध के अनुयायियों को कष्ट पहुचाते हैं तथा उन दुष्टात्मा यक्षों पर 'महायक्ख' अंकुश रखते हैं। वैश्रवण ने बुरे यक्षों के प्रभाव से बचने के लिए एक मंत्र का भी संकेत किया है।

यक्षों का बुद्ध के जीवन से भी घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। कुमारस्वामी के अनुसार गौतम बुद्ध के महाभिनिष्क्रमण के समय यक्ष उनके रथ के अश्व के साथ थे। [3] चार महाराजों की पूजा (बड़े यक्षों)का उल्लेख प्रायः बौद्ध साहित्य में मिलता है। इन चार देवाताओं अर्थात् चतुर्महाराजिक देवों का सम्बन्ध दिशाओं के स्वामित्व से था, जिसमें उत्तर-दिशा की सत्ता वैश्रवण को प्राप्त थी। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि कुबेर का ही नाम वैश्रवण, पञ्चिक तथा जम्भल था। कैलास-पर्वत के समीप स्थित अलकापुरी उनकी राजधानी थी। वी०एस० अग्रवाल ने कुबेर के अनुयायियों को 'वैश्रवण-कायिक' देव की संज्ञा प्रदान की है। कुबेर को धन का देवता माना जाता है

---

1 अजन्ता म्यूरल्स, प्रकाशन-आर्क्योलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, देल ही, पृष्ठ-26

2 अग्रवाल, वी०एस०, प्राचीन भारतीय लोकधर्म, पृष्ठ 127

3 ए डिक्सनरी ऑफ कम्परेटिव रिलीजन, एस०जी०एफ० ब्रैन्डन(सं०)

तथा इसकी पूजा की लोकप्रियता में समान्यतः यही रहस्य छिपा हुआ है। कुबेर का एक प्रमुख अभिधान पञ्चिक था। महायान बौद्ध-धर्म में इसका व्यापक प्रचार था। पञ्चिक तथा उसकी पत्नी हारीति की मान्यता गान्धार से मध्य एशिया के क्षेत्र तक फैली हुयी थी। सम्भवतः हारीति पाँच सौ बच्चों की माता थी।[1] इसी भावना से प्रेरित होकर यक्ष को गर्भस्थ शिशु का रक्षक भी कहा गया है।[2]

जैन ग्रन्थ धर्मधातुवागीश्वरमण्डल में यक्षों के आठ अधिपतियों का उल्लेख किया गया है।[3] इस सूची का वर्णन अन्यत्र दुलर्भ है। यक्षों को अर्द्ध देवता की भी संज्ञा प्रदान की जाती है। ये धन के देवता कहे गये हैं जो उपासना द्वारा संतुष्ट होने पर भक्तों को प्रदान करते हैं। यक्षों में कुबेर को यक्षाधिपति के रूप में सर्वप्रथम स्थान प्राप्त है जो अपने यक्ष गणों के साथ उत्तर दिशा में निवास करते हैं। अलकापुरी उसकी राजधानी कैलास पर्वत के समीप ही विद्यमान है। इस वर्णन के अनुसार जिन आठ अधिपतियों के नाम मिलते हैं, उनमें धनद तथा वैश्रवण का भी उल्लेख है। यह सूची इस प्रकार है-

1- पूर्णभद्र 2- मणिभद्र 3-धनद 4- वैश्रवण
5- शिविकुण्डलि 6-केलिमलि 7-सुखेन्द्र 8- शैलेन्द्र

इनके दाहिने हाथ में बीजपूरक तथा बायें में नेवला प्रदर्शित है। उनका रंग भी एक दूसरे से भिन्न है। पूर्णभद्र-नीला, मणिभद्र-पीला, धनद-लाल, वैश्रवण-पीला, शिविकुण्डलि-लाल, केलिमलि-हरा तथा सुखेन्द्र एवं शैलेन्द्र का रंग पीला वर्णित है। उल्लेखनीय है कि यही प्रमुख लक्षण एवं अभिधान हमें कुबेर की प्रतिमा में आगे चलकर देखने को मिलते हैं। बौद्ध परम्परा में जम्भल के प्रमुख आयुध के रूप में

---

1 ''पण्डको नाम यक्खो तु सिद्धिं हारितयक्खिया।
पञ्चसतेहि पुत्तेहि फलं पापुणि आदिकम्।।''
महावंश, 12,21

2 तत्रैव, 9.22.

3 भट्टाचार्य, बी०, दि इण्डियन बुद्धिस्ट आइकोनोग्राफी, पृष्ठ 379

बीजपूरक तथा नेवला को ही स्वीकार किया गया है। सुत्तनिपात [1] में जिज्ञासु यक्ष के वर्णन के साथ-साथ अलकापुरी के निवासी कुबेर को यक्षों का राजा (अधिपति) तथा रावण को लंका का राजा बताया गया है। महानिद्देश [2] में कुबेर तथा मणिभद्र के लिए 'भगवान्' शब्द का प्रयोग किया गया है। यह सम्भवतः बौद्ध धर्म में यक्ष-परम्परा के प्रारम्भिक उद्धरणों में से एक है।

कुबेर के अत्यन्त निकट रहने वाला मणिभद्र यक्ष था। जिसकी पूजा भी अत्यन्त लोकप्रिय थी। पवाया मूर्ति पर अंकित लेख [3] इस कथन की पुष्टि करता है। भगवान् मणिभद्र की प्रतिमा की स्थापना मणिभद्र के उपासकों की श्रेणी के द्वारा किया गया था। उपर्युक्त लेख में मणिभद्र के लिए 'भगवतो ' शब्द आया है जो इस तथ्य को प्रमाणित करता है कि मणिभद्र स्तुत्य था तथा इसकी उपासना होती थी। भण्डारकर महोदय ने भी मणिभद्र एवं पूर्णभद्र की पूजा का उल्लेख किया है।[4] मणिभद्र की पूजा व्यापारियों के मध्य भी व्यापक रूप से प्रचलित थी। जिसकी पुष्टि मशार्फाग्राम से प्राप्त एक अभिलेखिक स्त्रोत के द्वारा होती है। [5] इसके प्रकाशन का श्रेय भी श्री दयाराम साहनी को है। यह ग्राम कौशाम्बी के पास स्थित है। उल्लेखनीय है कि जनमानस में कुबेर-उपासना का स्वरूप इतना व्यापक था कि उनके साथ उनके अनुचरों की उपासना लोक-प्रचलित मान्यता बन चुकी थी।

ललित विस्तर में चारों महाराजिकों के द्वारा बोधिसत्व के लिए घर बनाने का उल्लेख प्राप्त होता है तथा इन्द्र का यह कथन है कि लोकपालों के विमानहीन होते हैं,

---

1 फॉसवाल, पृष्ठ 29

2 महानिद्देश, पृष्ठ 89

3 "गणस्थ्य मणिभद्र भक्त गर्भसुखितः भगवतो मनिभद्रस्य प्रतिमा प्रतिष्ठापयन्ति।"
बनर्जी, जे०एन, डेवलपमेन्ट ऑफ हिन्दू आइकोनोग्राफी, पृष्ठ 97

4 भण्डारकर, आर०जी०, वैस्नविज्म, सैविज्म एण्ड माइनर रेलियस सिस्टम्स, पृष्ठ 3

5 साहनी, दयाराम, इपीग्राफिका इण्डिका, वाल्यूम XVIII, पृष्ठ 158-59,
द्रष्टब्य- सरकार, डी०सी०, स्टडीज इन दि रिलीजस लाइफ ऑव एन्शियन्ट एण्ड मेडिवल इण्डिया, पृष्ठ 144

अतः मेरे द्वारा बोधिसत्व के लिए 'वैजयन्त प्रासाद' दिया जा रहा है, इस तथ्य को अभिव्यञ्जित करता है कि ललित विस्तर की रचना के समय तक कुबेर तथा अन्य महाराजिक पूर्ण देवता की श्रेणी में मान्य नहीं थे। [1] चातुर्महाराजिकों को मनुष्य के आश्रय अथवा शरीर के भीतर होने वाले दुर्गन्ध से घृणा करने वाला कहा गया है। [2] चारों लोकपालों द्वारा कपिलवस्तु से लुम्बिनी प्रस्थान के समय उस रथ को खिंचने का विवरण प्राप्त होता है जिस पर माया-देवी आरूढ़ थी। [3] बुद्ध के जन्म होने पर इन्द्र इत्यादि देवताओं के साथ-साथ कुबेर के द्वारा भी बोधिसत्व के चरणों में प्रणाम करने का विवरण प्राप्त होता है। [4] ललित विस्तर का यह वर्णन कि जिस समय बोधिसत्व ने देवकुल में प्रवेश कर दाहिने पैर को रखा, उस समय शिव, स्कन्द, नारायण, कुबेर, चन्द्र, सूर्य, वैश्रवण, शक्र, ब्रह्मा तथा अन्य लोकपालों की प्रतिमाएँ अपने-अपने स्थानों से उठकर बोधिसत्व के चरण तलों में गिर पड़ी, अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रतीत होता है। इस वर्णन से स्पष्ट है कि अन्य देवताओं के साथ-साथ कुबेर की भी प्रतिमाएँ मन्दिरों में उपासना हेतु रखी जाती थीं। कुबेर तथा वैश्रवण का अलग-अलग उल्लेख होने के कारण यह अनुमान अस्वाभाविक नहीं प्रतीत होता कि ललितविस्तर के समय तक कुबेर एवं वैश्रवण को अलग-अलग स्वीकार किया जाता था। [5]

गौतमबुद्ध के अभिनिष्क्रमण के समय धृतराष्ट्र, विरूढ़क, विरूपाक्ष, कुबेर तथा अन्य देवों , द्वारा निष्क्रमण के मार्ग में खड़े होने का उल्लेख प्राप्त होता है। इस विवरण में कुबेर को अनेकों लाखों खर्ब-खर्ब कोटि (संख्यक), ज्योतिरस (नामक नाग) मणियों एवं रत्नों को लिए, हाथों में बत्तियाँ उठाये हुए, हाथों में जलती हुयी

---

1 "हीना विमाना पालानां त्रयास्त्रिंशानामुत्तमाः।
वैजयन्त समं वेश्म बोधिसत्त्वस्य दाम्यहम्।।"

ललित विस्तर, गर्भावक्रान्ति परिवर्त, पृष्ठ 146

2 तत्रैव, गर्भावक्रान्तिपरिवर्त, पृष्ठ 147

3 तत्रैव, जन्मपरिवर्त, पृष्ठ 178

4 तत्रैव, देवकुलोपनयन परिवर्त, पृष्ठ 236

5 ललित विस्तर, देवकुलोपनयन परिवर्त, पृष्ठ 227

मशालें लिए हुए, धनुष-तीर, तलवार, बर्छी, भाला, त्रिशूल, चक्र , कनय (कान लगे भाले), भिन्दिपाल (हाथ के बराबर फेंके जाने वाले सींग के बने बर्छे) आदि नानाप्रकार के हथियार लिए हुए, वर्म और कवच कसकर बाँधे हुए, यक्षों के साथ उत्तर-दिशा से आने का संकेत प्राप्त होता है। [1] इस विवरण में कुबेर के धनद एवं योद्धा दोनों स्वरूपों का सम्मिश्रण प्राप्त होता है। कवच तथा वर्म को कसे हुए तथा धनुष-तीर, तलवार, बर्छी, भाला, त्रिशूल, चक्र, कनय तथा भिन्दिपाल नामक आठ आयुधों को धारण किये हुए कुबेर का यह स्वरूप अन्यत्र न तो साहित्य में ही ज्ञात है और न तो प्रतिमाओं में।

बौद्ध तथा जैन साहित्य के अनुशीलन से यह ज्ञात होता है कि यक्ष-पूजा उत्तर भारत में सर्वत्र फैली हुयी थी। कालान्तर में इसका सम्बन्ध तंत्र से भी जाकर जुड़ गया। कुबेर यक्षों का स्वामी था। बौद्ध-ग्रन्थ साधनमाला में यक्षाधिपति कुबेर की विविध रूपों में उपासना-पद्धित प्राप्त होती है। कुबेर को बौद्ध साहित्य में जम्भल देवता के रूप में मान्यता प्राप्त है। यहाँ पर वैश्रवण की भाँति जम्भल का भी सम्बन्ध कोष से बताया गया है। बौद्ध-कला में जम्भल को ललितासन-मुद्रा में प्रदर्शित किया गया है, जहाँ उसका एक पैर सिक्कों के उलटे घट पर दिखाया गया है तथा जिसके समीप में सात-घट और विद्यमान हैं। उल्लेखनीय है कि आठ-घट कुबेर की अष्ट-निधियों के प्रतीक हैं। कुबेर की ही भाँति जम्भल वृकोदर तथा जिसके हाथ में नेवला है, प्रदर्शित किया जाता है। ब्राह्मण ग्रन्थों में जिस तरह कुबेर का सम्बन्ध अष्ट-निधियों की देवी लक्ष्मी से स्वीकार किया जाता है, उसी प्रकार बौद्ध साहित्य जम्भल का सम्बन्ध 'वसुधारा' से बताता है।[2] इसी प्रकार की जम्भल की प्रतिमाएँ पूर्वी तथा उत्तरी भारत के अनेक स्थलों से प्राप्त हुयी हैं।

लोकपाल अथवा देवपाल की गणना छोटे देवताओं के रूप में की जाती थी। ये चार प्रमुख दिशाओं के रक्षक के रूप में स्वीकार किये गये हैं। उनका निवास स्थान

---

1 तत्रैव, अभिनिष्क्रमणपरिवर्त, पृष्ठ 426

2 मजूमदार, आर०सी०, (स०), दि हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑव दि इण्डियन पीपुल, पृष्ठ-282

सुमेरु पर्वत है। वे बौद्ध मान्यता के स्वर्ग (सुखावती) द्वार की रक्षा करते हैं।[1] दिक्पाल योद्धाओं जैसे वस्त्र, कवच, जूता एवं मुकुट धारण करते हैं। ये महापञ्चराज मठों के रक्षक हैं किन्तु दिक्पालों की संख्या निश्चित नहीं है। बौद्धों के अनुसार इनकी संख्या चार, आठ, दस अथवा चौदह है। [2]

पालि-साहित्य में चार दिक्पाल अथवा लोक्पाल, चार महाराज (चत्तारोमहाराजानो) कहे गये हैं। इनमें से यक्षों के अधिपति वैश्रवण को उत्तर दिशा का स्वामी स्वीकार किया गया है। [3] बौद्ध वाङ्मय में अनेक स्थलों पर लोक्पालों का इन्हीं रूपों से मिलता जुलता उल्लेख प्राप्त होता है। इन्हें चतुर्महाराजिक देवा के नाम से भी अभिहित किया गया है। मललसेकर ने बौद्ध मान्यता के निम्नदेव विश्व का वर्णन करते हुए दीघ तथा अंगुत्तर निकाय का वर्णन प्रस्तुत किया है, जहाँ पर इन्हें चतुम्महाराजिक (चतुर्महाराजिक) कहा गया है। [4] इसी क्रम में चार दिशाओं के रक्षक चार महाराजों का उल्लेख करना भी समीचीन होगा जिसमें वेस्सवण (वैश्रवण-कुबेर) यक्षों का स्वामी उत्तर दिशा का महाराज है।

पालि-भाषा में अनूदित चाइल्डर्स के शब्द कोश में अभिधाप्पदीपिका आदि का उल्लेख प्राप्त होता है। यहाँ धतरत्थ को उत्तर, विरु ल्ह अथवा विरु ल्हक को दक्षिण, विरुपाक्ख को पश्चिम और वेस्सवण(वैश्रवण) को पूर्व दिशा का स्वामित्व प्रदान किया गया है। यह बात यहाँ पर विशेष उल्लेखनीय है कि इन चार महाराजों में से कुबेर का उल्लेख ही ब्राह्मण-ग्रन्थों में उपलब्ध होता है। वहाँ भी उनकी दिशा सदैव एक सी निर्धारित नहीं है। महामायूरी में कुबेर को पूर्व दिशा का रक्षक स्वीकार

---

1 गार्डन, ए०के०, दि आइकोनोग्राफी ऑफ तिबतन लामाइज्म, पृष्ठ 92

2 विलियम्स, एम०एस०, ए संस्कृत इँग्लिश डिक्शनरी, पृष्ठ 906

3 अन्य तीन-गन्धर्वों का अधिपति धृतराष्ट्र-पूर्व दिशा का कुम्भाण्डों का अधिपति बिरुढक-दक्षिण दिशा तथा नागों का अधिपति विरुपाक्ष-पश्चिमी दिशा के स्वामी थे।

4 डिक्शनरी ऑव पाली प्रापर नेम्स, चतुम्महाराजिक, धतरत्थ आदि; महावस्तु III.217,309; जातकों में कुबेर प्रथमतः दिशा-रक्षक वर्णित हुए हैं, जातक II,271;III.165-166;6.10

किया गया है। अन्य तीन प्रमुख यक्ष दीर्घ, सुनेत्र और कपिल हैं।[1] ललितविस्तर में भी कुबेर को लोक्पाल कहा गया है।[2]

विश्व के इन चार महाराजों की बौद्ध मत की अवधारणा का विकास कब हुआ? यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता, क्योंकि निकायों की तिथियाँ अनिश्चित हैं ।[3] भरहुत में महाराजों का अभिलेखिक प्रमाण प्राप्त होता है[4] जिसकी तिथि शुङ्ग काल (187-75 ई०पू०) में रखी जा सकती है। यद्यपि यहाँ पर वह यक्ष के नाम से ही सम्बोधित किये गये हैं, महाराज नहीं। इनमें कुबेर का उल्लेख वैश्रवण के रूप में मिलता है। संस्कृत-बौद्ध-साहित्य कुबेर का सम्बन्ध मणिभद्र-यक्ष के साथ स्थपित करते हैं।[5] बौद्ध -परम्परा में दिशाओं के रक्षकों की उत्पत्ति का आधार हिन्दू मान्यताएँ ही रही हैं। विभिन्न साधनों तथा गुह्य समाज में इनकी उत्पत्ति का वर्णन किया गया है। निसपण्णयोगवालि में उनकी स्थिति बतायी गयी है। वे अकेले

---

1 महामायूरी, 1.40.54.

2 ललित विस्तर, पृष्ठ-390

3 बौद्ध ग्रन्थों की रचना बुद्ध की मृत्यु के बाद (486 ई०पू०) हुयी। पुनः (386 ई०पू०) इनमें संशोधन किया गया तथा बुद्ध के परिनिर्वाण के 236 वर्ष बाद वे पूर्ण रूप से लिखे जा सके (ए हिस्ट्री ऑव इण्डियन लिट्रेचर, वाल्यूम - 11 पृष्ठ 6)। बौद्ध-ग्रन्थ जिनका रूपाकार प्रथमतः मौखिक ही था, प्रथम शताब्दी ई०पू० में लिपिबद्ध हो सका (तत्रैव, पृष्ठ-8.13)। यद्यपि इसके बाद भी समय-समय पर परिवर्धन एवं संशोधन होते रहे।

4 बरूआ, सिन्हा, भरहुत इन्सक्रिप्सन्स, पृष्ठ-67 क्रमशः। लेखक ने यहाँ दीघनिकाय के अतिरिक्त दिव्यावदान, महावस्तु और ललित विस्तर को भी उद्धृत किया है।

5 सरकार, डी०सी०, स्टडीज इन दि रेलिजस लाइफ ऑव दि एन्शियेन्ट एण्ड मेडिवल इण्डिया, पृष्ठ-238

अथवा शक्तियों के साथ भी प्रदर्शित किये गये हैं।[1] बौद्ध-धर्म में अन्तर्निहित दिक्पालों की मान्यता का उल्लेख हाप्किन्स ने भी किया है।[2]

महासमाज सुत्तन्त, कपिलवत्थु (कपिलवस्तु) में बुद्ध के सम्मान में आयोजित एक सभा में सहस्रों देवताओं की उपस्थिति का उल्लेख करता है। इसमें उत्तर दिशा के दिक्पाल कुबेर की उपस्थिति विशेष उल्लेखनीय है।[3] एक अनुश्रुति के अनुसार जब माया देवी ने श्वेत हाथी का स्वप्न देखा, उस समय वह चार लोक्पालों से आवृत्त थीं तथा जब गौतम बुद्ध प्रथम बार मन्दिर ले जाये गये तो इन्हीं दिशा रक्षकों ने उनकी स्तुति की थी।[4] इसी प्रकार के वर्णन की एक और सूची, जो सम्भवतः पूर्णकालिक है, आटानाटीय में भी प्राप्त होती है।[5]

साधनमाला में जम्भल के विकसित तथा जटिल स्वरूप का विस्तृत विवरण प्राप्त होता है, इसमें जम्भल से सम्बन्धित पाँच साधन[6] उच्छुष्म जम्भल से सम्बन्धित आठ साधन[7] तथा वश्यजम्भल[8] से सम्बन्धित एक साधन वर्णित है। इन साधनों में उनके तांत्रिक स्वरूप का विवेचन मिलता है। जम्भल के मुकुट में अक्षोभ्य नामक ध्यानी बुद्ध की स्थिति तथा उन्हें महावज्रधर विशेषणों से युक्त स्वीकार करने की परम्परा वज्रयान के पूर्ण प्रभाव को द्योतित करती है तथा साथ ही साथ पौराणिक परम्परा में वर्णित शंख और पद्म नामक दोनों निधियों को शंखमुण्ड तथा पद्ममुण्ड

---

1 गुप्ते, आर०एस, आइकोनोग्रैफी ऑव दि हिन्दूस, बुद्धिस्ट एण्ड जैन्स, पृष्ठ-120

2 हाप्किन्स, इपिक माइथालोजी, पृष्ठ-152

3 रिस, डेविड, डायलाग्स् ऑव दि बुद्धा, 2, पृष्ठ-284। अन्य दिशा रक्षकों ने धतरत्थ-पूर्व का स्वामी, विरूल्हक-दक्षिण, तथा विरुपक्ख पश्चिम का स्वामी था।

4 वर्मा, डी०एन० रिप्रजेन्टेशन ऑफ दिक्पालाज ऐट एलोरा, पृष्ठ-314

5 स्मिथ, वी०ए०, ए हिस्टी ऑव फाइन आर्ट इन इण्डिया एण्ड सीलोन, पृष्ठ-6

6 साधनमाला, साधन- 286-290

7 तत्रैव, साधन-291-297

8 तत्रैव, साधन-298

के रूप में वर्णित करना भी,उनके विकट तथा तांत्रिक स्वरूप का परिचायक है। यह उल्लेखनीय है कि प्रायः सभी साधनों में जम्भल की जलेन्द्र उपाधि प्राप्त होती है। इनकी स्थापना के समय विभिन्न यक्षों के दिशाओं के क्रम में भी साधन माला में परिवर्तन दृष्टिगत होता है। पूर्व-दिशा में नील-वर्ण पूर्णभद्र, दक्षिण-दिशा में पीतवर्ण वैश्रवण, पश्चिम दिशा में रक्तवर्ण धनद तथा उत्तर दिशा में पीतवर्ण मणिभद्र को प्रतिष्ठित करने का उल्लेख साधन माला [1] में किया गया है। पौराणिक एवं बौद्ध दोनों दिशाओं में वैश्रवण की दिशा उत्तर स्वीकार की गयी है।

अन्य स्थानों पर कुबेर को उत्तर कुरु का राजा कहा गया है तथा उनके निवास स्थान को अलकमण्ड के रूप में वर्णित किया गया है, तथा उनके साम्राज्य का नाम विशान मिलता है। उनके दूतों में ततोला, ततोतला, ओजसी, तेजसी, तलोजसी, सूर, राज, अरित्थ तथा नेमि प्रमुख थे। उनके पुत्रों को ' इन्द ' कहा गया है। [2] कुबेर को उत्तर-दिशा के स्वामी के साथ-साथ यक्षों का भी अधिपति कहा गया है। [3] सुत्तनिपात में उन्हें स्पष्ट रूप से बौद्ध-धर्म का अनुयायी कहा गया है।[4]

कुबेर के पूर्व जन्म का विवरण भी सुमंगलविलासिनी तथा सुत्तनिपात की टीका में मिलता है जिसके अनुसार कुबेर पहले एक ब्राह्मण थे जो इक्षु से सम्बन्धित विशाल भूखण्ड के स्वामी थे यह ब्राह्मण अपनी उपज का सातवां भाग दान में दे देता था। मृत्यु के पश्चात् यही ब्राह्मण चतुर्महाराजिक देवताओं में से एक अर्थात् कुबेर के रूप में उत्पन्न हुआ। [5] जातकों में पुन्नक नामक यक्ष को कुबेर के मंत्री के रूप में चित्रित किया गया है तथा कुबेर की गणना ऐसे व्यक्तियों में की गयी है जो अपने कार्यों के द्वारा स्वर्ग पहुँच गये थे। [6] वैश्रवण को जो कुबेर का ही एक नाम था

---

1 तत्रैव, साधन-289

2 दीघनिकाय, III,201 तथा आगे

3 तत्रैव, II,257

4 सुत्तनिपात, V,379

5 सुमंगलविलासनी, III,966 तथा सुत्तनिपात टीका, I,369 तथा आगे

6 जातक, VI,307,325 तथा 201

'गदाबुध' भी कहा गया है।[1] वैश्रवण अथवा कुबेर को गदाबुध कहने का तात्पर्य उनके गदायुद्ध में प्रवीण व्यक्तित्व को प्रदर्शित करता है। सम्पत्ति के अलावा सन्तान की कामना करने वाले मनुष्यों के द्वारा ही कुबेर की पूजा के प्रमाण बौद्ध साहित्य में प्राप्त होते हैं। [2] महावस्तु में यह उल्लेख मिलता है कि पुण्डकाभय के समय में एक न्यग्रोध वृक्ष को वैश्रवण अर्थात् कुबेर के स्थल के रूप में चित्रित किया गया था।[3] दीघनिकाय में वैश्रवण की पत्नी का नाम 'भुञ्जति ' प्राप्त होता है। यह भी वैश्रवण की भाँति गौतम बुद्ध की अनुयायी थी। [4] इसके पाँच पुत्रियों लता, सज्जा, पौरा, अच्छिमती तथा सूता का भी उल्लेख प्राप्त होता है। [5]

अष्ट-दिक्पालों का उल्लेख धर्मधातुवागीश्वरमण्डल तथा निष्पन्नयोगावली में भी प्राप्त होता है। वे चार प्रमुख एवं चार गौण दिशाओं के स्वामी के रूप में मान्य हैं। इस देवता को बौद्धों के वज्रयान शाखा के यमान्तक देवों के समतुल्य स्वीकार किया गया है। इन ग्रन्थों में प्राप्त विवरण के अनुसार कुबेर [6] पीत-वर्ण तथा नर वाहन हैं। उनकी दो भुजाएँ हैं जिनमें क्रमशः अंकुश तथा गदा वे धारण करते हैं। यहाँ पर उन्हें उत्तर-दिशा का दिक्पाल स्वीकार किया गया है। यद्यपि यह कहा जा सकता है कि दिक्पालों का विस्तृत विवरण बौद्ध साहित्य में उपलब्ध होता है किन्तु यह परम्परा बौद्धों की स्वयं की उपज नहीं है। सम्भवतः इसकी प्रेरणा उन्हें पौराणिक धर्म ग्रन्थों से मिली रही होगी। जहाँ तक स्वतंत्र अथवा अन्य देवों के साथ अंकन की परम्परा का प्रश्न है? यह भी उनकी अपनी परम्परा थी। दिक्पालों को दिशाओं के अधिपति के रूप में मान्यता प्रदान करने की बौद्धों की धार्मिक विचार धारा में परिवर्तन सम्भवतः परिवर्ती काल में सम्भव हुआ होगा। जम्भल बौद्ध-धर्म के धन के देवता हैं जिनके कई

---

1 एस०एन०ए०, i.225, पुस्तकें (ई०जी०एस०ए०,i.294; एस०पी० ii.440

2 देखों , ई०जी० राजदत्त की कहानी, थैंगा; i. 403

3 महावस्तु, X,89

4 दीघनिकाय, ii,270

5 वी०वी०ए०, 131 तथा आगे

6 'नरे कुबेरः सुपीतो कुश गदाधरः', एन०एस०पी०, पृष्ठ-61

भक्त हैं तथा इनकी पूजा विविध रूपों में होती थी। यह देवता हिन्दू-धर्म के कुबेर का बौद्ध प्रारूप है जिन्हें धन एवं कोष के स्वामी के रूप में माना जाता है। जम्भल निःसन्देह एक प्राचीन देवता हैं। ऐसा स्वीकार किया जाता है कि बौद्ध देवी-देवता पांच ध्यानी बुद्धों से अवतरित हुए हैं परन्तु किसी विशेष ध्यानी बुद्ध से जम्भल का समीकरण अभी तक स्थापित नही हो सका है। साधनों के अनुसार इनकी उत्पत्ति 'रत्नसंभव' अथवा 'अक्षोभ्य' से हुई है। प्रतिमालक्षण सम्बन्धी प्रमाणों के द्वारा हमें इनकी उत्पत्ति अमिताभ से हुई प्रतीत होती है। इनकी मूर्तियाँ एक ऊँचे पट्ट पर उकेरी गयी हैं। यह कहना सर्वथा उचित प्रतीत होता है कि जम्भल देवता से जनमानस बहुत पहले से परिचित था, तभी किसी भी ध्यानी बुद्ध से इनका समीकरण नहीं किया जा सका है।

साधन माला में विभिन्न साधनों के आधार पर विविध रूपों में ईश्वर-पूजा का विधान मिलता है। बी०भट्टाचार्य ने विभिन्न प्रकार के जम्भल का विस्तृत विवरण दिया है।[1] ये धन के देवता हैं। रत्नसंभव[2] में इनको अकेले या पत्नी 'प्रज्ञा-वसुधारा' के साथ याब-युम में दिखाये जाने का उल्लेख मिलता है। अक्षोभ्य [3] से उद्भव होने के कारण इन्हें अपनी पत्नी के साथ उसी शैली में प्रदर्शित किया गया है।

रत्नसंभव के अनुसार[4] जब जम्भल को अकेले दिखाया जाता है तो इनके दाहिने हाथ में चकोतरा-फल (मातुलंग) तथा बायें हाथ में नकुलक रहता है। नकुलक में बहुमूल्य रत्न एवं मोती का संग्रह है जिसे जब भी जम्भल चाहें दोनों ओर से दबा कर उनके मुँह से उगलवा सकते हैं । फूशे महोदय ने यह उल्लेख किया है कि उसका मूल आकार नेवले की खाल से बना एक बटुआ है। इसी लिए इसे 'नकुलक' कहा जाता है। इस सन्दर्भ में यह विचारणीय है कि नेवला सदैव से नागों का प्राकृतिक दुश्मन रहा है जो पृथ्वी के अन्दर रखे हुए धन एवं सम्पत्ति के संरक्षक हैं। नेवलों ने

---

1 भट्टाचार्या, बी०, इण्डियन बुद्धिस्ट आइकोनोग्रैफी, पृष्ठ 237 तथा आगे और 178 तथा आगे

2 तत्रैव, पृष्ठ-237 आगे

3 तत्रैव, पृष्ठ-178 आगे

4 तत्रैव, पृष्ठ-237 आगे

कालान्तर में नागों के संरक्षण से सम्पूर्ण सम्पत्ति को छीन लिया। नकुलक अपने पेट में धन छिपाने के लिए जाना जाता है। ब्राह्मण-धर्म के देवता से भिन्नता के लिए जो प्रतीक के रूप में धन की थैली को धारण करते हैं, नेवले को धन के बौद्ध देवता के साथ प्रदर्शित किया गया है। नकुलक शब्द का अर्थ भी एक प्रकार का धन का बटुआ है तथा यह इसी अर्थ में दिव्यावदान[1] में प्रयुक्त हुआ है। जम्भल का नकुलक वास्तव में नकुलक है। इस प्रकार यही नकुलक इस देवता की महत्वपूर्ण विशेषता है जो इसकी मूर्ति की पहचान में सहायक होता है। जम्भल के हाथ में दूसरा आयुध मातुलुंग है। जम्भल का ब्राह्मण धर्म में रूपान्तरण कुबेर के रूप में मिलता है। यहाँ कुबेर को आसवपायी (मदिरापान करते हुए) के रूप में चित्रित किया गया है। इनकी मथुरा-कला में अनेकशः प्रतिमाएँ विद्यमान हैं। इसमें कुबेर को मद्य-पात्र लिए हुए तथा सेविकाओं द्वारा बार-बार मद्य-पात्र में मदिरा डालने का दृश्य अंकित है। जम्भल का चकोतरा-फल का प्रदर्शन कुबेर के मद्य-पात्र के रूप में किया गया है। इस रसीले फल से ही मद्य तैयार किया जाता है।

जम्भल[2] का एक दूसरा स्वरूप भी है जिसमें इन्हें दो भुजाओं वाला दिखाया गया है। एक हाथ में नकुलक तथा दूसरे हाथ में चकोतरा फल प्रदर्शित है। किन्तु प्रस्तुत चित्रण पहले वाले से भिन्न है तथा इस स्वरूप में वे दो अर्ध दैवीय शक्तियों को रौंदते हुए दिखाये गये हैं। आलीढ़-मुद्रा में ये शंखमुण्ड एवं पद्ममुण्ड को लिए हुए प्रदर्शित हैं। मार्कण्डेय पुराण [3] शंख एवं पद्म दोनों को निधियों के रूप में स्वीकार करता है जिसके ऊपर धन के हिन्दू देवता कुबेर को दिखाया गया है।

रत्नसंभव[4] के चित्रण के अलावा जम्भल अपनी पत्नी वसुधारा के साथ अष्टदल दोहरे कमल पर आसीन है। जम्भल को सुनहले पीले रंग में दिखाया गया है। वे पीत-कमल की माला के साथ आभूषणों से सुसज्जित हैं। वे वृकोदर तथा एक

---

1 मोनियर-विलियम्स, एम०, ए संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी, पृष्ठ-524

2 साधन सं०-287 साधनमाला में, पृष्ठ-564; भट्टाचार्या, वही, पृष्ठ-238

3 मार्कण्डेय पुराण, पृष्ठ- 68.4

4 साधनमाला में साधन नं० 284, पृष्ठ-560-61; भट्टाचार्या, वही, पृष्ठ-238

हाथ में चकोतरा-फल तथा दूसरे में नकुलक को लिए हुए हैं। अष्टदल कमल आठ यक्षों के प्रतीक हैं। परम्परा अनुसार याब-युम में यक्षिणी को भी बैठे हुए दिखाया गया है जो बाद में 'वसुधारा' के रूप में प्रसिद्ध हुयी। यह अपने बाँये हाथ में अन्न तथा दाहिने हाथ को वरद मुद्रा मे प्रदर्शित करती हुई दिखाई गई है।

याब-युम में जम्भल को रत्नसंभव [1] की तरह दिखाया गया है। फिर भी दूसरे रूप में उन्हें श्वेत वर्ण तीन मुख तथा छः भुजाओं वाला प्रदर्शित किया गया है। साधन के अनुसार उनका दाहिना एवं बाँया मुख क्रमशः लाल तथा मध्य का नीले आसमानी रंग का होना चाहिए। जम्भल को वज्रपर्यङ्कमुद्रा में अपनी पत्नी 'प्रज्ञा-वसुधारा' के साथ दोनों दाहिने हाथों में क्रमशः वज्र और तलवार तथा बायें हाथों में क्रमशः कमल तथा पन्ना को धारण किये हुए दिखाया गया है।

अक्षोभ्य परम्परा [2] तथा याब-युम दोनों जम्भल को तीन-मुख एवं छः भुजाओं वाला प्रदर्शित करते हैं। ध्यान देवता के रंग का उल्लेख नहीं करता, फिर भी उसे नीले आसमानी रंग का बताया गया है। जम्भल को यहाँ कुञ्चित केश में दिखाया गया है। उनके तीन दाहिने हाथों में क्रमशः चकोतरा-फल अंकुश तथा बाण और बाँये में नकुलक एवं बाण है।

जम्भल के विविध प्रतिमा शास्त्रीय स्वरूप उत्तर भारत के विभिन्न स्थानों से प्राप्त हुए हैं किन्तु इनमें कुछ ही याब-युम में वर्णित प्रज्ञा-वसुधारा से साम्य रखते हैं। जम्भल का सबसे प्रसिद्ध रूप अकेले शान्त बैठे हुए , वृकोदर, एक हाथ में नकुलक से मोतियों को उगलवाते हुए तथा दूसरे हाथ में हिन्दू कुबेर के समान धन की थैली को लिए हुए दिखाया गया है। कुछ समय यह अपनी पत्नी के साथ भी प्रदर्शित हैं किन्तु गान्धार की हेलेनिस्टिक [3] कला में जम्भल नकुलक को धारण नहीं करते जो भारतीय बौद्ध-कला में उनका प्रमुख आयुध एवं प्रतीक है। लाहौर संग्रहालय [4] में

---

1 साधनमाला में साधन नं०-297 पृष्ठ-581; भट्टाचार्या, वही, पृष्ठ 238-39

2 साधनमाला में साधन सं० 286, पृष्ठ-564; भट्टाचार्या, वही, पृष्ठ 178

3 कुछ समय इनका उल्लेख पञ्चिक के रूप में है।

4 जर्नल ऑफ इण्डियन आर्ट इत्यादि, VIII, पृष्ठ-37 आकृति-14,3; ग्रुन्वेडल, ए०, बुद्धिस्ट आर्ट इन इण्डिया, पृष्ठ-136-37

कुबेर की एक प्रतिमा संरक्षित है जिसमें उन्हें सिंहासनासीन, बहुमूल्य आभूषणों से युक्त तथा वृकोदर दिखाया गया है। सम्भवतः उनके बगल में एक छोटी यक्ष-प्रतिमा है।

हिन्दू कुबेर के साथ मथुरा [1] के चारों तरफ से जम्भल की अनेक प्रतिमाएँ खोजी जा चुकी हैं। मथुरा कला में कुबेर की आकृति वृकोदर, हाथ में मद्य-पात्र एवं धन की थैली के साथ मिलती है। प्रतिमालक्षण प्रमाणों के आधार पर कुबेर तथा जम्भल में अधिक भिन्नता नहीं प्रतीत होती है। वे प्रायः कुबेर के समान ही लगते हैं। इनमें केवल एक अन्तर है कि धन की थैली को नकुलक के रूप में प्रदर्शित कर दिया गया है। विभिन्न साहित्यिक साक्ष्यों के अनुसार जम्भल को दूसरे हाथ में चकोतरा-फल को धारण करना चाहिए। किन्तु यहाँ कुबेर के हाथ का मद्य-चषक प्रायः जम्भल के हाथ में भी दिखाई देता है। यही परम्परा मथुरा की कला में भी मिलती है। कतिपय मूर्तियों में कुबेर अपनी पत्नी हारीति (बच्चा लिए हुए) के साथ हैं तो कहीं हारीति के हाथ में कार्नुकोपीया है जो उर्वरता का प्रतीक है। इस तरह की प्रतिमा पोत्रा-कुण्डा [2] से भी प्राप्त हुई है। द्वितीय प्रतिमा कुषाण काल की सितोहा तालाब से मिली है जिसमें जम्भल को हाथों में नकुलक तथा मद्य-चषक के साथ आभूषण धारण किये हुए प्रदर्शित किया गया है।

कुबेर के समान जम्भल को मथुरा की कला में देखा जा सकता है। गुप्तकाल [3] की मथुरा कला में जम्भल को दाहिने हाथ में प्याला तथा बायें हाथ में नकुलक के साथ उनके बाल को छोटा घुँघुराला दिखाया गया है। उनके दोनों कन्धों के बगल दो सेविकाएँ मदिरा के साथ खड़ी है। जम्भल की प्रतिमाएँ भारत के दूसरे भागों से भी प्राप्त हुयी हैं। साहित्यिक साक्ष्य उनके हाथों में क्रमशः नकुलक एवं चकोतरा-फल को धारण करने का उल्लेख करते हैं। बाद की देवता की आकृतियों में बहुसंख्यक घट विद्यमान हैं जो धन का प्रतीक है। इनका अंकन मुद्राओं पर भी मिलता है। इलाहाबाद

---

1 अग्रवाल, वी०एस०,ए कैटलाग आफ दि ब्राह्मनिकल इमेज इन मथुरा आर्ट, पृष्ठ - 80(सं० सी० 26)

2 जे०यू०पी०एच०एस०,भाग-XXIV-XXV, पृष्ठ-124

3 अग्रवाल, वी०एस०, वही, पृष्ठ-78(सं० सी० 4)

जिले के पभोसा [1] नामक स्थान से एक जम्भल की प्रतिमा मिली है जो स्वर्ण मण्डित सिहासन पर आसीन है। उनका बाँया पैर ऊपर उठा हुआ है तथा दाहिना नीचे लटक रहा है। दाहिने हाथ में प्याला तथा बायें हाथ में नकुलक है। आभूषणों से सुसज्जित देवता दो सेवकों से घिरे हैं जिनमें एक आभूषणों से भरा हुआ पात्र तथा द्वितीय सिक्कों से भरा हुआ दो थैला लिए हुए है। उल्लेखनीय है कि यह प्रतिमा मध्यकाल का एक सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करती है।

उत्खनन में नालन्दा से भी जम्भल की अनेक प्रतिमाएँ प्राप्त हुयी हैं। नालन्दा से प्राप्त एक प्रतिमा[2] में देवता के दाहिने हाथ में चकोतरा-फल तथा बाँयें हाथ में मोती उगलते हुए नकुलक को तथा उन्हें पाद-पीठिका पर बैठे हुए दिखाया गया है। वह दो भक्त सेविकाओं द्वारा घिरा है जो उनके बगल में स्थित है। अन्य प्रतिमा [3] में जम्भल अपने दाहिने हाथ में चकोतरा को जो उनके घुटने तक है तथा बायें हाथ में नकुलक जिसके मुख से मोती निकल रहा है, को धारण किए हुए हैं। नालन्दा [4] से प्राप्त एक कांस्य प्रतिमा जो पटना संग्रहालय में सुरक्षित है में जम्भल को आभूषण-मण्डित वृकोदर तथा हाथों में क्रमशः चकोतरा-फल तथा धन की थैली (बटुआ) को धारण किए हुए प्रदर्शित किया गया है।

इण्डियन म्यूजियम कलकत्ता[5] में संरक्षित घासीकुण्डा से प्राप्त प्रतिमा उस समय के प्रतिमालक्षण की महत्वपूर्ण विशेषता को प्रस्तुत करती है। ग्यारहवी-बारहवीं

---

1 जे०यू०पी०एच०एस०,भाग VII, पृष्ठ-71-73, आकृति 3

2 ए०एस०आई०ए०आर०, 1930-34, पृष्ठ-280-81

3 तत्रैव, 1930-34, पृष्ठ 280-81

4 सिन्हा, बी०पी०, भारतीय कला को बिहार की देन, आकृति, 111; घोष, ए०, ए गाइड टू नालन्दा, पृष्ठ-27-28

5 बनर्जी, आर०डी०, ई०आई०एस०एम०एस०, पृष्ठ 36-38, आकृति-XVI, सी; क्रेमरिश, पाल एण्ड सेन आर्ट, आकृति-54; ब्लाख, टी० सप्लिमेन्ट्री कैटलाग ऑफ आर्कियोलाजिकल कलेक्सन्स ऑफ दि इण्डियन म्यूज़ियम, कलकत्ता, पृष्ठ 61 (सं० 4571)

शताब्दी ई० का एक अभिलेख उस प्रतिमा पर विद्यमान है जो इसकी विशेषता का उल्लेख करता है। जम्भल को यहाँ अर्द्धपर्यङ्कमुद्रा में बैठे हुए प्रदर्शित किया गया है। उनका दाहिना हाथ वरद-मुद्रा में दाहिने घुटने पर चकोतरा-फल रखे हुए तथा बायें हाथ में नकुलक है जो पैर के नीचे तक लटकता हुआ दिखाया गया है। अक्षोभ्य की आकृति में जम्भल करण्डमुकुट को धारण किए हुए भू-स्पर्श मुद्रा में दिखाये गये हैं तथा इनके चारों ओर ध्यानी बुद्धों को इसी मुद्रा में बैठे हुए प्रदर्शित किया गया है।

कुबेर [1] का जम्भल स्वरूप बिहार के भागलपुर जिले के आन्तिचक नामक स्थान से एक स्तूप के टीले से मृण्मूर्ति के रूप में प्राप्त हुआ है। वृकोदर स्वरूप तथा 'अर्द्धपर्यङ्कमुद्रा' में जम्भल बैठे हुए हैं और उनके हाथ में नकुलक है। बायें हाथ में धन की थैली है तथा दायें हाथ भग्न हो चुका है। जिसमें प्रायः एक रसीला फल रहता है। उनके मस्तक पर मुकुट है तथा अनेक आभूषण तथा माला को वे धारण किये हुए हैं।

जम्भल की छोटे आकार की प्रस्तर मूर्ति ढाका म्यूजियम[2] में संरक्षित है जिसके दाहिने हाथ में चकोतरा-फल तथा बायें में स्वर्ण को उगलते हुए नकुलक को प्रदर्शित किया गया है। एक अन्य लघु प्रस्तर मूर्ति जम्भल की पैकपारा [3] से प्राप्त हुयी है जो ढाका के ही संग्रहालय में है। इसमें देवता को भद्रासन-मुद्रा में प्रदर्शित किया गया है। इसके पीछे बंगाली में एक छोटा लेख नौंवी शती ई० का है जो इस प्रकार है-
'जम्भल जल (इन्द्रा) या जलेन्द्राय स्वाहा।' ऐसा प्रतीत होता है कि धन के बौद्ध देवता जम्भल की पहचान कभी-कभी जल के स्वामी वरुण से की जा सकती है। यह ' जलेन्द्र ' शब्द से प्रमाणित होता है।[4]

असम के चित्तगाँग [5] नामक स्थान से जम्भल की एक कांस्य प्रतिमा मिली है जो ललितासन मुद्रा में है। वह एक विशेष प्रकार का फल दाहिने हाथ में लिए हुए है

---

1 जर्नल ऑफ दि बिहार रिर्सच सोसाइटी, भाग-LVII, पृष्ठ-64-65, आकृति-7

2 भट्टशाली, वही, पृष्ठ-34-35, आकृति-XI,ए

3 तत्रैव, पृष्ठ-35, आकृति XI, बी

4 तत्रैव, पृष्ठ-35, आकृति XI, सी

5 ए०एस०आई०ए०आर०, 1921-22, पृष्ठ-83

जो सम्भवतः चकोतरा-फल है तथा बायें हाथ में हाथी का खिलौना है। उल्लेखनीय है कि जम्भल के हाथ में इस प्रकार का अंकन प्रथम बार होता है। उड़ीसा के उदयगिरि [1] से जम्भल की प्रतिमा मिली है जो वृकोदर है तथा अर्द्धपर्यङ्कमुद्रा में स्थित है। दाहिने हाथ में चकोतरा-फल है जो दाहिने घुटने की ओर झुका है तथा बाँया हाथ खाली है।

दशवीं ग्यारहवीं शताब्दी ई० की पाल राजाओं के समय की एक जम्भल की प्रतिमा प्राप्त हुई है जो राष्ट्रीय संग्रहालय दिल्ली में संरक्षित है। इसमें जम्भल कमलासन पर अर्द्धपर्यङ्कमुद्रा में बैठे हैं। दाहिने हाथ में नकुलक तथा बायें हाथ में मणिमाला है। आभूषणों से विभूषित यहाँ जम्भल धन के स्वामी के रूप में प्रदर्शित हैं। उनके मस्तक के दोनों ओर शंख एवं पद्म निधियों का अंकन किया गया है। [2]

जम्भल की प्रायः द्विभुजी प्रतिमाएँ ही मिलती हैं किन्तु चतुर्भुजी प्रतिमा नालन्दा [3] से प्राप्त होती है जिसमें देवता ललितासन-मुद्रा में बैठे हैं। दाहिने दोनों हाथों में क्रमशः पात्र तथा तलवार है तथा बायें पुष्प एवं नकुलक है। देवता का दाहिना पैर आराम की अवस्था में ऊपर उठा हुआ है। पुनः एक अन्य प्रतिमा नालन्दा[4] से ही प्राप्त हुई है जिसमें जम्भल की महत्वपूर्ण विशेषताएँ देखने को मिलती हैं। जम्भल चारों ओर से घिरे हुए कमल के मध्य में बैठे हुए हैं तथा आठ लघु आकृतियाँ उन्हें घेरे हुए प्रदर्शित हैं।

विभिन्न साधन जम्भल का उल्लेख उच्छुष्म-जम्भल के रूप में करते हैं जिसे 'डिम्भा' भी कहा जाता है। उच्छुष्म-जम्भल, जम्भल का एक प्रकार है जिसकी पूजा का उल्लेख अधिकांश साधन करते हैं। अक्षोभ्य [5] देवता का वर्णन पाँच वर्ष के बच्चों एंव बौनों के देवता के रूप में करता है। चन्द्रमुखी कमल पर प्रत्यालीढ़-मुद्रा में वह खड़े हैं तथा सर्पों के आभूषणों से विभूषित हैं। उनके दाहिने पैर स्वर्ण बाहर उगल रहे

---

1 एम०ए०एस०आई०-44, पृष्ठ-11, आकृति-4.1

2 सहाय, भगवन्त, वही, आकृति-38; राष्ट्रीय संग्रहालय नं०-62.3001.

3 घोष, ए०, ए गाइड टू नालन्दा, पृष्ठ- 27-28 (नं०-1-205)

4 तत्रैव, पृष्ठ- 27-28(सं० 1-641)

5 साधनमाला, पृष्ठ-577; भट्टाचार्या, वही, पृष्ठ-179

हैं तथा बाँया उनके दाहिने पैर पर आराम की अवस्था में रखा हुआ है। उनकी आँखें रक्तपूरित कपाल पर टिकी हुई हैं जिसे वह अपने दाहिने हाथ में सामने लिए हुए हैं। बायें हाथ में नकुलक को स्वर्ण उगलते हुए बायीं ओर जंघे पर दिखया गया है। उनके कान बड़े तथा अद्वितीय है तथा चेहरा बाहर निःसृत दाँतों के कारण वक्र है। उनकी तीनों आँखें लाल तथा गोलाकार है तथा भौहें वक्र होने से भयानक प्रतीत होते हैं। उनके भूरे बाल ऊपर उठे हुए हैं तथा अपने मुकुट पर वह भू-स्पर्श मुद्रा में नील-वर्ण अक्षोभ्य प्रतिमा को धारण किये हैं।

रत्न संभव[1] में उच्छुष्म जम्भल का उल्लेख अनेक प्रकार से किया गया है। उन्हें भयानक नंगे दाँतों तथा सर्पो की माला के साथ रक्तपूरित कपाल को दाहिने हाथ में धारण किये हुए बायें हाथ में नकुलक तथा त्रिनेत्र के साथ प्रदर्शित किया गया है।

सारनाथ[2] की जम्भल की प्रतिमा उच्छुष्म जम्भल की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषताओं को अभिव्यक्त करती है। इस अद्वितीय प्रतिमा में देवता की वे सभी विशेषतएँ मिलती हैं जो हमें साधनों से प्राप्त होती हैं। प्रतिमालक्षण में उच्छुष्म जम्भल अपनी पत्नी वसुधारा के साथ स्थानक-मुद्रा में प्रदर्शित है जिन्हें अत्यधिक उर्वरता एवं प्रचुरता की देवी के रूप में स्वीकार किया गया है। उनके बगल में एल्टोरेलिवो का उच्चित्रण किया गया है। उच्छुष्म जम्भल धनद प्रत्यालीढ़-मुद्रा में खड़े हुए तथा अनेक आभूषणों से सुसज्जित बौने आकार के एवं लम्बोदर हैं। प्रतिमा सर्पो की माला पहने हुए है तथा मस्तक उनका मण्डित है। चारों ओर से ध्यानी बुद्ध उनको घेरे हुए हैं। उनके मुख से दो दाँत बाहर निःसृत हो रहे हैं, दाहिना हाथ कपाल को धारण किये हुए है तथा बाँया नकुलक के साथ विलुप्त है। इनके साथ स्त्री-आकृति आभूषणों से सुसज्जित है किन्तु दोनों हाथ गायब हैं। प्रत्येक के बीच में कमल है तथा नीचे की दो मूर्तियाँ माला धारण किए हुए हैं। देवियों के नीचे रत्न-घटों के युगल उच्चित्रित हैं जो

---

1 साधनमाला में-साधन सं० 294, पृष्ठ 574-75; भट्टाचार्या, वही, पृष्ठ-239

2 साहनी, डी०आर०, कैटलाग ऑफ दि म्यूजियम ऑफ आर्कियोलाजी ऐट सारनाथ, पृष्ठ-135, आकृति-XV, ए; मजूमदार, बी०, गाइड टू सारनाथ, पृष्ठ-64 आकृति-XIV, ए; अग्रवाल, वी०एस०, सारनाथ, पृष्ठ-26, आकृति-X.बी

प्रचुरता के प्रतीक हैं। मूर्तियों पर एक अभिलेख है जो ग्यारहवीं शती ई० की विशेषताओं को सन्दर्भित करता है। यद्यपि साधन वास्तविक रूप से भय उत्पन्न करने वाले जम्भल का उल्लेख करते हैं जिनका स्वरूप अक्षोभ्य अथवा रत्नसंभव में प्राप्त होता है। किन्तु गंभीरता से दो ध्यानी बुद्ध की प्रतिमा के अलावा कुछ भी इनके शिरोभूषण के रूप में हम नहीं देख सकते हैं। अमिताभ को भी इनके साथ प्रदर्शित किया जाता है।

इस प्रकार जम्भल के अनेकों प्रकारों का उल्लेख मिलता है। गान्धार की हेलेनिस्टिक कला में धन के बौद्ध देवता के रूप में उनकी पहचान सन्देह से युक्त है। वह आभूषणों को धारण किये हुए, सुन्दर शरीर वाले राजा की तरह प्रदर्शित किये गये हैं। मथुरा-कला में वे कुबेर की तरह से वृकोदर तथा एक हाथ में मद्य-चषक को लिए हुए है तथा दूसरे हाथ में धन की थैली के स्थान पर नकुलक है जो कालान्तर में जम्भल का प्रतीक बन गया। उसके अन्य आयुध के रूप में चकोतरा-फल प्रदर्शित है। कतिपय प्रतिमाओं में वे अपनी पत्नी के साथ खड़े अथवा बैठे हुए दिखाये गये हैं। मथुरा कला में हिन्दू-कुबेर की तरह वह यूनानी-समूह में वृकोदर, एक हाथ में नकुलक तथा दूसरे में मद्य-पात्र लिए हुए हैं, जबकि सेविकाएँ हाथों में मद्य लिए उनके पास खड़ी हैं तथा मद्य पात्र में मदिरा उड़ेल रही हैं। ये सभी विशेषताएँ जम्भल के प्रतिमालक्षण को पूर्ण रूप से उद्‌घाटित करती हैं। साहित्यिक साक्ष्य उनका उल्लेख चकोतरा-फल तथा नकुलक को धारण किये हुए करते हैं जो उनके दबाने से स्वर्ण उगलने लगता है। वह प्रायः वृकोदर तथा विविध आभूषणों से सुसज्जित समृद्धि के देवता के रूप में प्रदर्शित किये गये हैं। कभी-कभी वह अपने शिरोभूषण के रूप में अथवा स्तम्भ के ऊपरी भाग पर ध्यानी बुद्ध को धारण किये हुए है। सामान्यतया प्रारम्भिक तथा बाद की मध्यकालीन मूर्तिकला में जम्भल अपने सामान्य प्रतीकों के अलावा हिन्दू कुबेर के समान अनेक रत्न-घटों से सम्बन्धित दिखाये गये हैं। देवता की चतुर्भुजी प्रतिमा केवल नालन्दा से ही प्राप्त होती है। नालन्दा से प्राप्त अन्य प्रतिमा भी अद्वितीय है जिसके चारों ओर आठ लघु-आकृतियाँ बैठी हुई हैं। जम्भल भय उत्पन्न करने वाले देवता के रूप में प्रायः कम ही प्रदर्शित किये गये हैं। वह सारनाथ से प्राप्त एक प्रतिमा में उच्छुष्म जम्भल के रूप में दिखाये गये हैं जो धन के हिन्दू देवता धनद

को रौंद रहे हैं। यह स्वरूप वास्तव में उनका पौराणिक विरोधी प्रतिरूप प्रदर्शित करता है।

भारतीय धर्म एवं कला के क्षेत्र में छठीं से दशवीं शती ई० का काल प्रायः उथल-पुथल भरा माना जा सकता है। इस समय इन क्षेत्रों में नवीन प्रवृतियों एवं प्रभावों का प्रयोग जारी था। जैन-धर्म भी इससे अलग न रह सका। प्रारम्भिक जैन ग्रन्थों के अनुशीलन से यह ज्ञात होता है कि तीर्थङ्करों के साथ यक्ष-यक्षिणियों तथा कुबेर इत्यादि अनेकानेक देवी देवताओं को जैन देव-समूह में स्थान प्राप्त हो चुका था।[1] कालान्तर[2] में इन देवों के प्रतिमा-लक्षणों का विकास भी हुआ।

इस प्रकार जैन-परम्परा में यक्ष-प्रतिमा का स्वतंत्र विकास हुआ। वट-वृक्ष इनका एक विशेष वृक्ष था।[3] शास्त्रसार समुच्चय में यक्ष, राक्षस पिशाच आदि के भेद वर्णित है।[4] यहाँ पर कुबेर के प्रिय अनुचर मणिभद्र का सर्वप्रथम उल्लेख मिलता है। कुषाण-कालीन अंगविज्जा नामक जैन ग्रन्थ में देवी-देवताओं की दो सूचियाँ प्राप्त होती है जिनमें यक्षी आदि का उल्लेख किया गया है।[5] इसकी प्रथम सूची में अन्य देवों के साथ वैश्रवण (कुबेर) का भी उल्लेख प्राप्त होता है।

पौराणिक धर्म ग्रन्थों में यक्षों का उल्लेख बौद्ध एवं जैन साहित्य से भी प्राचीन है। यक्षाधिपति कुबेर का वर्णन ब्राह्मण साहित्य में अनेक स्थलों पर प्राप्त होता है। जैन-ग्रन्थों में कुबेर के अनेक अनुचरों का भी उल्लेख है- यथा-पूर्णभद्र, मणिभद्र, सीतलभद्र, सुमनभद्र, लक्षरक्ष, पूर्णरक्ष तथा सर्वकाम आदि। सीमा-प्रान्त के अनेक क्षेत्रों से मणिभद्र की प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं जो उनकी लोकप्रियता तथा प्राचीनता की

---

1 तिवारी, मारुति नन्दन प्रसाद, खुजराहो का जैन पुरातत्व, पृष्ठ- 36-37

2 तत्रैव, पृष्ठ- 37, इन देवताओं की मूर्तियों के प्रतिमालक्षण का विकास छठीं से दसवीं शती ई० के मध्य में हुआ।

3 स्टीवेन्सन, सिंकलेयर, दी हार्ट ऑफ जैनिज्म, पृष्ठ-268-269

4 शास्त्रसार समुच्चय, टीकासार-देवभूषण जी महाराज, पृष्ठ-110

5 अंगविज्जा, अध्याय-58, पृष्ठ-223-24 । यह पुस्तक महाराष्ट्री प्राकृत-भाषा में लिखी गयी है।

ज्वलन्त प्रमाण हैं। उल्लेखनीय है कि मणिभद्र का एक अभिधान यक्षेन्द्र अथवा यक्षपति है जो कुबेर के समानान्तर लाकर उन्हें उपस्थित कर देता है। ऐसा प्रतीत होता है कि यक्षाधिपति कुबेर से उनकी लोकप्रियता थोड़ी ही कम रही होगी।

जैन-धर्म के अभ्युदय तथा विकास के साथ-साथ जनमानस में लोकदेवों को भी मान्यता प्राप्त हुयी। अनेक प्रचलित लोक-देवता जैनियों के द्वारा भी पूजे जाने लगे, जिनमें यक्ष तथा वैश्रवण कुबेर प्रमुख थे। दिशाओं के रक्षक दिक्पालों अथवा लोकपालों को प्राचीन भारतीय साहित्य में मान्यता प्राप्त हो चुकी थी। यद्यपि बौद्ध तथा जैन साहित्य भी इनके विषय में अनभिज्ञ न थे फिर भी ब्राह्मण ग्रन्थों में ही उनका प्राचीनतम उल्लेख उपलब्ध होता है। बौद्ध एवं जैन परम्परा में दिक्पालों का उद्भव ब्राह्मण धर्म सम्बन्धी अवधारणा है। बौद्ध-धर्म के चत्तारोमहाराजों की ही भाँति जैन धर्म में भी अष्ट दिक्पालों की कल्पना प्रस्तुत की गयी। आठवीं तथा नौवीं शती ई० के आस-पास दिक्पालों को जैन धर्म एवं कला में मान्यता प्राप्त हो चुकी थी। वैश्रवण इतिहास की किस अवधि में कुबेर का पर्याय बन गया? कुबेर की राजधानी के रूप में अलकापुरी का वर्णन शनैः-शनैः सम्पूर्ण भारत में कुबेर की उपासना तथा उनके सहायक यक्षों की परम्परा एवं कुबेर के अनुचर के रूप में जखैया, डाकिनी इत्यादि का सम्बन्ध अनेक सांस्कृतिक उपादानों के आदान-प्रदान को द्योतित करता है।

बौद्ध-वाङ्मय में हारीति का प्रचुर विवरण प्राप्त होता है। जातु हारिणी से शिशु संरक्षिका तथा उनका कुबेर के साथ सम्बन्ध विशेष विचारणीय है। कुबेर का जम्भल के रूप में रूपायन न केवल भारत अपितु सम्पूर्ण दक्षिण-पूर्व एशिया में विशेष प्रतिष्ठित था। जम्भल की उपासना से सम्बन्धित कर्मकाण्डों में बीज मन्त्रों की व्याख्या भी विशेष अपेक्षा रखती है।

बौद्ध-प्रतिमा-विज्ञान कुबेर के व्यक्तित्व की व्याख्या के लिए अत्यधिक सहायक सिद्ध हो सकता है। पौराणिक परम्परा के अतिरिक्त बौद्ध प्रतिमाओं में कुबेर के 'अक्षोभ्य' तथा 'रत्नसंभव' दो रूप प्राप्त होते हैं। इनके लक्षणों में पौराणिक प्रभाव के साथ-साथ आदिम तत्वों का भी समावेश विचारणीय है। नेवला आदिम विश्वास के कारण ही कुबेर के साथ सम्बद्ध किया गया प्रतीत होता है।

जैन परम्परा में कुबेर का सर्वाह्न अथवा सर्वानुभूति नामक यक्ष के रूप में मान्यता प्रदान की गयी है तथा इन्हें बाइसवें तीर्थङ्कर नेमिनाथ के यक्ष के रूप में सम्बन्धित किया गया है। लगभग छठी शताब्दी ई० से जैन कला में सर्वानुभूति की मूर्तियाँ बनना प्रारम्भ हुई। यह उल्लेखनीय है कि जैन-परम्परा में गजारूढ़ तथा धन के थैले से युक्त कुबेर को चित्रित किया गया है। कुछ स्थलों पर उनके हाथ में पाश तथा अंकुश का भी विवरण मिलता है।

जैन-साहित्य में दिक्पालों की जो सूची प्राप्त होती है, वह ब्राह्मण ग्रन्थों में दिये गये नाम से प्रायः मेल खाती है। इन ग्रन्थों में जो विवरण प्राप्त होता है, उसमें इन्द्र-पूर्व, अग्नि-दक्षिण, पूर्व, यम-दक्षिण, निऋति-दक्षिण-पश्चिम, वरूण-पश्चिम, वायु-उत्तर-पश्चिम, कुबेर-उत्तर, ईशान्-उत्तर-पूर्व, ब्रह्मा-उर्ध्व, नाग को अधो-दिशा के दिक्पाल के रूप में उल्लिखित किया गया है। [1] उल्लेखनीय है कि इस सूची में ब्रह्मा तथा नाग के नाम अतिरिक्त रूप से जोड़े गये हैं जो श्वेताम्बर जैनों की परम्परा से प्रभावित प्रतीत होता है। दिगम्बर जैन इन दोनों देवताओ को मान्यता प्रदान नहीं करते। [2]

यद्यपि ब्राह्मण-धर्म में सामान्यतः अष्ट-दिक्पालों की परम्परा रही है तथापि जैन-ग्रन्थ सर्वत्र दस दिक्पालों का उल्लेख करते हैं। जैन ग्रन्थ निर्वाणकलिका, मन्त्राधिराजकल्प (१२वीं-१३वी शती ई०) आचारदिनकर, प्रतिष्ठासारसंग्रह, प्रतिष्ठासारोद्धार तथा प्रतिष्ठातिलकम् में अन्य दिक्पालों के साथ कुबेर को भी उत्तर-दिशा का अधिपति स्वीकार किया गया है। [3]

दिक्पाल के रूप में कुबेर का उल्लेख जैन साहित्य में अन्यत्र भी प्राप्त होता है जहाँ उन्हें वैश्रवण के रूप में उल्लिखित किया गया है। चूँकि कुबेर उत्तर-दिशा के दि्क्पाल हैं इसलिए इस दिशा को 'कौबेरी-दिशा ' के रूप में भी जाना गया। आदिपुराण में दिक्पाल की विशेषताओं का उल्लेख किया गया है-जो दुर्ग रक्षक के

---

1 बनर्जी, जे०, एन०, डेवलपमेन्ट ऑव हिन्दू आइकोनोग्राफी, पृष्ठ-519

2 भट्टाचार्य, बी०सी०, जैन आइकोनोग्राफी, पृष्ठ-147-57

3 शाह, यू०पी०, सम माइनर जैन डीटीज-मातृकाज एण्ड दिकपालाज्, जर्नल, एम०एस० यूनिवर्सिटी ऑफ बडौदा, खण्ड-30, अङ्क-1, 1981, पृष्ठ-84-85

समान स्वर्ग लोक की रक्षा करते हैं, उन्हें लोकपाल कहते हैं । [1] इसी पुराण के वर्णन[2] में कहा गया है कि दिक्पाल जाति के देवता अपने-अपने परिवार (समूह) के साथ जिनेन्द्र भगवान् के उत्सव को देखने की इच्छा से दिशा-विदिशा में जाकर उचित स्थान पर बैठ गये। इनमें उत्तर-दिशा के दिक्पाल कुबेर भी थे। वीरवर्धमानचरितम् में भी दिक्पाल-समूह में विविध कथानकों के साथ कुबेर का उल्लेख मिलता है जो भगवान् के जन्म कल्याण की सम्पदा को देखने के सन्दर्भ में उल्लिखित हैं। [3]

इस प्रकार लोकपाल अथवा दिक्पाल समूह में कुबेर की पूजा-अर्चना वास्तु देवताओं के रूप में भी ग्रहण कर ली गई थी।[4] विविध तथ्यों पर समयक् विचार करने से इस धारणा की पुष्टि होती है कि जैन-देव-समूह में दिक्पालों की मान्यता के प्रारम्भ का काल लगभग आठवी, नौवीं शती ई० था। निर्वाणकलिका एवं प्रतिष्ठासारसंग्रह में इनकी लाक्षणिक विशेषताओं का निरूपण मिलता है। [5] नौवीं शती ई० के आस-पास इनका अंकन जैन-मन्दिरों (ओसिया का महावीर मन्दिर) पर देखा जा सकता है।

---

1 ''लोकपालास्तु लोकान्तपालका दुर्गपालवत्।
पदात्यादीन्यनीकानि दण्डकल्पानि सप्त वै।।''
द्रष्टव्य, तिवारी, मारूतिनन्दन प्रसाद, खुजराहो का जैन पुरातत्व, पृष्ठ-77;
आदिपुराण भाग-1, मूल आर्चाय जिनसेन, पृष्ठ-508, (सम्पादन अनुवाद) पं० पन्ना लाल जैन।

2 ''दिक्पालाश्च यथायोग्य दिग्विदिग्भागसंश्रिताः।
तिष्ठन्त स्म निकायैः स्वैर्जिनोत्सवदिदृक्षया।।''
आदि पुराण, भाग-1, पृष्ठ-291

3 ''दिकपालाः स्व-स्वदिग्भागं स्वैर्निकायो समं गुदा।
तिष्ठन्ति द्रष्टुकामास्तज्जन्मकल्याणसंपदः।।''
जैन, हीरालाल, (अनु०) वीरवर्धमानचरितम्, नवमों अधिकारः, पृष्ठ-83

4 भट्टाचार्य, वी०सी०, जैन आइकोनोग्राफी, पृष्ठ-148

5 तिवारी, मारुति नन्दन प्रसाद, जैन प्रतिमा विज्ञान,पृष्ठ- 42-43

साहित्यिक एवं पुरातात्विक साक्ष्यों के अनुशीलन के उपरान्त ये कहा जा सकता है कि यक्षों एवं दिक्पालों की वैदिक कालीन परम्परा, जो अभी तक ब्राह्मण–धर्मानुयायियों के मध्य ही प्रवाहित हो रही थी, उसे बौद्ध एवं जैन–धर्म में भी अपेक्षित स्थान प्राप्त हुआ। बौद्ध एवं जैन–धर्म के प्रचार–प्रसार के बाद भी लौकिक धरातल पर इन देवों की लोकप्रियता अक्षुण्ण बनी रही। कालक्रम के आधार पर उनके प्रतिमालक्षण में भले ही परिवर्तन हुआ हो, किन्तु उनकी मूलात्मा वही थी।

वस्तुतः बौद्ध एवं जैन दोनों परम्पराओं में कुबेर के सामान्य स्वरूप की अपेक्षा ग्यारहवीं तथा बारहवी शताब्दी में चर्तुभुजी तथा अष्टभुजी रूप में चित्रित करने की परम्परा तत्कालीन तांत्रिक साधना के परिणामस्वरूप भौतिक सुख–समृद्धि प्राप्त करने की लालसा के कारण विकसित हुई क्योंकि परम्परा से उन्हें धनद ही माना जाता था।

चतुर्थ अध्याय

महाकाव्यों और पुराणों में कुबेर

महाकाव्यों और पुराणों में कुबेर

ब्राह्मण ग्रन्थों में कुबेर-विषयक प्रचुर सामग्री उपलब्ध होती है। महाकाव्य तथा पुराण भी इसके अपवाद नहीं हैं। महाकाव्यों तथा पुराणों में कुबेर विषयक सूचनाएँ बौद्ध एवं जैन साहित्य से कहीं अधिक प्राप्त होती हैं। यक्ष पुलस्त्य ऋषि की सन्तानें तथा विश्रवा के पुत्र कुबेर को यक्षाधिपति के पद पर अभिषिक्त किया गया था।[1] वनपर्व में कुबेर के अनुचर के रूप में यक्षों की अनेकशः विशेषताएँ प्राप्त होती हैं। वनपर्व में ही यक्षिणी तीर्थ का उल्लेख आया है जिसमें स्नान करने से मनुष्य की सम्पूर्ण मनोकामना पूर्ण होती है। [2] इसे कुरु-क्षेत्र के विख्यात द्वार की संज्ञा दी गयी है।

यक्षाधिपति कुबेर का निवास स्थान हिमालय के मध्य भाग में स्थित कैलास पर्वत है, जहाँ वह गुह्यकों के साथ निवास करते हैं तथा तुम्बुरु आदि गन्धर्व उनकी सेवा करते हैं।[3] वहाँ नर वाहन कुबेर अप्सराओं से घिरा हुआ अत्यन्त वैभव का सुख प्राप्त करता है। पर्वत का वह शिखर देवताओं, दानवों, सिद्धों तथा कुबेर की क्रीड़ा-स्थली है। इनका निवास स्थान सुवर्ण तथा स्फटिक मणि के भवनों से सुशोभित होता है जिसके चारों ओर सुवर्ण की चाहर-दीवरी बनी ह ुयी है तथा इसके चतुर्दिक सुन्दर उपवन विद्यमान हैं।

---

1 महाभारत, वनपर्व, 111.10-11

2 ''तत्रैव च महाराज यक्षिणी लोकविश्रुताम्।
स्नात्वाभिगम्य राजेन्द्र सर्वान् कामानवाप्नुयात्।।''
तत्रैव, वनपर्व, 83.23

3 ''मध्ये हिमवतः पृष्ठे कैलासो नाम पर्वतः।
तस्मिनन्निवसति श्रीमान् कुबेर सह गुह्यकैः।।''
महाभारत, वनपर्व, 159.29; मत्स्य पुराण, 120, 2-3

धन के देवता कुबेर को यक्षों का अधिपति स्वीकार किया गया है। वैदिक ग्रन्थों में उनके लिए यक्षराज, यक्षेन्द्र, यक्षेश, धनपति, धनद, निधिपति, वैश्रवण, गुह्यकपति तथा जम्भल इत्यादि विशेषताओं का प्रयोग किया गया है। [1] रामायण में कुबेर को ब्रह्मा के मानसपुत्र और पुलस्त्य का पुत्र कहा गया है। [2] जबकि महाभारत में कुबेर को विश्रवा तथा इडविडा का पुत्र तथा पुलस्त्य का पौत्र कहा गया है। [3] वराह पुराण में उल्लेख मिलता है कि जिस समय ब्रह्मा ने सृष्टि रचना का कार्य प्रारम्भ किया उस समय उनके मुख से प्रस्तरों की वर्षा होने लगी। वातावरण के शान्त हो जाने पर उन प्रस्तर खण्डों में से एक अलौकिक पुरु ष की रचना हुई जिसे ब्रह्मा ने धन का संरक्षक नियुक्त किया।[4] कुबेर का अर्थ – 'कुत्सितं बेरं शरीरं यस्य सः कुबेरः' अर्थात् 'कुत्सित' तथा ग्रन्थों में इनके तीन पैर का उल्लेख मिलता है। [5]

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में कुबेर की प्रतिमा को प्रासाद में स्थापित करने का उल्लेख प्राप्त होता है। [6] पतञ्जलि के महाभाष्य में भी कई स्थानों पर कुबेर का वर्णन आया है। [7] विष्णु-पुराण में कुबेर को नृपति कहा गया है, जबकि अन्य पुराणों में वे यक्षराज हैं । [8] कालिदास ने राजाओं के राजा के रूप में कुबेर का उल्लेख किया है।[9]

---

1 अवस्थी, रामाश्रय, खजुराहो की देव प्रतिमाएँ, पृष्ठ–230-31

2 राव, टी० गोपीनाथ, एलीमेन्ट्स आव हिन्दू आइकोनोग्राफी, खन्ड– 2, भाग–2, पृष्ठ–533-35

3 महाभारत, 5.139.14

4 राव, टी० गोपीनाथ, ई०एच०आई०, खण्ड–2, भाग–2, पृष्ठ–533-34

5 कनिंघम, द स्तूप आव भरहुत, पृष्ठ–21

6 अर्थशास्त्र, पृष्ठ–54; आई०एम०एच०बी०डी०, पृष्ठ–59

7 कीलहार्न, पू०नि०, खण्ड 1, पृष्ठ–426;आई०एम०एच०बी०डी०, पृष्ठ–59

8 विष्णु पुराण , पृष्ठ–153

9 ''तस्य स्थित्वा कथमपि पुरः कौतुकाधानहेतो
रन्तर्बाष्पश्चिरमनुचरा राजराजस्य दध्यौ।
मेघा लोके भवति सुखिनोऽप्य न्यथावृत्ति चेतः
कण्ठाश्लेष प्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे।।''
कालिदास, मेघदूत, पूर्वमेघ श्लोक–3

यक्षराज को शिव का भाई तथा कैलास-पर्वत को कुबेरशाला, कुबेराद्रि या कुबेर पर्वत भी कहा गया है।[1] अलकापुरी का उल्लेख उनकी राजधानी के रूप में हुआ है। वायुपुराण में पिशाचक पर्वत पर स्थिति 'कुबेर भवन' का उल्लेख मिलता है।[2]

कुबेर यक्षों के अधिपति देवता के रूप में पूजे जाते हैं। धनाध्यक्ष कुबेर का वाहन विश्वकर्मा द्वारा निर्मित पुष्पक विमान है जो अद्‌भुत निर्माण कौशल की पराकाष्ठा है।[3] विष्णुपुराण में यह उल्लेख प्राप्त होता है कि ब्रह्मा के तेज से विश्वकर्मा ने भगवान् विष्णु का चक्र, शिव जी का त्रिशूल तथा कार्तिकेय की शक्ति का निर्माण किया। कुबेर का पुष्पक विमान भी उसी तेज का परिणाम था।[4] महाभारत के अनुसार ब्रह्मा ने वैश्रवण को धनाधिपत्व, अमृतत्व तथा लोकपालत्व इन तीन वरदानों को प्रदान किया था।[5] कुबेर के अमरत्व का कारण वह अमृत था, जो उनके घर में सुरक्षित था। महाभारत के अनुसार यह एक प्रकार का पीला मधु है जिसे मक्खियाँ नहीं बनाती थीं। वह घड़े में बन्द रहता है तथा सर्प उसकी रक्षा करते हैं। कुबेर को वह अत्यन्त प्रिय है तथा उसका पान करने से मर्त्य-पुरुष अमर हो जाता है।[6] वृद्ध व्यक्ति युवावस्था को प्राप्त हो जात है तथा अन्धे को नेत्र प्राप्त हो जाते हैं। उस मधु-कोष की स्थिति गन्धमादन-पर्वत पर बताई गई है।[7]

---

1 महाभारत, 3.159.126

2 वायुपुराण, 39.57

3 महाभारत, वनपर्व, 161.37

4 "त्वष्टैव तेजसा तेन विष्णोश्चक्रमत्तल्पयत्।
त्रिशूलं चैव सर्वस्य शिविका धनदस्य च।।"
विष्णु पुराण, 3.2.11

5 महाभारत, वनपर्व, 258.15

6 "आशीविषैः रक्ष्यमाणं कुबेरदयितं भृशाम्।
यत् प्राप्य पुरुषो मृत्यो अमरत्वं निगच्छति।।"
तत्रैव, उद्योगपर्व, 62.24

7 तत्रैव, 5.64.19

कुबेर के प्रसिद्ध और प्रिय अन्तर्धान नामक अस्त्र का उल्लेख भी महाभारत में हुआ है, यह अस्त्र ओज, तेज तथा कान्ति प्रदान करने वाला, शत्रु सेना का विनाशक और समस्त वैरियों का नाश करने वाला है।[1] वनपर्व के यक्ष-युद्ध पर्व में यक्षों के विविध आयुधों का विवरण उपलब्ध होता है,[2] इनमें से गदा, परिध, शंख, शूल, शक्ति तथा परशु आदि अस्त्र-शस्त्र यक्षों के हाथों की शोभा बढ़ाते थे। इसमें विशेष रूप से गदा को यक्षाधिपति कुबेर के हाथों में भी देखा जा सकता है। राजराज कुबेर स्वयं लंका में भी रहते थे तथा वह मनुष्यों द्वारा ढोई जानेवाली सवारी, पालकी पर बैठकर चलते थे। सम्भवतः इसीलिए उनका एक प्रमुख अभिधान कालान्तर में 'नरवाहन' के रूप में भी प्रचलित हुआ।[3]

कुबेर के पूर्वजों का उल्लेख रामायण में विस्तृत रूप से प्राप्त होता है। सत्-युग में प्रजापति ब्रह्मा जी को एक पुत्र-रत्न प्राप्त हुआ जो ब्रह्मर्षि पुलस्त्य के नाम से विख्यात हुआ। तृणबिन्दु की कन्या से पुलस्त्य ने अपने समान ही एक पुत्र उत्पन्न किया यह पौलस्त्य नाम से प्रसिद्ध हुआ। जिस समय महर्षि पुलस्त्य वेद का स्वाध्याय कर रहे थे, उस समय बालक की माता ने उसका श्रवण किया था, इसलिए यह बालक आगे चलकर विश्रवा अथवा विश्रवण के नाम से प्रसिद्ध हुआ। विश्रवण एक अधिकारिक विद्वान्, समदर्शी,व्रत एवं आचार का पालन करने वाले थे। विश्रवा ने भारद्वाज की कन्या से विवाह किया था। कुछ समय पश्चात् उन्हें एक पुत्र पैदा हुआ।

---

1 ''तदिदं प्रतिगृहीष्व अन्तर्धानं प्रियं मम्।
ओजस्तेजोद्युतिकरं प्रस्वापन मरातिनुत्।।''

महाभारत, वनपर्व, 41.38

2 ''गदापरिध निस्त्रिशंशालशक्ति परश्चवाः।
प्रगृहीता व्यरोचन्त यक्षराक्षसवाहुभिः।।''

तत्रैव, यक्ष-युद्धपर्व, 160.48

3 ''स राजराजो लंकायां न्यवसन्नरवाहनः।
राक्षसीः प्रददौ तिस्र पितुर्वै परिचारिकाः।।''

तत्रैव, रामाख्यान पर्व, 275.3

यही पुत्र वैश्रवण के नाम से विख्यात हुआ।[1] इनकी तपस्या से प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने इन्हें अक्षय-निधियों का स्वामी बना दिया था। विश्वकर्मा ने मूलरूप से जिस लंका का निर्माण राक्षसों के लिए किया था, वही कुबेर का निवास स्थान था।[2] लंका त्रिकूट-पर्वत पर स्थित थी जो धन-सम्पदा से परिपूर्ण थी। ब्रह्मा द्वारा प्राप्त तथा विश्वकर्मा निर्मित कुबेर का पुष्पक विमान अनुपम कला कौशल का प्रतीक था। विमान में सभी स्थानों पर रत्न जटित थे। वह स्वामी के मन का अनुसरण करते हुए दुर्लभ तथा वायु के समान वेग वाला था। तपस्या के पश्चात् रावण कुबेर को परास्त करके पुष्पक विमान को अपने अधिकार में कर लिया था। रावण के द्वारा लंका को जीतकर अपने अधिकार में कर लेने के उपरान्त कुबेर ने कैलास पर्वत की शरण ली थी। उस पर्वत पर देवता, गन्धर्व, अप्सरा, नाग तथा किन्नर आदि दिव्य प्राणी निरन्तर विचरण करते हुए आनन्द का अनुभव करते हैं। धनाधिपति कुबेर ने पिता की आज्ञानुसार कैलास-पर्वत पर शोभाशाली श्रेष्ठ भवनों से सुशोभित अलकापुरी बसायी।[3] रामायण में गदा, मुसल, प्रास, शक्ति, तोमर तथा मुग्दर को यक्षों का आयुध बताया गया है

---

1 ''यस्माद् विश्रवसोऽपत्यं सादृश्याद् विश्रवा इव।
तस्माद् वैश्रवणो नाम भविष्यत्येष विश्रुतः।।''
रामायण, उत्तरकाण्ड, 3.8

2 ''लंका नाम पुरी रम्या निर्मिता विश्वकर्मणा।
राक्षसानां निवासार्थ यक्षेन्द्रस्यामरावती।।''
तत्रैव, उत्तरकाण्ड, 3.27

3 ''धनेश्वररस्त्वथ पितृवाक्यगौरवा
न्नयेवेशयच्छशिविमले गिरौ पुरीम्।
स्वलंकृतैर्भवनबरै र्विभूषितां
पुरन्दरः स्वरिव यक्षामरावतीम्।।''
तत्रैव, उत्तरकाण्ड 11.52

तथा कुबेर को गदाधर कहा गया है। उनके साथ प्रचलित शंख एवं पद्म नामक धन के अधिष्ठाता देवता का उल्लेख किया गया है।[1]

महाभारत में भी कुबेर की उत्पत्ति से सम्बन्धित विविध कथानक प्राप्त होते हैं। यहाँ इन्हें पुलस्त्य का पुत्र बताया गया है।[2] वैश्रवण अपने पिता को छोड़कर पितामह ब्रह्मा की सेवा में रहने लगे, इससे इन पर क्रुद्ध होकर इनके पिता पुलस्त्य ने अपने आधे शरीर से एक अन्य द्विज, विश्रवा को प्रकट किया। विश्रवा वैश्रवण से प्रतिशोध लेने के लिए इन पर कुपित रहता था, किन्तु ब्रह्मा वैश्रवण पर प्रसन्न थे, अतः उन्होंने उन्हें अमरत्व प्रदान करते हुए धन का स्वामी तथा लोकपाल बना दिया। ब्रह्मा ने ही कुबेर की शिव से मित्रता कराई तथा राक्षसों से परिपूर्ण लंका नगरी को इनकी राजधानी बनाया।[3] यह बात विशेष उल्लेखनीय है कि रामायण में कुबेर को विश्रवा का पुत्र कहा गया है, जबकि महाभारत इन्हें पुलस्त्य का पुत्र बताता है। भागवत पुराण तथा विष्णु पुराण कुबेर का उल्लेख धनाध्यक्ष के रूप में करते हुए, इन्हें एक देवता के रूप में स्वीकार करते हैं। इन्हें इन्द्र के नौ निधियों का संरक्षक तथा शंकर जी का मित्र कहा गया है।[4] वायु पुराण के अनुसार ये शिव के भाई थे। यह इडविडा के गर्भ से उत्पन्न विश्रवा ऋषि के पुत्र तथा लंकापति रावण के सौतले भाई थे। रावण के द्वारा लंका से निकाल देने पर क्षुब्ध हृद य कुबेर ने तपोबल से देवत्व की प्राप्ति की थी।[5] भागवत-पुराण का यह कथन कि -'कुबेर को संसार के सम्पूर्ण धन का अध्यक्ष कहा जाता है तथा आदि राजा पृथु के र ाज्याभिषेक के समय कुबेर ने उन्हें एक

---

1 ''ततो दूरात् प्रददृशे धनाध्यक्षा गदाधरः।
शुक्रप्रौष्ठपदाभ्यां च पद्मशंख समावृतः।।''
तत्रैव, उत्तरकाण्ड, 15.16

2 महाभारत, 3.274.12

3 तत्रैव, 3.274,12-17

4 भगवत पुराण, 9.2.32-33; विष्णुपुराण, 3.2.11

5 वायु पुराण, 40.8; 47.1; 70.38;97.2

स्वर्णजटित सिंहासन दिया था, विशेष उल्लेखनीय है।[1] इस तथ्य से यह प्रमाणित होता है कि प्राचीन काल में राज्याभिषेक के समय राजा को दिक्पालों द्वारा भेंट इत्यादि देने की परम्परा प्रचलित थी उल्लेखनीय है कि महाकाव्यों में कुबेर को जहाँ शिव का मित्र बताया गया है, वहीं पुराण उन्हें शिव के भाई के रूप में स्वीकार करते हैं। भागवत पुराण के अनुसार विश्रवा मुनि की पत्नी इडविडा से यक्षराज कुबेर का जन्म हुआ तथा उनकी द्वितीय पत्नी केशिनी ने रावण, कुम्भकर्ण तथा विभीषण को उत्पन्न किया। [2] इस प्रकार वायुपुराण का यह कथन प्रमाणित हो जाता है कि कुबेर रावण के सौतेले भाई थे।

ब्रह्मा ने कुबेर को लोकपाल आदि का वरदान दिया था। महाभारत तथा पुराणों में अनेकशः शिव और कुबेर की मैत्री का उल्लेख मिलता है। [3] डॉ० यदुवंशी ने (छठीं शताब्दी-उत्तरार्द्ध) एक पत्थर की चौकी का उल्लेख किया है। [4] चौकी पर एक लेख प्राप्त होता है जिसमें कुबेर को शिव का सखा बताया गया है तथा पार्वती की ओर देखने पर कुबेर की आँख खराब हो जाने की पौराणिक कथा की ओर भी संकेत किया गया है।

महाभारत में कुबेर के अनेक पर्याय प्राप्त होते हैं जो उनकी महत्ता को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त हैं। उन्हें अलकापुरी का स्वामी होने के कारण अलकाधिप, हाथ में गदा को धारण करने के कारण गदाधर,[5] गुह्यकों का अधिपति होने के कारण

---

1 ''तस्मै जहार धनदो हैमं वीरवरासनम्।
वरुणः सलिलस्त्रावमातपत्रंशशिप्रभम्।।''

भागवत पुराण, 4.15,14

2 ''तस्य यक्षपतिर्देवः कुबेर स्त्विड विडासुतः।
रावण कुम्भकर्णश्च तथान्यस्या विभीषणः।।

तत्रैव, 4.1.37

3 ''धनदस्ते सखा नाग यथा शर्वस्य नित्यदा।''

नीलमत पुराण,5,356

4 यदुवंशी, शैवमत, पृष्ठ 176

5 महाभारत, 6.50,7

गुह्यकाधिप, धन के कोष का संरक्षक होने के कारण द्रविणाधिपति [1], धनद,[2] धनदेश्वर,[3] गुप्त धन की रक्षा करने के कारण धनाधिगोप्तृ,[4] धनाधिप,[5] धनाधिपति,[6] धनाध्यक्ष,[7] धनानां ईश्वर,[8] सम्पत्ति का स्वामी होने के कारण धनपति,[9] धनेश,[10] धनेश्वर,[11] पुरुष सवारी होने के कारण नरवाहन,[12] निधियों को धारण करने के कारण निधिप,[13] पुलस्त्य का पुत्र होने के कारण पौलस्त्य, यक्षपति, यक्षप्रवर, यक्षरक्षोधिप, यक्ष-राक्षसभर्तृ, यक्षराज, यक्षराजन्, यक्षाधिप, यक्षाधिपति, गुप्तधन की रक्षा करने के कारण वित्तगोप्तृ,[14] वित्तपति,[15] वित्तानां पति,[16] वित्तेश[17] तथा विश्रवा के पुत्र होने

---

1 तत्रैव, 3.160,41

2 'उत्तरां तस्माद्दिशं धनदपालिताम्।'

तत्रैव, 2.10,13.15.21,33;11,51,25;4;27,2

3 तत्रैव, 2.10,29

4 तत्रैव, 5.192,34

5 तत्रैव, 3.161,27

6 तत्रैव, 3.161.30;162.35,36;9.47,30

7 तत्रैव, 1.179,18;207.38;3.41.33

8 तत्रैव, 2.10.28-33;3.41.8

9 तत्रैव 1.216.16;2.10.38;12.3;25,9;5.114.3

10 तत्रैव, 3.231,32;274,15;7.72,46;18.5,14

11 तत्रैव, 1.187,6;227,32;27.38.39,3.19,21

12 तत्रैव, 3.89,5;159,26;161,42;168,13;5.192,33

13 तत्रैव, 12.207,35

14 तत्रैव, 8.90,35

15 तत्रैव, 7.185,25

16 तत्रैव, 8.34,32

17 तत्रैव, 6.34,23;14.10,34

के कारण वैश्रवण [1] इत्यादि उपाधियों से विभूषित किया गया है। यद्यपि पुराणों में भी इनकी उपाधियों के साथ इन्हें अष्टनिधियों का अधिपति स्वीकार किया गया है। [2] जहाँ ब्रह्माण्ड पुराण में कुबेर को धनाधिप [3] कहा गया है, वहीं वायुपुराण यक्षों के राजा कुबेर का उल्लेख धनाध्यक्ष के रूप में करता है।[4]

अमरकोश में कुबेर को एकपिंग, एलविल कहा गया है। किन्नरेश, त्रयम्बक-सखा, पुण्यजनेश्वर, मनुष्यधर्मन, यक्षराट्, गुह्यकेश्वर, धनद, राजराज, धनाधिप, वैश्रवण, पौलस्त्य तथा नरवाहन इत्यादि अभिधान भी अमरकोश में कुबेर के लिए प्रयुक्त हुए हैं। [5] यहाँ पर यह उल्लेख करना समीचीन होगा कि कुबेर को अमरकोश में महाराज न कहकर 'महाराजिक' के नाम से सम्बोधित किया गया है। हेमाद्रि ने कुन्दति, नन्दन, सिद्धार्थ, सुमन, शंख तथा पद्म का नामोल्लेख किया है, तथा कालिदास ने भी मेघदूत में यक्षों को राजा (राजराज) कहा है। मध्यकालीन ग्रन्थों की यक्ष-यक्षी सूची में पूर्व-वर्णित नामों के अतिरिक्त अन्य अभिधान भी आये हैं। इनमें अन्य नामों के अतिरिक्त कुबेर,[6] नलकूबर,[7] तथा मणिभद्र [8] का भी उल्लेख प्राप्त होता है। ज्योतिर्लेखा तथा धूमलेखा का उल्लेख कथा सरित्सागर में द्रष्टब्य है। [9]

---

1 तत्रैव, 1.1,166;2,183;2.10,2;3.12,22;

2 वायुपुराण, 41.10,11

3 ब्रह्माण्ड पुराण, 3.24,4

4 वायु पुराण, 41.4

5 अमरकोश, 1.1.38-39

6 वृहत्कथामञ्जरी, अ, 8.9

7 कथासरित्सागर, 6.102

8 तत्रैव, 9:29

9 तत्रैव, 6.131

महाभारत में कुबेर का उल्लेख धन के अधिपति, उत्तर दिशा का दिक्पाल, गुह्यकों , राक्षसों, यक्षों के राजा तथा ऋद्धि के पति के रूप में प्राप्त होता है। [1] कुबेर के उद्यान का वर्णन भी अत्यन्त मनोहारी रूप में किया गया है जिसमें कुबरे अपने गणों तथा प्रिय सखा के साथ विचरण किया करते हैं।[2] महाभारत का यह विवरण विशेष महत्व रखता है कि अर्जुन-कृष्ण के विरुद्ध देवों के साथ युद्ध करते हुए कुबेर ने अपनी गदा से कृष्ण के ऊपर प्रहार किया था।[3] अर्जुन दिव्यास्त्र प्राप्त करने के लिए भेजे गये थे, ऐसा उल्लेख महाभारत में प्राप्त होता है। [4] अन्य स्थान पर यह भी वर्णन मिलता है कि कुबेर अपने अनुचरों तथा यक्षों के साथ अर्जुन के पास आये [5] तथा दिव्यास्त्र प्रदान करने के बाद उन्होंने अर्जुन को आशीर्वाद दिया। [6] चैत्ररथ वन में भी कुबेर के उपस्थित होने का संकेत प्राप्त होता है। [7] महाभारत का यह विवरण कि धनपति कुबेर यज्ञ में पुरुषों द्वारा ढोई गयी पालकी में बैठकर यहाँ आये, [8] उनके नरवाहन उपाधि की पुष्टि के लिए पर्याप्त है। यहाँ अर्जुन ने इनसे दिव्यास्त्र प्राप्त किया।[9] इनका निवास स्थान मन्दराचल पर्वत बताया गया है।[10] महाभारत में कुबेर सरोवर का भी उल्लेख प्राप्त होता है, जो राक्षसों द्वारा सेवित था। [11] यह कुबेर के

---

1 महाभारत, 1.74,85

2 तत्रैव, 1.120,11

3 तत्रैव, 1.227,32

4 महाभारत, 3.36,32

5 तत्रैव, 3.41,8

6 तत्रैव, 3.41,33

7 तत्रैव, 3.80,6

8 'जज्ञे धनपतिर्यत्र कुबेरो नरवाहनः।'

तत्रैव, 3.89,5

9 तत्रैव, 3.91,13

10 तत्रैव, 3,139,5

11 'कुबेरनलिनीं रम्यां राक्षसैरभिसेविताम्।'

तत्रैव 3.141,24

भवन के समीप ही स्थित उनकी क्रीड़ा स्थली थी।[1] पाण्डवों ने भी कुछ समय तक इनकी अनुमति से इस सरोवर के समीप निवास किया था।[2] कुबेर ने ब्रह्मा की इच्छानुसार गन्धमादन पर्वत को उत्पन्न किया था।[3] इसी पर्वत पर इनकी भेंट युधिष्ठिर से हुई थी तथा युधिष्ठिर आदि को उपदेश एवं सान्त्वना देने के पश्चात् कुबरे ने अपने भवन की ओर प्रस्थान किया था। [4] कुबेर का निवास स्थान लंका नगरी थी, ऐसा महाभारत में उल्लेख प्राप्त होता है। [5] इनका सौतेला भाई रावण इनके ऐश्वर्य से अत्यन्त दुःखी था। उसने ब्रह्मा से वरदान प्राप्त कर लेने के बाद सर्वप्रथम कुबेर को परास्त करके कुबेर को लंका से बहिष्कृत कर दिया था तथा इनका पुष्पक विमान भी छीन लिया था। इसके पश्चात् इन्होंने गन्धमादन पर्वत को अपना निवास स्थान बनाया। [6] कुबेर ने रावण को शाप दिया [7] तथा विभीषण से सन्तुष्ट होकर इन्होनें उसे यक्ष तथा राक्षसों का सेनापति बना दिया। [8] इनकी आज्ञा से एक गुह्यक अभिमंत्रित जल लेकर श्वेत-पर्वत से श्रीराम के पास आया[9] तथा रावण का वध करने के पश्चात् श्रीराम ने उन्हें पुष्पक विमान लौटा दिया। [10] इन्द्र ने कुबेर को यक्षों के अधिपति के साथ-साथ पुनः इनके पद पर इन्हें प्रतिष्ठित किया।[11] महाभारत में यह उल्लेख प्राप्त

---

1 तत्रैव, 3.153,2.8;154,4.11

2 तत्रैव, 3.155,33

3 रामायण, 1.17,12

4 महाभारत, 3.162

5 तत्रैव, 3.275,3

6 तत्रैव, 2.275,33-34

7 तत्रैव, 3.275,35

8 तत्रैव, 3.275,37

9 तत्रैव, 3.289,10

10 तत्रैव, 3.91,69

11 तत्रैव, 5.16,31;5.16,33

होता है कि पाण्डवों ने कुबेर के भवन में जाकर विविध रत्न प्राप्त किया था,[1] उनके धन, सम्पत्ति के संरक्षक होने की अवधारणा को अभिव्यक्त करता है। इन्हें यक्षों का रक्षक भी कहा गया है। [2] महाभारत का यह उल्लेख कि कुबेर शुक्राचार्य से धन का चर्तुथ भाग प्राप्त करके उसका उपभोग करते हैं तथा उस धन का सोलहवाँ भाग मनुष्यों को प्रदान करते है, [3] विशेष महत्व रखता है। ऐसा प्रतीत होता है कि कुबेर राक्षस गुरु शुक्राचार्य से यक्ष तथा राक्षसों के अधिपति होने के कारण कर के रूप में धन को प्राप्त करते रहे होंगे तथा उसका कुछ अंश वे अपने अनुयायियों को भी प्रदान कर देते थे। महाभारत में कुबेर के वन में कमल से सुशोभित सरोवर का उल्लेख प्राप्त होता है। [4] महाभारत में ही यह भी उल्लेख प्राप्त होता है के कुबेर शल्य की सेना में एक पराक्रमी योद्धा के रूप में उपस्थित हुए थे। [5] इस प्रकार महाभारत में प्राप्त विविध आख्यान कुबेर के व्यक्तित्व के अनेकशः आयामों को अभिव्यञ्जित करते हैं। यहाँ पर उनके तपस्वी रूप, योद्धा, वरदान प्रदान करना , शाप देना जैसे स्वाभाव उनकी महत्ता को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त हैं।

महाभारत में कुबेर-तीर्थ का उल्लेख प्राप्त होता है।बलराम यात्रा के प्रसंग में ब्रह्मयोनि तीर्थ से कुबेर-तीर्थ में आये, जहाँ पूर्वकाल में तपस्या करके कुबेर ने धनाध्यक्ष जैसे अनेक वरदान प्राप्त किये थे। [6] इस तीर्थ में कुबेर ने रुद्र के साथ मित्रता, धन का स्वामित्व, देवत्व, लोकपालत्व तथा नलकूबर नामक पुत्र अनायास ही

---

1 तत्रैव, 5.139,15

2 तत्रैव, 5.156,12

3 तत्रैव, 6.6.23

4 'कुबेरस्य विहारे च नलिनीं पद्मभूषिताम्।'

तत्रैव, 7.80,27

5 तत्रैव, 8.92,13

6 ''कौवेरं प्रययौ तीर्थं तत्र तप्त्वा महत्तपः।
धनाधिपत्यं सम्प्राप्तौ राजन्नैलविलः प्रभुः।''

तत्रैव, 4.47,25

प्राप्त कर लिया था।[1] वहीं पर आकर देवताओं ने उनका अभिषेक किया तथा उनके लिए हंसों से जुता हुआ और मन के समान वेगशाली दिव्य-वाहन पुष्पक विमान दिया तथा साथ ही उन्हें यक्षो का राजा बना दिया।[2] हलधारी बलराम ने उस तीर्थ में जाकर स्नान करने के पश्चात् ब्राह्मणों को विधि पूर्वक धन का दान दिया था।[3] उसके पश्चात् एक उत्तम वन में कुबेर ने उस स्थान का दर्शन किया, जहाँ पूर्वकाल में महात्मा यक्षराज कुबेर ने बड़ी कठोर तपस्या कर अनेक वर प्राप्त किये थे।[4] भागवत पुराण में भी ब्रज के अन्तर्गत 'कुबेर-तीर्थ' को 'धनद-तीर्थ' कहा गया है। मत्स्य पुराण में महायक्ष तथा सत्यविक्रम कुबेर के द्वारा सिद्धि प्राप्त करने का विवरण प्राप्त होता है।[5] कुबेर ने कावेरी और नर्मदा के संगम में स्नान करके तथा

---

1 ''धनाधिपत्यं सख्यं च रुद्रेणामित तेजसा।
सुरत्वं लोकपालत्वं पुत्रं च नलकूबरम्।''
तत्रैव, 4.47,29

2 ''अभिषिक्तश्च तत्रैव समागम्य मरुद्गणैः।।
वाहनं चास्य तद् दत्तं हंसयुक्त मनोजवम्।
विमानं पुस्तकं दिव्यं नैर्ऋतैश्वर्यमेव च।।''
तत्रैव, 4.47,30-31

3 ''तत्रस्थमेव तं राजन धनानि निधयस्तथा।
गत्वा स्नात्वा च विधिवद् ब्राह्मणेभ्यो धनं ददौ।।''
तत्रैव 4.47,26-27

4 ''ददृशे तत्र तत् स्थानं कोबेरं काननोत्तमे।।
पुरा यत्र तपस्तप्तं विपुलं सुमहात्मना।
यक्ष राज्ञा कुबेरेण वरा लब्धाश्च पुष्कलाः।।''
तत्रैव, 4.47,27-28

5 ''अस्ति वीरो महायक्षः कुबेरः सत्यविक्रमः।
इदं तीर्थमनु प्राप्य राजा यक्षाधिपोऽभवत्।
सिद्धि प्राप्तो महाराज तन्मे निगदतः श्रुणुः।।''
मत्स्य पुराण, 188.4-5

पवित्र होकर सौ दिव्य वर्षो तक तपस्या की थी।[1] जिससे प्रसन्न होकर के महादेव जी ने उन्हें वर प्रदान किया था तथा जिसके परिणाम स्वरूप कुबेर यक्षों के अधिपति बने।[2] इस पुराण में कुबेर की तपस्या स्थली को 'कालेशरतीर्थ' कहा गया है।[3]

कुबेर को महाभारत में विविध सम्पत्तियों तथा राक्षसों का ईश्वर स्वीकार किया गया है।[4] इन्हें पापों को दूर करने वाला तथा यज्ञादि कार्यों में सम्पत्तियों को प्रदान करके सम्पूर्ण कामनाओं की पूर्ति करने वाला बताया गया है।[5] अष्टावक्र ऋषि के उत्तर दिशा की ओर जाते हुए कुबेर ने मार्ग में इनका सम्मान किया था, ऐसा उल्लेख महाभारत में प्राप्त होता है।[6] कुबेर को सभी रत्नों का राजा[7] तथा उनके भवन के रूप में कुबेर-भवन का उल्लेख महाभारत में उपलब्ध होता है।[8]

---

1 ''कावेरी नर्मदा यत्र संगमोलोक विश्रुतः।
तत्र स्नात्वा शूचिर्भूत्वा कुबेरः सत्यविक्रमः।।
तपोऽतप्यत यक्षेन्द्रो दिव्यं व र्षशतं महत्।
तस्य तुष्टो महादेवः प्रदातुं वरमुत्तमम्।।''

तत्रैव, 188,6-7

2 तत्रैव, 188.9-10

3 ''कुबेर भवनं गच्छेत् कुबेरो यत्र संस्थितः।
कालेशरं परं तीर्थं कुबेरो यत्र तोषितः।।''

तत्रैव, 190.84

4 'धनानां राक्षसानां च कुबेरमपि चेश्वरम्।'

महाभारत, 12.122,28

5 'इष्टेषु विसृजन्नर्थान् कुबेर इव कामदः।'

तत्रैव, 12.139,106

6 तत्रैव, 13.19,32-53

7 'कुबेरः सर्वरत्नानां राजा।'

तत्रैव, 14.43,11

8 तत्रैव, 15.20,33; 18.5,29

यह विश्रवा के पुत्र एवं रावण के भ्राता थे।[1] राम के वनवास के समय कौसल्या ने राम के रक्षार्थ इनका आह्वान किया था।[2] रामायण में कुबेर के द्वारा शाप देने की कथा वर्णित है। तुम्बुरु की रम्भा के प्रति अत्यधिक आसक्ति के कारण क्रोधित होकर कुबेर ने शाप देकर उसे राक्षस बना दिया था, जब इनका क्रोध शान्त हुआ तो इन्होने उसे राम के द्वारा मृत्यु प्राप्त कर लेने पर पुनः अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जायेगा, ऐसा वरदान दिया।[3] वाल्मीकि रामायण में अगस्त्य आश्रम में राम के द्वारा इनके मन्दिर के दर्शन का उल्लेख इस तथ्य को प्रमाणित करता है कि महाकाव्य काल में कुबेर के मन्दिर निर्माण की परम्परा प्रतिष्ठित थी।[4] रावण के द्वारा पराजित किये जाने पर इनके कैलास-पर्वत चले जाने का उल्लेख मिलता है,[5] जहाँ पर विश्वकर्मा ने इनके लिए सुन्दर भवन का निर्माण करवाया था।[6] इन्हें रामायण में वीर्य-सम्पन्न, परम-अद्भुत् एवं समस्त ब्रह्मणोचित गुणों से युक्त कहा गया है।[7] कुबेर ने दस हजार वर्षों तक ब्रह्मा की तपस्या की, फिर भी वे प्रकट नहीं हुए तब उन्होंने पञ्चाग्नि में जल में एक पैर खड़े होकर तपस्या करनी प्रारम्भ कर दी। तत्पश्चात् ब्रह्मा जी प्रसन्न होकर प्रकट हुए तथा उन्होंने कुबेर से इच्छित वर माँगने को कहा। कुबेर ने ब्रह्मा जी के इस आग्रह पर लोकपाल तथा धन संरक्षक होने का वर माँगा।[8] ब्रह्मा ने इन्हें 'पद्मनिधि' तथा 'शंखनिधि' का स्वामी बनाने के साथ पुष्पक विमान भी प्रदान किया। वह अष्ट दिक्पालों में एक दिक्पाल नियुक्त हुए।

---

1 रामायण, 10.2,17

2 तत्रैव, 2.25,23

3 तत्रैव, 3.4,16-19

4 रामायण, 3.12,18

5 तत्रैव, 3.48,4-5

6 तत्रैव, 4.43,21

7 तत्रैव, 7.3,1-6

8 तत्रैव, 7.3,13-15

कुबेर की नगरी को 'महोदय' कहा गया है।[1] कुबेर को सभी शस्त्रों के संचालन में सर्वश्रेष्ठ कहा गया है।[2] इन्हें बुद्धिमत्ता में भी सर्वश्रेष्ठ कहा गया है।[3] यक्षों के पराजित हो जाने के बाद कुबेर ने रावण के विरुद्ध युद्ध करने के लिए अन्य महाबली यक्षों को भेजा, जिनमें मणिभद्र तथा यक्ष प्रमुख था।[4] मणिभद्र के पराजित हो जाने पर कुबेर ने स्वयं गदा को हाथ में लेकर रावण का तब तक सामना किया, जब तक रावण की माया से अविभूत होकर वह बुरी तरह आहत नहीं हो गये तथा इन्हें उपचार हेतु नन्दन वन ले जाया गया, ऐसा उल्लेख रामायण में प्राप्त है।[5]

राजा मरुत के यज्ञ सत्र में कुबेर उपस्थित तो हुए, परन्तु रावण के भय से इन्होंने कृकलास (छिपकली) का रूप धारण कर रखा था।[6] रावण के वापस चले जाने पर कुबेर ने अपना स्वाभाविक रूप धारण करके कृकलासों को वरदान दिया।[7] ब्रह्मा के आग्रह पर कुबेर ने हनुमान को अपनी गदा से अबध्य होने का वरदान दिया।[8] नाट्यशास्त्र में यह उल्लेख प्राप्त होता है कि भरतमुनि को देवताओं द्वारा दिये गये उपकरणों में कुबेर ने मुकुट प्रदान किया था।[9]

---

1 मनि, वेट्टम, पौराणिक इन्साइक्लोपीडिया, पृष्ठ 435

2 'सर्वशस्त्रभृतांवरः।'

रामायण, 7.11,27

3 'वाक्यविदांवरः।'

तत्रैव, 7.11,30

4 तत्रैव, 7.14,20; 7.15,1-2

5 तत्रैव, 7.15,16-34

6 तत्रैव, 7.18,4-5

7 तत्रैव, 7.18,34

8 तत्रैव, 7.36,8-17

9 ''विष्णुः सिंहासनञ्चैव कुबेरो मुकुटं तथा।
श्राव्यत्वं प्रेक्षणीयस्य ददौ देवी सरस्वती।।''

नाट्यशास्त्र, 1.61

पुराणों के अनुसार कुबेर एक आँख, तीन पैर तथा आठ दाँत वाले देवता हैं। यह तथ्य विशेष उल्लेखनीय है कि देवता पद प्राप्त करने के बाद भी इनके पूजन की परम्परा प्रचलित नहीं थी। यह उत्तर-दिशा के स्वामी हैं तथा पुरुष उनका वाहन है। इनका अस्त्र खड्ग, गदा तथा शूल हैं।[1] ब्रह्माण्ड पुराणानुसार कुबेर ब्रह्मा के मानस-पुत्र पुलस्त्य ऋषि के पौत्र एवं विश्रवा के पुत्र है। इनका शरीर श्वेत, किन्तु विकृत है जो रत्नालङ्कारों से आच्छादित रहता है । इनकी माता देववर्णिनी देवाचार्य वृहस्पति की पुत्री थी तथा इनकी पत्नी का नाम ऋद्धि मिलता है। मणिग्रीव तथा नलकूबर इनके दो पुत्र हैं [2] तथा इनकी पुत्री का नाम 'मीनाक्षी' प्राप्त होता है (हि०वि०को०)। मत्स्य पुराण के अनुसार कुबेर बारह आदित्यों में से एक आदित्य है। [3] जब कि ब्रह्माण्ड पुराण इन्हें तृतीय गण के सात मरुतों में से एक मरुत के रूप में स्वीकार करता है।[4] इनके निवास स्थान को अलकापुरी के साथ-साथ वसुधारा या वसुस्थली के रूप में भी जाना जाता है, जिसे हिमालय पर्वत पर स्थित बताया गया है। मेरु पर्वत के गिरिखण्ड शिखर मन्दार पर चैत्ररथ नामक इनका उपवन है जिसके सेवक किन्नर हैं तथा इनके वित्तगोप्ता भण्डारी हैं। [5] नर्मदा तथा कावेरी के संगम पर तपस्या कर इन्होंने भगवान् शिव से यक्षादि का अधिपति होने का वरदान प्राप्त कर लिया था। [6] कुबेर स्वयं त्रिपुरारि के रथ के रक्षक के रूप में त्रिपुर में हुए देव-दानव युद्ध में भी सम्मिलित हुए थे। [7]

---

1 मत्स्य पुराण, 67.15;174.17-18; विष्णुपुराण, 5.36,12

2 ब्रह्माण्ड पुराण, 3.7.254-331; 8.38.45

3 मत्स्य पुराण, 171.56

4 ''वरूणं च कुबेरं च शशिनं भाष्करं तथा।
मरुद्गणं तथा रूद्रानादित्यानश्विनौ वसून ।।''
ब्रहमाण्ड पुराण, 3.7.254

5 तत्रैव, 2.18,1-2; 36.218; मत्स्य पुराण, 121,2-3; 137.32;
वायु पुराण, 69.196

6 मत्स्य पुराण, 189.4-11; 191.85

7 तत्रैव, 133.63; 138.25; 140.41

महाभारत में कुबेर की सभा का उल्लेख प्राप्त होता है। यह अत्यन्त श्वेत-प्रभा से युक्त सौ योजन लम्बी तथा सत्तर योजन चौड़ी बताई गयी है। [1] नगर के चतुर्दिक उत्तुंग प्राकार थे तथा कुबेर ने स्वयं कठोर तपस्या के द्वारा उस अद्वितीय सभा को प्राप्त किया था जो अपनी धवल कान्ति से चन्द्रमा की चाँदनी को भी तिरस्कृत कर देती थी तथा देखने में कैलास शिखर के समान थी।[2] गुह्यक गण जब इस सभा को उठाकर ले चलते थे तो वह आकाश को स्पर्श करती थी। यह दिव्य सभा ऊँचे सुवर्णमय भवनों से शोभायमान थी। [3] इस सभा का निर्माण बहुमूल्य रत्नों के द्वारा हुआ था तथा उसकी झाँकी बड़ी अदभुत् एवं दर्शनीय थी जिससे दिव्य सुगन्ध सदैव फैलती रहती थी और वह दर्शक के मन मस्तिष्क को अपनी ओर आकृ ष्ट कर लेती थी। श्वेत वर्ण मेघों की शिखर सी प्रतीत होने वाली वह सभा आकाश में तैरती सी प्रतीत होती थी। [4] उस सभा में जिसकी दीवारे विद्युत के समान उद्दीप्त होने वाले सुनहले रंगों से चित्रित थी, उसमें राजा वैश्रवण विभिन्न वस्त्राभूषणों से सुसज्जित

---

1 ''सभावैश्रवणी राजञ्छतयोजनमायता।
विस्तीर्णा सप्ततिश्चैव योजनानि सितप्रभा।।''
महाभारत सभापर्व, 10.1

2 ''तपसा निर्जिता राजन् स्वयं वैश्रवणेन सा।
शशिप्रभा प्रावरणा कैलास शिखरोपमा।।''
तत्रैव, सभापर्व, 10.2

3 ''गुह्य कैरुह्यमाना सा श्वे विषक्तेव शोभते।
दिव्या हेममयरुच्चैः प्रासादैरूपशोभिता।।''
तत्रैव, सभापर्व, 10.3

4 ''महारत्नवती चित्रा दिव्यगन्धा मनोरमा।
सिताभ्रशिखराकाराप्लवमानेव दृश्यते।।''
तत्रैव, सभापर्व, 10.4

होकर बैठते थे। [1] वहीं पर सूर्य के समान चमकीले तथा दिव्य बिछौने से आवृत्त एवं दिव्यपाठपीठों से सुशोभित श्रेष्ठ सिंहासन पर कानों में ज्योति से जगमगाते हुए कुण्डल और अंङ्गों में विचित्र वस्त्र तथा आभूषण धारण करने वाले राजा वैश्रवण (कुबेर) सहस्त्रों स्त्रियों द्वारा घिरे रहते हैं। [2] महाभारत के सभापर्व में यह उल्लेख कि याचक की प्रत्येक इच्छा को पूर्ण करने में अत्यन्त उदार मन्दार वृक्षों के वनों को आन्दोलित करता हुआ तथा नन्दनवन की सुगन्ध का भार वहन करता हुआ हृदय को आह्लादित करने वाला गन्धवाही शीतल समीर से कुबेर की सभा शोभायमान थी।[3] इस सन्दर्भ से ऐसा प्रतीत होता है कि वह सभा नन्दनवन के समीप ही स्थित थी तथा यक्ष-किन्नरों की सभी मनोकामनाओं को पूर्ण करने वाले मन्दार वृक्ष भी वहाँ थे। समृद्धि के देवता कुबेर उसके मुखिया थे। उस सभा में देवता तथा गन्धर्व अप्सराओं के साथ आकर दिव्य तानों से युक्त गीत को गाते थे तथा महाराज कुबेर की सेवा में उपस्थित रहते थे। [4] इनमें मिश्रकेशी, रम्भा, चित्रसेना, शुचिस्मिता, चारुनेत्रा, धृताची, मेनका, पुञ्जिकस्थला, विश्वाची, सहजन्या, प्रम्लोचा, उर्वशी, इरा, वर्गा, सौरभेयी, समीची, बुद्‌बुदा तथा लता इत्यादि नृत्य एवं गीत में पारंगत सहस्त्रों अप्सराओं एवं गन्धर्वों का

---

1 ''दिव्या हेममयैरङ्गैर्विद्युद्‌भिरिव विचित्रा।
तस्यां वैश्रवणो राजा विचित्राभरणाम्बरः।।''

तत्रैव, सभापर्व, 10.5

2 ''स्त्रीसहस्रैर्वृतः श्रीमानस्ते ज्वलित कुण्डलः।
दिव्यपादोपधाने च निषण्णः परमासने।।''

तत्रैव, सभापर्व, 10.6

3 तत्रैव, सभापर्व, 10.7-8

4 ''तत्र देवाः सगन्धर्वा गणैरप्सरसां वृताः।
दिव्यतानैः महाराज गायन्तिस्म सभागताः।।''

तत्रैव, सभापर्व, 10.9

उल्लेख किया जा सकता है।[1] महाभारत में कुबेर-सभा का वर्णन अप्सराओं एवं गन्धर्वों से युक्त तथा विविध वाद्य, नृत्य एवं गीतों से परिपूर्ण और गूँजती हुयी बड़ा ही मनोहर किया गया है।[2] इसके अतिरिक्त किन्नर तथा नर नामधारी गन्धर्व कुबेर की सभा में उपस्थित होकर अपनी भक्ति प्रदर्शित करते थे जिनमें मणिभद्र, धनद, श्वेतभद्र, गुह्यक, कशेरक, गण्डकण्डू, महाबली-प्रद्योत, कस्तुम्बुरु , पिशाच,गजकर्ण, विशालक, वराहकर्ण,तम्रोष्ठ, फलकक्ष, फलोदक, हंसचूड़, शिखावर्त, हेमनेत्र, विभीषण, पुष्पानन, पिङ्गलक, शोणितोद, प्रवालक, वृक्षवासी, अनिकेत, चिरवास तथा भारत इत्यादि दूसरे अन्य यक्षादिगण लाखों की संख्या में उल्लेखनीय है।[3] इसमें मणिभद्र, धनद तथा विभीषण का नाम होना विशेष महत्व रखता है। मणिभद्र कुबेर का अनुचर यक्ष था जो कुबेर के साथ विशेष रूप से सम्बद्ध था। धनद नाम यद्यपि कुबेर का ही पर्याय है, परन्तु यह विचारणीय है कि धनद नाम का भी कोई यक्ष अथवा गन्धर्व इत्यादि रहा होगा। सम्भव है यह यक्ष था जो बाद में कुबेर के साथ जोड़ दिया गया। विभीषण कुबेर के सौतेले भाई थे। इस सभा में धन सम्पत्ति की अधिष्ठातृ देवी लक्ष्मी नारद तथा कुबेर के पुत्र नलकूबर भी उपस्थित रहते

---

1 ''मिश्रकेशी च रम्भा च चित्रसेना शुचिस्मिता।
चारुनेत्रा धृताची च मेनका पुञ्जिकस्थला।।
x x x
उपतिष्ठन्ति धनदं गन्धर्वाप्सरसां गणाः।।''
तत्रैव, सभापर्व, 10.10-12

2 ''अनिशं दिव्यवादित्रैर्नृत्यगीतैश्च सा सभा।
अशून्या रुचिरा भाति गन्धर्वाप्सरसां गणैः।।''
तत्रैव, सभापर्व, 10.13

3 ''किन्नरा नाम गन्धर्वा नरा नाम तथा परे।
x x x
एते चान्ये च बहवो यक्षाः शतसहस्रशः।।''
तत्रैव, सभापर्व, 10.14-18

थे।[1] यहाँ पर लक्ष्मी का उपस्थित होना कालान्तर में कुबेर के साथ उनकी सम्बद्धता को प्रमाणित करता है तथा कुबेर को समृद्धि एवं धन के देवता के रूप में प्रतिष्ठित भी करता है। ब्रह्मर्षि, देवर्षि तथा अन्य ऋषिगण कुबेर की सभा में विराजमान रहते हैं। इसके अतिरिक्त अनेकशः पिशाच तथा महाबली गन्धर्व वहाँ पर लोकपाल महात्मा धनद की उपासना करते हैं। [2] यहाँ पर कुबेर के सन्दर्भ में 'महात्मा' शब्द का उल्लेख उनके सौम्य स्वरूप में प्रतिष्ठित होने का परिचायक है। महाकाव्य काल तक कुबेर की प्रतिष्ठा सौम्य देवता के रूप में निश्चित रूप से हो चुकी थी। इसी सभा में लाखों भूत समूहों से घिरे हुए उग्र धनुर्धर महाबली पशुपति, शूलधारी, त्रिलोचन भगवान् उमापति तथा क्लेश रहित देवी पार्वती सदैव धन के अधिपति अपने मित्र कुबेर के पास बैठे रहते थे। [3] इसके अतिरिक्त विविध वस्त्राभूषणों से विभूषित तथा प्रसन्नचित्त सैकड़ों गन्धर्वपतियों, विश्वावसु, हहा, हुहू, तुम्बुरु, पर्वत, शैलूष, संगीतज्ञ चित्रसेन तथा चित्ररथ एवं अन्य और गन्धर्वों के द्वारा धनाध्यक्ष कुबेर की उपासना का संकेत प्राप्त होता है। [4]

---

1 ''सदा भगवती लक्ष्मीस्तत्रैव नलकूबर।
अहं च बहुशस्तस्यां भवन्त्यन्ये च मद्विधा।।''
तत्रैव, सभापर्व, 10.19

2 ''ब्रह्मर्षयो भवन्यत्र तथा देवर्षयोऽपरे।।
क्रव्यादाश्च तथैवान्ये गन्धर्वाश्च महाबलाः।
उपास्ते महात्मानं तस्यां धनमीश्वरम्।।''
तत्रैव, सभापर्व, 10.20-21

3 ''उमापतिः पशुपतिः शूलभृद भगनेत्रहा।
वृतः सखाय मन्वास्ते सदैव धनदं नृपः।।''
तत्रैव, सभापर्व, 10.21-24

4 ''गन्धर्वाणां च पतयो विश्वावसुर्हहाहुहूः।
x x x
एते चान्ये च गन्धर्वा धनेश्वरमुपासते।।''
तत्रैव सभापर्व, 10.25-26

महाभारत में कुबेर की उपासना के उल्लेख अनेकशः प्राप्त होते हैं। विद्याधरों के अधिपति चक्रधर्मा ने भी अपने छोटे भाइयों के साथ उस सभा में उपस्थित होकर भगवान् कुबेर की उपासना की थी, ऐसा विवरण उपलब्ध होता है।[1] भगदत्त इत्यादि राजा भी उस सभा में आकर बैठते थे तथा किन्नरों के स्वामी द्रुम भी कुबेर की उपासना करते थे।[2] उल्लेखनीय है कि महाभारत में कुबेर के लिए 'प्रभु' का उल्लेख मिलता है जो उनके देवत्व की अवधारणा की पुष्टि करता है। किन्नरों के स्वामी द्रुम द्वारा कुबेर की उपासना से यह स्पष्ट होता है कि कुबेर यक्षों के साथ-साथ किन्नरों के भी स्वामी रहे होंगे। इस सभा में धर्मनि ष्ठ विभीषण भी यक्षों, गन्धर्वों तथा निशाचरों के साथ अपने भाई भगवान् कुबेर की उपासना करते थे।[3] इसके अतिरिक्त महेन्द्र, गन्धमादन हिमवान, विन्ध्य, परियात्र, कैलास, मन्दराचल, मलय दर्दुर, इन्द्रकील तथा सुनाम नाम वाले दिव्य पर्वत, मेरु इत्यादि पर्वत धन के स्वामी महामना प्रभु कुबेर की उपासना किया करते थे।[4] कुबेर की सभा में भगवान् नन्दीश्वर, महाकाल तथा शंकुकर्ण आदि भगवान् शिव के सभी दिव्य पार्षद काष्ठ, कुटीमुख,

---

1 ''विद्याधराधिपश्चैव चक्रधर्मा सहानुजैः।
उपाचरति तत्र स्म धनानांमीश्वरं प्रभुम्।।''
तत्रैव, सभापर्व, 10.27-28

2 ''आसते चापि राजानो भगदत्तपुरोगमाः।
द्रुमः किम्पुरुषेशश्च उपास्ते धनदेश्वरम्।।''
तत्रैव, सभापर्व, 10.29

3 'विभीषणश्च धर्मिष्ठ उपास्ते भ्रातरं प्रभुम्।'
तत्रैव, सभापर्व, 10.30-31

4 ''हिमवान परियात्रश्च विन्ध्य कैलास मन्दराः।।
मलयो दर्दुरश्चैव महेन्द्रो गन्धमादनः।
x x x
उपास्ते महात्मानं धनानांमीश्वरं प्रभुम्।।''
तत्रैव, सभापर्व, 10.31-33

दन्ती, तपस्वी, विजय तथा गर्जनशील महाबली श्वेत वृषभ उपस्थित रहते थे।[1] महाभारत में कुबेर की सभा में भगवान् शिव के आगमन का वर्णन प्राप्त होता है। अपने पार्षदों से घिरे हुए देवदेवेश्वर, कल्याणस्वरूप, उमावल्लभ, भगवान् महेश्वर जब उस सभा में पधारते हैं, तब पुलस्त्यनन्दन धनाध्यक्ष कुबेर उनके चरणों में मस्तक रखकर प्रमाण करते तथा उनकी आज्ञा लेकर उन्हीं के पास बैठ जाते थे। कुबेर के सखा भगवान् शंकर कभी-कभी उस सभा में उपस्थित होते थे।[2] कुबेर की सभा अत्यन्त रमणीय थी-इसका प्रमाण महाभारत में प्राप्त होता है। कुबेर का प्रताप एवं यश इतना अधिक विस्तीर्ण हो चुका था कि श्रेष्ठ निधियों में प्रमुख तथा धन के अधीश्वर शंख एवं पदम्, दोनों स्वयं मानव रूप धारण करके अन्य सभी निधियों के साथ धनाध्यक्ष कुबेर की उपासना करते थे।[3]

भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में कुबेर की उपासना पद्धति सम्बन्धी अत्यन्त महत्वपूर्ण विवरण उपलब्ध होता है। नाट्यशास्त्र के अनुसार उत्तरी दिशा में कुबेर की

---

1 ''नन्दीश्वरश्च भगवान् महाकालस्तथैव च।
शंकुकर्णमुखाः सर्वे दिव्याः पारिषदास्तथा।।
काष्ठः कुटीमुखो दन्ती विजयश्च तपोऽधिकः।
श्वेतश्च वृषभस्तत्र नर्दन्नास्ते महाबलः।।''
तत्रैव, सभापर्व, 10.34-35

2 ''धनदं राक्षसाश्चान्ये पिशाचाश्च उपासते।
पारिषदैः परिवृत्तमुपायन्तं महेश्वरम्।।
सदा हि देव देवदेवेशं शिवं त्रैलोक्यभावनम्।
प्रणम्य मूर्ध्ना पौलस्त्यो बहुरूपमुमापतिम्।।
ततोऽभ्यनुज्ञां सम्प्राप्य महादेवाद् धनेश्वरः।
आस्ते कदाचित् भगवान् भवो धनपतेः सखाः।।''
तत्रैव सभापर्व 10.36-38

3 ''निधि प्रवरमुख्यो च शंखपद्मौ धनेश्वरौ।
सर्वान् विधीन प्रगृह्याथ उपासते धनेश्वरम्।।''
तत्रैव, सभापर्व, 10.39-40

भली भाँति स्थापना करके तथा वहीं मातृकाओं तथा गुह्यकों के साथ यक्षों की भी स्थापना करनी चाहिए।[1] नाट्य की सभी मातृकाओं तथा (अपने) अनुचरगण सहित कुबेर की पूओं तथा लपसी मिश्रित भक्ष्य भोज्य पदार्थो से पूजा करनी चाहिए।[2] नाट्यशास्त्र में ही अन्त में कुबेर के द्वारा बलिग्रहण करने के सन्दर्भ में 'कुबेर-मंत्र' का भी विधान मिलता है। इसके अनुसार 'हे धन के अधिपति, यक्षों के स्वामी, उत्तर दिशा के लोकपाल भगवान् कुबेर आप अपने यक्षों तथा गुह्यकों के साथ प्रस्तुत की गई बलि को ग्रहण कीजिए।'[3] इस प्रकार कुबेर की पूजा सम्बन्धी विविध आख्यानों से स्पष्ट होता है कि इनकी उपासना परम्परा अत्यन्त प्राचीन थी।

वाल्मीकि रामायण में कुबेर के पुत्र नलकूबर का तीनों लोकों में विख्यात होने का उल्लेख प्राप्त होता है।[4] वह पराक्रम की दृष्टि से क्षत्रिय तथा धर्मानुष्ठान की दृष्टि से ब्राह्मण था। ऋषि पौलस्त्य की वंशावली पुराणों में भी विवृत है।[5] इनका सम्बन्ध पुराणों में वैशाली के वंशज के रूप में स्थापित किया जाता है। मरुति के पुत्र नरिस्यन्त को दम नाम का एक पुत्र था। उसका आठवाँ उत्तराधिकारी तृणबिन्दु हुआ,

---

1 ''उत्तरस्यां दिशि तथा धनदं सन्निवेशयेत।
नाट्यस्य मातृश्च तथा यक्षानथ सगुह्यकान्।।''
नाट्य शास्त्र, 4.30

2 ''मातृर्नाट्यस्य खर्वास्ता धनदं च सहानुगैः।
अपूपैर्लो पिकामिश्रैर्भक्ष्य भोज्यश्च पूजये त्।।''
तत्रैव, 4.45

3 ''धनाध्यक्षो यक्षपतिर्लोकपालो धनेश्वरः।
सगुह्यकस्सयक्षश्च प्रतिगृह्णातु मे बलिम्।।''
तत्रैव, 4.67

4 रामायण, उत्तरकाण्ड, सर्ग 26,33

5 वायुपुराण, 70.29-56; ब्रह्माण्ड पुराण, 3.8.34.62;
लिंग पुराण, 1.63,55.66; कुर्मपुराण, 1.19.7.15;
पद्म पुराण, 6.269.15-15; भागवतपुराण, 9.2.31-2

इलविला तृणबिन्दु की कन्या थी जिसका विवाह पुलस्त्य से हुआ था। इनसे विश्रवा नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। मुनि विश्रवा को चार पत्नियाँ थीं-बृहस्पति की पुत्री देववर्णिनी, मल्यवन्त की पुत्री पुष्पोत्कट, वाक एवं माली की पुत्री कैकसी। विश्रवा ने देववर्णिनी से कुबेर को पुत्र रूप में प्राप्त किया था।[1] इस प्रकार का उल्लेख जिन पुराणों में प्राप्त होता है उनमें वायु पुराण, ब्रह्माण्ड पुराण, लिंङ्ग पुराण, कूर्मपुराण, पद्म पुराण तथा भागवत पुराण का उल्लेख किया जा सकता है।

यक्षोपासना काल प्रवाह के साथ जनमानस का एक प्रमुख अंङ्ग बन चुकी थी जिसका उल्लेख पुराणों में भलीभाँति प्राप्त होता है। मनुष्य अपनी-अपनी रुचि के अनुसार अपना-अपना देवता चुन लेते थे तथा मन की सम्पूर्ण शक्ति और भक्ति उसी में लगा देते थे। इस प्रकार के देवता को भागवत में 'रोचदेवता' की संज्ञा प्रदान की गयी है। [2] रोच नामक देवताओं की सूची में वर्णित अट्ठाइस देवताओं में एक 'वैश्रवण-रोच ' भी था जो कुबेर का अन्य अभिधान है।

कुबेर को धन का देवता स्वीकार किया जाता है,[3] अतः यह परिकल्पना सहज ही प्रस्तुत की जा सकती है कि वैश्रवण रोच की उपासना का रहस्य धन की प्राप्ति ही रहा होगा। ऐसा भी विधान मिलता है कि अपनी रुचि के अनुसार देवता का वरण करके रोच व्रत ग्रहण करना चाहिए तथा प्रतिदिन केवल रात्रि में ही भोजन करना चाहिए। यह क्रम सम्पूर्ण वर्ष भर चलना चाहिए तथा आहार काल के अतिरिक्त जल का भी इसमें निषेध है।

विष्णुधर्मोत्तर पुराण में दो प्रकार के धार्मिक विधि विधानों का उल्लेख मिलता है-प्रथम अन्तर्वेदि या यज्ञों का सम्पादन करना, द्वितीय वहिर्वेदि, जिसके अर्न्तगत देवताओं की पूजा की जाती है। उल्लेखनीय है कि अन्तर्वेदि परम्परा धनवानों के लिए

---

1 पार्जिटर, एफ०ई०, एन्शियेन्ट इण्डियन हिस्टोरिकल ट्रेडिसन, पृष्ठ- 24

2 'ब्रह्म-स्वीयस्य च रुचौ देवतायाश्य पूजनम्।'

विष्णुधर्मोत्तर पुराण, 3.222.28

3 ''अपां तु वरूणं राज्ये राज्ञां वैश्रवणं पतिम्।
यक्षाणां राक्षसानाञ्च पार्थिवानां धनस्य च।।''

वायुपुराण, भाग-2, प्रकाशन-संस्कृति संस्थान बरेली, पृष्ठ 105

सम्भव थी जबकि वहिर्वेदि या देवपूजन निर्धनों के लिए भी संभव था। इस पुराण में वर्णित देवताओं की सूची में यम, नागदेवता, वायु, अग्नि, यक्ष, राक्षस, शंख, पद्म, मणिभद्र, दस विश्वेदेव, ब्रह्मा, स्वाहा, शची, वरुणानी, धूमोर्णा, स्वाहा, श्री, अप्सराएँ, गन्धर्व, नलकूबर तथा जल आदि का उल्लेख किया जा सकता है।[1] इनमें से यक्ष, शंख, पद्म, श्री तथा नलकूबर को कुबेर के साथ भलीभाँति सम्बद्ध किया जा सकता है। नलकूबर तो कुबेर का पुत्र ही था। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि भारतीय जनमानस में न केवल कुबेर की उपासना परम्परा प्रचलित हुई, बल्कि उनके पहले यक्षों तथा बाद में उनके पुत्र नलकूबर की भी देवता के रूप में पूजा होती थी।

सम्भवतः कुबेर पिशाचों से भी सम्बन्धित थे। वायुपुराण पिशाचक नामक पर्वत का उल्लेख करता है जो मेरु पर्वत के दक्षिण में स्थित था।[2] पिशाचक पर्वत पर यक्षों के स्वामी कुबेर का भवन स्थित है। यदि हम इस पर्वत को पिशाचों का निवास स्थान मानें, तो कुबेर का सम्बन्ध पिशाचों से स्थापित किया जा सकता है। मत्स्य पुराण[3] तथा ब्रह्माण्ड पुराण[4] भी महाभारत की तरह ही यक्षों तथा पिशाचों का निवास स्थान हिमवान्-पर्वत बताते हैं। इस प्रकार यक्ष आदि कुबेर के सेवक के रूप में स्वीकार किये जाते हैं तथा कुबेर की रमणीय सभा में इनकी उपस्थिति सदैव देखी जा सकती है।

---

1 ''देवताः काश्च कस्मिन्नु काले संपूजयेत् सदा।'

विष्णु धर्मोत्तर पुराण, 3.221.7

2 ''पिशाच के गिरिवरे हर्म्यं प्रासादमण्डितम्।
यक्षगन्धर्वचरितं कुबेरभवनं महूत।।''

वायुपुराण, 29.57

3 'रक्षः पिशाचा यक्षाश्च सर्वे हैमवतास्तु ते।'

मत्स्यपुराण, CXIV.82

4 'रक्षः पिशाचयक्षाश्च सर्वे हैमताः स्मृताः।'

ब्रह्माण्ड पुराण, 2.18.33

शंख आदि का उल्लेख प्राप्त होता है।[1] ब्रह्म पुराण शिव को कुबेर का इष्ट देव स्वीकार करता है।[2] ऐसा प्रतीत होता है कि काशी में किसी समय हरिकेश-यक्ष की उपासना का पर्याप्त प्रचार-प्रसार था।[3] वहाँ प्रचीन काल में शिव की पूजा होती थी, किन्तु हरिकेश की तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान् शिव ने काशी को उसके अधीन कर दिया तथा वह दण्डनायक के पद पर अभिषिक्त कर दिया गया। स्कन्द पुराण में हरिकेश यक्ष की पर्याप्त प्रशंसा की गयी है। मत्स्य पुराण का यह उल्लेख विचारणीय है कि जब कुबेर अपने सखा शिव की नगरी में अपने विलासी स्वभाव को छोड़कर आये तो उनकी उपासना कुबेर-लक्ष्मी से गणेश-लक्ष्मी की ओर चल पड़ी।[4] इसके मूल में काशी में हरिकेश-यक्ष की प्रतिष्ठा रही होगी, क्योंकि कुबेर स्वयं यक्षाधिपति कहे गये हैं। इसलिए हरिकेश के स्वामी होने के कारण इनकी उपासना-परम्परा का वहाँ भी विकास होना स्वाभाविक ही रहा होगा। इससे ज्ञात होता है कि लक्ष्मी के साथ कुबेर की जो उपासना प्राचीन समय से प्रचलित थी, वह शिव के वरदान के कारण कुबेर के गणेशत्व को प्राप्त करने की स्थिति में गणेश के साथ सम्पृक्त हो गई, परन्तु गणेश का वह स्वरूप पार्वती पुत्र का न होकर कुबेर का ही था। कालान्तर में नाम साम्य के कारण कुबेर के साथ-साथ गजानन गणेश और लक्ष्मी की उपासना जनमानस में प्रचलित हो गई। यक्षों को शिव का अनुचर कहा गया है।[5] यहाँ यक्षों का उल्लेख तथा शिव को यक्षपति कहना विशेष महत्व रखता है क्योंकि कुबेर स्वयं यक्षाधिपति थे। इस प्रकार शिव तथा कुबेर के इस अभिधान के कारण यह सम्भावना व्यक्त की

---

1 बनर्जी, जे०एन०, डेवलपमेण्ट ऑव हिन्दू आइकोनोग्राफी, पृष्ठ 336-44

2 कल्याण- ब्रह्मपुराणांक, पृष्ठ 338

3 कल्याण- संक्षिप्त स्कन्दपुराणांक, वर्ष 25, संख्या 1, काशी खण्ड पूर्वार्द्ध, पृष्ठ 608

4 'कुबेरस्तु महायक्षस्तथा शर्वार्पितक्रियः।
क्षेत्रसम्वसनादेव गणेशत्वमवाप ह।।'

मत्स्य पुराण, अध्याय 179, श्लोक 62, पृष्ठ 530

5 वायुपुराण, 24.107

जा सकती है, कि शिव की नगरी काशी में कुबेर के आगमन पर उन्हें प्रतिष्ठा मिली होगी जो भगवान् शंकर की थी।

शिव पुराण में यह उल्लेख मिलता है कि एक बार कुबेर की तपस्या से प्रसन्न होकर शिव पार्वती के साथ वरदान देने के लिए प्रकट हुए। [1] कुबेर ने क्रूर नेत्रों से पार्वती की ओर देखा, इसके परिणाम स्वरूप पार्वती कुपित हो गयीं तथा कुबेर की एक आँख जाती रही। इसीलिए इन्हें पिङ्गल कहा जाता है। भगवान् शिव ने प्रसन्न होकर कुबेर को निधियों का स्वामी तथा गुह्यकों का राजा बना दिया तथा कहा कि सुव्रत यक्षों, किन्नरों तथा राजाओं के भी राजा होकर पुण्यजनों के पालक और सबके लिए धन के दाता बनो मेरे साथ सदैव तुम्हारी मैत्री बनी रहेगी तथा मैं तुम्हारे निकट निवास करूँगा। तुमसे प्रीति बढ़ाने के लिए मैं अलका के पास ही रहूँगा।

प्राचीन काल से ही कुबेर के गणों में यक्ष, गन्धर्व और किन्नर तथा अप्सराओं आदि की गणना की जाती रही है। महाभारत में कुबेर की सभा में भी इनकी उपस्थिति का संकेत मिलता है। किन्नर पुलस्त्य की सन्तान हैं, ऐसी धारणा महाभारत में व्यक्त की गई है।[2] भागवत पुराण का यह कथन विशेष उल्लेखनीय है कि पुलस्त्य जी के उनकी पत्नी हविर्भू से महर्षि अगस्त्य और महातपस्वी विश्रवा ये दो पुत्र उत्पन्न हुए। [3] इस प्रकार हम कह सकते हैं कि ऋषि अगस्त्य विश्रवा के भाई थे तथा विश्रवा के पुत्र होने के कारण कुबेर उनके वंशज हुए। चूँकि महाभारत में किन्नरों को पुलस्त्य की सन्तान कहा गया है तथा कुबेर भी इसी वंश परम्परा में उत्पन्न हुए थे, इसलिए किन्नरों को कुबेर के साथ भलीभाँति सम्बद्ध किया जा सकता है। उल्लेखनीय है कि कुबेर किन्नरों के भी स्वामी कहे गये हैं। इस प्रकार यक्ष एवं किन्नर दोनों को कुबेर के अनुचर के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। किन्नर अपने मधुर कण्ठ के लिए

---

1 संक्षिप्त शिवपुराणाङ्क, वर्ष 36, संख्या-1, अध्याय-17-19, पृष्ठ-103

2 महाभारत, 1.66.7

3 ''पुलस्त्योऽजनयत्पत्न्यामगस्त्यं च हविर्भुवि।
सोऽन्यजन्मनि दहाग्निर्विश्रवाश्च महातपाः।।

भागवतपुराण, 4.1.36

विख्यात हैं तथा हिमालय पर्वत पर इनकी उपस्थिति का उल्लेख मिलता है।[1] किन्नर कैलास पर्वत पर कुबेर के भवन में निवास करते हैं[2] तथा वे कुबेर के अनुयायी के रूप में उनकी सभा में उपस्थित रहते हैं।[3] महाभारत में भी किन्नरियों का क्रीड़ा -स्थल गन्धमादन पर्वत बताया गया है,[4] जो कुबेर से सम्बन्धित है। शिव पुराण में ऐसा उल्लेख मिलता है कि यक्षों की भाँति किन्नरों के अधिपति कुबेर ही थे। [5]

महाभारत में कुबेर का उल्लेख पाण्डवों के सन्दर्भ में भी प्राप्त होता है। महाभारत में भीम के द्वारा राक्षस-गणों को मारने का उल्लेख मिलता है तथा ये पाण्डव उसी पर्वत पर थे, जहाँ कुबेर का भवन स्थित था तथा जिसे युधिष्ठिर ने देखा भी था।[6] राक्षसों के मारे जाने की सूचना कुबेर के अनुचरों ने वैश्रवणालय में जाकर दी थी।[7] राक्षसों की यह बात सुनकर समस्त यक्ष-गणों के स्वामी कुबेर अत्यन्त कुपित हो

---

1 ''गन्धर्वयक्षरक्षोभिरप्सरोभिश्च सेवितम्।
किरातकिन्नरावासं शैलं शिखरिणो वरम्।।''
महाभारत, वनपर्व, 89.20

2 महाभारत, 3.139,12 (दि चौखम्भा संस्कृत सिरीज, वर्क नं० 98, महाभारतकोश)

3 महाभारत, 3.162.11

4 तत्रैव, 3.158.39

5 संक्षिप्त शिवपुराणांङ्क, वर्ष 36, संख्या-1, पृष्ठ-103

6 ''कुबेरसदनं दृष्ट्वा राक्षसांश्च निपातितान्।
भ्रात भ्रातरमासीनमब्रवीत् पृथिवीपतिः।।''
महाभारत, सभापर्व, भाग 2 श्लोक 9

7 ''ततस्त्ये हतशिष्टा ये भीमसेनेन राक्षसाः।।
संहिताः प्रत्यपद्यन्त कुबेर सदनं प्रति।
ते जवेन महावेगाः प्राप्य वैश्रवणालयम्।।''
तत्रैव, सभापर्व, भाग-२, श्लोक 14-15

गये तथा क्रोध से उनकी आँखे लाल हो गईं। [1] उन्होंने तुरन्त रथ तैयार करने की आज्ञा दी।[2] धनाध्यक्ष कुबेर के द्वारा पालित अश्वों के उस महासमुदाय को तथा यक्ष-राक्षसों से घिरे प्रियदर्शन महामना कुबेर को भी पाण्डवों ने देखा। कुबेर भी धनुष, तलवार से सुसज्जित शक्तिशाली महारथी पाण्डव पुत्रों को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। [3] कुबेर ने युधिष्ठिर को देखकर कहा कि धैर्य, दक्षता, देश, काल तथा पराक्रम ये पाँच लौकिक कार्यों के सिद्धि के हेतु हैं। [4] जो व्यक्ति केवल क्रोध के वशीभूत होकर अपने पतन को नहीं देखता है, वह पापबुद्धि पापात्मा पुरुष पाप का ही अनुसरण करता है।[5] अब आप लोग पुनः यहाँ से राजर्षि आर्ष्टिषेण के आश्रम पर

---

1 ''स तच्छुत्वा तु संक्रुद्धः सर्वयक्षगणाधिपः।
कोपसंरक्तनयनः कथमित्यब्रवीद् वचः।।''

तत्रैव, सभापर्व, भाग-2, श्लोक 17

2 ''द्वितीयमपराध्यन्तं भीमं श्रुत्वा धनेश्वरः।
चुक्रोध यक्षाधिपतिर्युज्यतामिति चाब्रवीत।।''

तत्रैव, सभापर्व, भाग-2, श्लोक 22

3 ''तत् केशरि महाजालं धनाधिपति पालितम्।
कुबेरं च महात्मानं यक्षरक्षो गणावृतम्।।
ददृशुर्हृष्टरोमाणः पाण्डवाःप्रियदर्शनम्।
कुबेरस्तु महासत्वान् पाण्डोः पुत्रान् महारथान्।।''

तत्रैव, सभापर्व, भाग 2, श्लोक 30,37

4 ''युधिष्ठिर धृतिर्दाक्ष्य देशकालपराक्रमाः।
लोकतंत्रविधानानामेष पञ्चविधो विधिः।।''

तत्रैव, वनपर्व, 162.1

5 ''यस्तु केवलसंरम्भात् प्रपातं न निरीक्षते।
पापात्मा पापबुद्धिर्यः पापमेवानुवर्तते।।''

तत्रैव, वनपर्व, 162.6

जाकर कृष्ण पक्ष तक भय एवं शो क से रहित होकर रहें।[1] वहाँ पर अलका निवासी यक्ष तथा इस पर्वत पर रहने वाले सभी प्राणी मेरी आज्ञा के अनुसार गन्धर्वों तथा किन्नरों के साथ सदा इन श्रेष्ठ ब्रा ह्मणों सहित तुम्हारी रक्षा करेंगे।[2] इस प्रकार दोनों लोग युद्ध के लिए तत्पर थे, किन्तु बुद्धिमान् कुबेर ने इन्हें जीवन दर्शन का उपदेश वहाँ पर दिया, जिसकी उपयोगिता पाण्डवों के लिए भवि ष्य में निश्चित रूप से लाभप्रद सिद्ध हुयी होगी।

पौराणिक परम्परा में लोकपाल अथवा दिक्पाल विषयक मान्यता का कोई वास्ततिक स्वरूप हमें नहीं प्राप्त होता है। यद्यपि कुबेर को उत्तर-दिशा का दिक्पाल स्वीकार किया गया है। विभिन्न साहित्यिक स्रोतों में दिक्पाल तथा उनसे सम्बन्धित दिशाओं का क्रम प्रायः परिवर्तन के साथ मिलता है। इनकी संख्या भी सभी स्थानों पर एक समान प्राप्त नहीं होती है। महाभारत में वर्णित चार लोकपालों में कुबेर का भी उल्लेख मिलता है।[3] महाभारत के वनपर्व में अर्जुन को उपहार देते हुए लोकपालों के साथ कुबेर का भी उल्लेख मिलता है।[4] अन्य स्थानों पर भी इन देव-समूहों का बिना लोकपाल शब्द का प्रयोग किये हुए इन्द्र, यम, वरुण तथा अग्नि के रूप में वर्णन किया गया है।[5] उल्लेखनीय है कि यहाँ पर कुबेर का स्थान अग्नि ने ले लिया है। हाप्किन्स के अनुसार अग्नि, यम, वरुण तथा इन्द्र की मान्यता, अग्नि के स्थान पर कुबेर की मान्यता से प्राचीन प्रतीत होती है।[6] विभिन्न पौराणिक साक्ष्यों के आधार पर

---

1 ''आर्ष्टिषेणस्य राजर्षे प्राप्य भूयस्त्वमाश्रमम्।
तामिस्त्र प्रथमं पक्षं वीतशोक भयो वस् ।।''

तत्रैव, वनपर्व, 162.10

2 ''अलकाः सह गन्धर्वैर्यक्षाश्च सह किन्नरैः।।''

तत्रैव, वनपर्व, 162.11-12

3 तत्रैव, 7.70.45; 1.74.85, द्रष्टव्य, हाप्किन्स, इपिक माइथालाजी, पृष्ठ-149

4 महाभारत, वनपर्व, अध्याय 41, श्लोक 6

5 तत्रैव, वनपर्व, 55.6

6 हाप्किन्स, इपिक माइथालाजी, पृष्ठ 149

यह कहा जा सकता है कि चूँकि यक्षों का निवास स्थान उत्तर दिशा में था, इसीलिए सम्भवतः यक्षों के अधिपति कुबेर को उत्तर-दिशा का दिक्पाल घोषित किया गया। अष्ट-दिकपालों की दिशा सूची को इस प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता है-

पश्चिम

	निऋति	वरुण	वायु	
दक्षिण	यम		कुबेर	उत्तर
	अग्नि	इन्द्र	ईशान्	

पूर्व

आरण्यक पर्व के अनुसार पितामह ब्रह्मा ने वैश्रवण कुबेर को अमरत्व, धन का अधिपत्य तथा लोकपालत्व ये तीन वरदान प्रदान किये थे।[1] वाल्मीकि रामायण में भी दिक्पाल विषयक अनेकशः उदाहरण प्राप्त होते हैं ।[2] वज्रधर (इन्द्र), यम, वरुण तथा धनेश (कुबेर) को क्रमशः पूर्व, दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तर का प्रतिनिधि स्वीकार किया गया है। इससे कुबेर के उत्तर-दिशा के दिक्पाल होने की मान्यता की पुष्टि होती है।[3] हाप्किन्स ने तीन दिक्पालों को तीन विश्व के रक्षकों के रूप में स्वीकार किया है। कुबेर को बाद में इस सूची में स्थान प्राप्त हुआ जो प्रारम्भ में देवता के रूप में स्वीकार्य नहीं था। कालान्तर में कुबेर को उत्तर-दिशा का स्वामित्व प्राप्त हुआ।[4] इस प्रकार कुबेर को विश्वसंरक्षक के पद पर विभूषित कर यम, इन्द्र तथा वरुण के

---

1 ''पितामहस्तु प्रीतात्मा ददौ वैश्रवणस्य हे।।
अमरत्वं धनेशत्वं लोकपालत्वमेव च।।''

महाभारत, वनपर्व, 258.15

2 वाल्मीकि रामायण, 2.16.24

3 तत्रैव, 2.91.13

4 महाभारत, 7.184.47

साथ रखा गया।[1] महाभारत में पूर्व-दिशा का सम्बन्ध इन्द्र एवं वैश्रवण(कुबेर) से स्थापित किया गया है।[2] हाप्किन्स के विचार में कुबेर और इन्द्र दोनों ही उत्तर तथा पूर्व-दिशा के सम्मिलित संरक्षक हैं। [3]

हरिवंश पुराण के अनुसार तीनों विश्व के स्वामी, इन्द्र ने [4] पुलस्त्य के पुत्र कुबेर को उत्तर दिशा का अधिपति बनाया था। कालान्तर में दिक्पालों की संख्या बढ कर आठ हो गयी जिसमें कुबेर भी एक प्रमुख था। अमरकोश भी आठ दिक्पालों की मान्यता को स्वीकार करता है। [5] तैत्तिरीय आरण्यक तथा महाभारत में कुबेर को 'महाराज' की संज्ञा प्रदान की गयी है।[6] किन्तु लोकपाल सूची में कुबेर का स्थान निश्चित नहीं है, क्योंकि महाभारत में ही अग्नि एवं सोम को पूर्व एवं उत्तर दिशा का रक्षक कहा गया है।[7] यहाँ पर यह तथ्य उल्लेखनीय है कि प्रस्तुत स्थल पर इन्द्र तथा कुबेर की उपेक्षा की गयी है, कतिपय अन्य स्थानों पर कुबेर का स्थान अग्नि को दे दिया गया है। [8] इसी प्रकार कूर्मपुराण में भी कुबेर के स्थान पर सोम को प्रस्तुत किया गया है। [9] इस प्रकार यह अवधारण प्रस्तुत की जा सकती है कि सम्भवतः बौद्ध-परम्परा से प्रभावित होकर ही ब्राह्मण ग्रन्थों में कुबेर को ' महाराज ' संज्ञा से विभूषित किया गया है।

---

1 वाल्मीकि रामायण, 7.3-17

2 महाभारत, 163.3

3 हाप्किन्स, इपिकमाइथालाजी, पृष्ठ 151

4 हरिवंश पुराण, हरिवंश पर्व, अध्याय 37

5 अमरकोश, 2.2.6

6 महाभारत, 3.154.9

7 तत्रैव, 8.45.30-32

8 तत्रैव, 3.55.4; 56.9-12

9 कूर्म पुराण, 1.40.34-35

पाणिनि ने विद्वानों का ध्यान महाराज की भक्ति की ओर आकृष्ट किया है।[1] सम्भवतः महाराज को देवता माना गया है। सम्भवतः महाराज को देवता माना गया है। मनुस्मृति में भी महाराज का उल्लेख प्राप्त होता है। भूसारी [2] तथा कुमारस्वामी [3] ने 'महाराज ' शब्द को लोकपाल के अर्थ में ग्रहण किया है तथा बौद्ध-धर्म की यह महाराज विषयक धारणा पाणिनि के बाद की प्रतीत होती है।

अमरकोश में कुबेर के विविध अभिधान प्राप्त होते हैं जिनमें त्रयम्बकसखा, यक्षराट्, गुह्यकेश्वर, मनुष्यधार्मन, धनद,राजराज, धनाधिप, किन्नरेश, वैश्रवण, पौलस्त्य, नरवाहन, यक्ष, एकपिंग, एलाविल, श्रीदा तथा पुण्यजनेश्वर का उल्लेख किया जा सकता है[4] परन्तु यह उल्लेखनीय है कि कुबेर को यहाँ महाराज नहीं कहा गया है, जबकि अमरकोश में 'महाराजिक' शब्द का उल्लेख मिलता है। सम्भवतः महाराज के उपासकों को महाराजिक ही कहा गया है। उल्लेखनीय है कि पाणिनि का काल बौद्धों की मान्यता के उदय के पूर्व का है तथा उन्होंने सम्भवतः महाराज का प्रयोग एक देवता के लिए किया है।

कतिपय अन्य पौराणिक साक्ष्यों से दिक्पालों की संख्या दस प्रमाणित होती है जिनमें से एक कुबेर उत्तर दिशा का दिक्पाल था। वराह पुराण में भी दिक्पालों का वर्णन प्राप्त होता है जिसमें कुबेर का उल्लेख मिलता है।[5] मार्कण्डेय पुराण[6] तथा

---

1 पाणिनी अष्ध्यायी, 4.3.97

2 ए०बी०ओ०आर०आई०, वाल्यूम 8, 1926, पृष्ठ 199

3 कुमारस्वामी, ए०के०, ओरिजन ऑव दि बुद्ध इमेज, कलकत्ता, रिप्रीन्ट, पृष्ठ 18, नोट 21, चक्रवर्ती, ए०सी०, भक्ति कल्ट एण्ड ऐन्शियेन्ट इण्डियन जियोग्राफी, सम्पादक-सरकार, पृष्ठ 49

4 अमरकोश, 1.1.38-39

5 संक्षिप्त, वारह पुराण, वर्ष 51, संख्या 1, अध्याय 29, पृष्ठ 80

6 मार्कण्डेय पुराण, अध्याय 54

वह्नि पुराण[1] में लोकपालों के साथ कुबेर वर्णित हैं। विष्णुधर्मोत्तर पुराण इन्द्र, यम, वरुण तथा कुबेर की ही सत्ता को स्वीकार करता है। [2]

इस प्रकार महाकाव्यों और पुराणों में वर्णित कुबेर-वि षयक प्रचुर सामग्री उनकी प्राचीन-परम्परा की पुष्टि करती है। कुबेर की लौकिक मान्यता का आधार क्या था, उनकी उपासना पद्धति क्या थी? इन प्रश्नों का हल इन धर्म ग्रन्थों में दर्शनीय है। लोकमान्यता के अन्तर्गत उत्तर-दिशा की सुरक्षा का भार कुबेर को सौपा गया था। कुबेर उत्तर-दिशा के दिक्पाल थे तथा कभी-कभी उनका स्थान अन्य देवता भी ग्रहण कर लेते थे। यद्यपि महाकाव्यों तथा पुराणों में उनकी सूची तथा दिशा के सन्दर्भ में मतभेद रहा है तथापि इससे उनके महत्व को कभी कम करके नहीं समझा जा सकता है। इस प्रकार समृद्धि, धन एवं बुद्धि के देवता यक्षाधिपति कुबेर की मान्यता कालप्रवाह में निरन्तर बनी रही।

---

1 ''इन्द्रो वह्नि पितृपतिनिर्ऋतिर्वरुणोऽनिलः।
धनदः शङ्करश्चैव लोकपालाः पुरातनाः।।''
वह्नि पुराण (शब्द कल्पद्रुम)

2 सरकार, डी०सी०, स्टडीज इन दि रेलिजस लाइफ ऑव ऐन्शियेन्ट एण्ड मेडिवल इण्डिया, पृष्ठ 201

पंचम अध्याय

कला में कुबेर

कला में कुबेर

कुबेर की उपासना प्राचीन काल से ही जन-मानस में प्रचलित थी। ऋग्वेद में यद्यपि कुबेर का उल्लेख नहीं प्राप्त होता है, परन्तु यक्ष-पूजा के अनेक उल्लेख प्राप्त होते हैं। उन्हें रूप सौन्दर्य से युक्त [1] तथा विलक्षण स्वरूप वाला कहा गया है।[2] कुबेर यक्ष परम्परा से ही सम्बन्धित देवता थे अतः अत्यधिक सम्भावित है कि किसी न किसी रूप में कुबेर की पूजा अवश्य प्रचलित रही होगी। अथर्ववेद में यक्षों की विशि ष्ट प्रतिष्ठा के प्रमाण अनेकशः उपलब्ध होते हैं। उनका सम्बन्ध अमृत से स्थापित किया गया है।[3] उनके भवन को अपराजितापुरी की संज्ञा प्रदान की गयी है। उन्हें ब्रह्म तथा महद्ब्रह्म भी कहा गया है।[4] कुबेर उसके पुत्र कावेरक तथा कुबेर के अनुचर 'इतरजन' तथा पुण्यजनों का भी उल्लेख अथर्ववेद में प्राप्त होता है। कुबेर की उपासना अथर्ववेद के समय तक इस सीमा तक विकसित एवं प्रतिष्ठित हो चुकी थी कि उनके स्वरूप का निर्धारण भी उस समय तक हो चुका था। उन्हें कुत्सित शरीर वाला, लम्बा उदर (घटोदर), स्थूलकाय तथा हाथ में नेवला या थैली जिसे नेवले के आकार की होने के कारण नकुली कहा जाता था, अंलकरणों से विभूषित, हँसमुख चेहरा, यक्ष-गण तथा राक्षस आदि अनुचरों का स्वामित्व इन गुणों के साथ इन्हें किंकर रूप में अंकित किया गया है। [5] कुबेर के द्वारा काम्य धन प्रदान करने का उल्लेख भी अथर्ववेद में प्राप्त होता है। इन्हें यहाँ चतुर्थ

---

1 ऋग्वेद, 7.56.16

2 तत्रैव, 7.61.5

3 अथर्ववेद, 10.2.29

4 तत्रैव, 10.2.29-33

5 तत्रैव, 8.8.22

दिक्पाल के रूप में चित्रित किया गया है।[1] अथर्ववेद में कुबेर के पुत्र रजतनाभि का भी उल्लेख हुआ है।[2] अथर्ववेद के परिशिष्ट अंश में कुबेर के अट्ठारह पुत्रों का उल्लेख मिलता है [3] तथा चैत्र और बैसाख के मध्य में उनकी प्रतिष्ठा करने या पूजन करने का निर्देश प्राप्त होता है। [4]

शतपथ ब्राह्मण के अनुसार कुबेर-वैश्रवण राजा है तथा राक्षस उनकी प्रजा है।[5] इसी तरह का वर्णन आश्वलायन श्रौतसूत्र [6] तथा शांख्यायन श्रौतसूत्र में भी प्राप्त होता है।[7] तैत्तिरीय आरण्यक में कुबेर को देवता के रूप में चित्रित किया गया है। [8] इसी प्रकार वैश्रवण तथा कुबेर को भिन्न-भिन्न स्वीकार किया गया है। वैश्रवण को कौबेरक तथा कुबेर का सम्बन्धी कहा गया है तथा उनके लिए बलिहरण मन्त्र का विधान प्राप्त होता

---

1 अस्त्रामस्त्वा हविषा यजाम्यश्लोणस्त्वा घृतेन जुहोमि।
य आशानामाशापालस्तुरीयो देवः सनः सुभूतमेव वक्षत्।।

तत्रैव, 1.31.3

2 तत्रैव, 8.14.11

3 अष्टादश च कौबेरा वायुपुत्रास्तु विंशतिः।
एषा संख्या तु केतूनां शतम् एकोत्तरं स्मृतम्।।

अथर्ववेद परिशिष्ट, 55.1.4

4 चैत्रवैशाखयोर्मध्ये कौबेरास्तु विनिर्दिशेत्।
तेषां चैव तु कर्माणि लक्षणैः श्रृणु यादृशैः।।

तत्रैव, 55.5.1

5 शतपथ ब्राहमण, 13.4.3.10

6 आश्वलायन श्रौतसूत्र, 1.7

7 शांखायन श्रौतसूत्र, 16.2.17

8 तैत्तिरीय आरण्यक, 1.31.6

है।[1] वैश्रवण को क्षत्त्र कहना विशेष महत्वपूर्ण प्रतीत होता है। सम्भवतः वैश्रवण धन प्रदान करने के साथ–साथ रक्षक देवता के रूप में भी महत्वपूर्ण थे।[2] कुबेर के उपस्थापन मंत्र का भी उल्लेख तैत्तिरीय आरण्यक में किया गया है।[3] गोभिल गृह्य सूत्र में गृह–निर्माण के समय दस देवताओं को बलि देने का उल्लेख प्राप्त होता है जिनमें उत्तर–पश्चिम दिशा में कुबेर के लिए बलि का विधान किया गया है।[4]

इस प्रकार वैदिक साहित्य के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि कुबेर को अत्यन्त प्रतिष्ठा प्राप्त थी। यद्यपि पौराणिक देवता शिव और विष्णु की भाँति वे सर्वोच्च स्थान नहीं प्राप्त कर सके। इनकी तुलना में इन्हें द्वितीयक स्तर पर ही स्वीकार किया गया। इसलिए पाणिनि इनका उल्लेख लौकिक देवता के रूप में ही करते हैं परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि दिक्पाल तथा धन के देवता के रूप में उनकी प्रतिष्ठा निरन्तर बनी रही। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में कुबेर की प्रतिमा को प्रासाद में स्थापित करने का उल्लेख है।[5] इससे स्पष्ट है कि कौटिल्य के समय में कुबेर की प्रतिमाओं का निर्माण होने लगा था।

कुबेर को प्राचीन साहित्य में निरन्तर यक्षाधिपति अर्थात् यक्षों के राजा, राक्षसाधिपति, राक्षसेश्वर, यक्षराक्षसभर्तृ, यक्षरक्षोधिप, यक्षप्रवर, यक्षराज, यक्षराजन्, यक्षपति, धनाध्यक्ष, धनपति, धनदेश्वर इत्यादि अभिधानों से सम्बोधित किया गया है।[6]

---

1 तत्रैव, 1.31.30

2 तत्रैव, 1.31.3

3 राजाधिराजाय प्रसह्यसाहिने। नमों वयं वैश्रवणाय कूर्महे। स मे कामान्कामकामाय मह्यम्। कामेश्वरो वैश्रवणो ददात्। कुबेराय वैश्रवणाय। महाराजाय नमः।

तत्रैव, 1.31.6

4 गोभिल गृह्यसूत्र, 7.37-41

5 अर्थशास्त्र, पृष्ठ 54, आई०एम०एच०बी०डी०, पृष्ठ 59

6 महाभारत, 2.10,29; 1.179,18; 1.216,16; 1.187,6; 3.41,33

यक्षों से सम्बन्धित होने के कारण कुबेर की मूर्तियों में यक्ष प्रतिमाओं का प्रभाव स्वाभाविक था। अतः कुबेर की प्रतिमाओं के स्वरूप को समझने के लिए यक्ष-प्रतिमाओं की विशेषताओं का सामान्य विवेचन अप्रासंगिक नहीं होगा।

यक्ष-पूजा के सन्दर्भ में दो समान परम्पराएँ प्रचलित थीं : प्रथम नुकीली यक्ष पिंडियों की परम्परा जो अब भी प्राप्त होती है तथा द्वितीय सुविशाल शरीर की बलशाली मूर्तियाँ। यक्ष-पूजा के विस्तार का क्षेत्र विपुल है। अथर्ववेद में यक्ष को 'आत्मन्वत्' कहते हुए इनके महाकाय स्वरूप को प्रमाणित किया है। [1] महाभारत में यक्ष को पर्वतोपम, तालसमुश्रित तथा महाकाय कहा गया है जिसका प्रमाण प्राचीनतम मूर्तियों में स्पष्ट प्राप्त होता है। उसे अधृष्य अर्थात् मृत्यु से परास्त न होने वाला (अवध्य या अपराजिता), सूर्य तथा अग्नि के समान दिप्तिशाली एवं महाबल कहा गया है। उपलब्ध यक्ष मूर्तियों में यह वर्णन पूरी तरह चरितार्थ होता है।[2] यक्षों का अभयमुद्रा में उठा दाहिना हाथ कालान्तर में बुद्ध मूर्तियों में भी अभिव्यक्त हुआ। कतिपय मूर्तियों में यक्ष के हाथ में चमर भी दिखाया जाता था। यह विशेषता दीदार गंज की यक्षी में स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। इसका तात्पर्य यह था कि यक्ष-देवता महाराजा कुबेर के अनुचर थे। उनके बायें हाथ में अंकित घट या निधि भी कतिपय मूर्तियों में देखी जा सकती है जो अमृतत्व का लक्षण था। यक्षों के अनेकशः नाम थे; जिनमें से पञ्चवीरों के नाम चुन लिए गये तथा उसी से पञ्चवीर संज्ञा का उद्भव हुआ। इन पाँचों वीरों के नाम का उल्लेख इस प्रकार प्राप्त होता है- मणिभद्र, पूर्णभद्र, दीर्घभद्र, यक्षभद्र तथा स्वभद्र।

लोक-कला की परम्परा का प्रमाण उन महाकाय यक्ष-मूर्तियों द्वारा प्राप्त होता है जो मथुरा से उड़ीसा, वाराणसी से विदिशा तथा पाटलिपुत्र से शुर्पारक तक के विस्तृत क्षेत्रों में पायी जाती हैं। इन मूर्तियों की अपनी निजी शैली है। अतिमानवीय महाकाय ये मूर्तियाँ खुले आकाश के नीचे स्थापित की जाती थीं तथा इनका निर्माण चारों तरफ से कोर करके किया जाता था। उल्लेखनीय है कि इनमें सम्मुख दर्शन की विशेषता उपलब्ध

---

1 अथर्ववेद, 10.2,32

2 अग्रवाल, वासुदेव शरण, भारतीय कला, पृष्ठ 129

होती है। इनकी शक्ति, महाप्रमाणकाय तथा प्रभविष्णु रूप से सूचित होता है कि ये देवताओं की मूर्तियाँ हैं।[1] इस प्रकार की यक्ष यक्षी प्रतिमाएँ जिन स्थानों से प्राप्त होती हैं, उनमें मथुरा जिले के परखम ग्राम से प्राप्त यक्ष-मूर्ति, मथुरा जिले के बड़ौदा ग्राम से प्राप्त यक्ष, मथुरा जिले में झींग का नगरा ग्राम से प्राप्त यक्षी, भरतपुर जिले में स्थित नोह ग्राम से प्राप्त यक्ष, वेसनगर (भोपाल) से प्राप्त यक्षी, ग्वालियर जिले में प्राचीन पद्मावती तथा वर्तमान पवैया से प्राप्त यक्ष, पटना शहर में दीदारगंज से प्राप्त चामरग्राहिणी यक्षी, पटना से ही प्राप्त दो यक्ष प्रतिमाएँ वेसनगर की यक्षी (तेलिन), राजघाट से प्राप्त (वाराणसी) त्रिमुख यक्ष, शूर्पारक से प्राप्त यक्ष-मूर्ति तथा लगभग बारह फीट ऊँचा विदिशा से प्राप्त यक्ष-प्रतिमा का उल्लेख किया जा सकता है। दाहिनी कलाई तथा अन्य थोड़े बहुत चोट खाये हिस्सों के अलावा यह प्रतिमा अच्छी दशा में प्राप्त होती है। इसके एक ओर सिर पर उठी हुई पगड़ी विद्यमान है। उल्लेखनीय है कि परखम तथा नोह यक्ष के सभी विवरण इसमें दिखाई देते हैं। इस यक्ष-प्रतिमा में उष्णीय अर्थात् पगड़ी, बड़े आकार के कुण्डल तथा लम्बा हार एवं कलाइयों में वलयाकार कंगन स्पष्टतः परिलक्षित होता है। यह उल्लेखनीय है कि इसी प्रकार के आभूषण तथा वस्त्रों का अंकन साँची स्तूप के उत्तरी तोरण द्वार पर उत्कीर्ण कुबेर प्रतिमा में प्राप्त होता है। विदिशा से प्राप्त यह प्रतिमा कला में कुबेर का प्राचीनतम अंकन है। इसी प्रकार उड़ीसा में शिशुपालगढ़ से प्राप्त कुषाण कालीन यक्ष-मूर्ति कुरुक्षेत्र में आमीन से प्राप्त यक्ष-मूर्ति, पटना जिले से प्राप्त दोमुखी यक्षी तथा मेहरौली से प्राप्त यक्षी का विशेष उल्लेख किया जा सकता है।[2]

इस प्रकार अनेक स्थानों से प्राप्त इन मूर्तियों की विशेषतओं को शैली की द ृष्टि से निम्न रूप में निरूपित किया जा सकता है-

(i) ये महाकाय अथवा महाप्राण हैं तथा मांसपेशियों की बलिष्ठता तथा दृढ़ता का उनमें आभास होता है।

---

1 तत्रैव, भारतीय कला, पृष्ठ 122

2 अग्रवाल, वासुदेव शरण, भारतीय कला, पृष्ठ 122-23

(ii) इन प्रतिमाओं को चतुर्मुख दर्शन के आधार पर काटकर बनाया गया है तथा वे पृथक रूप में खड़ी हैं, किन्तु उनके दर्शन का प्रभाव सम्मुखीन है, ऐसा प्रतीत होता है कि शिल्पकार ने इनको सम्मुख दर्शन के लिए ही तराशा हो।

(iii) इनका वेश सिर पर पगड़ी, कन्धों तथा भुजाओं पर उत्तरीय जिसका बन्धन वक्ष पर भी दिखाया गया है। ये नीचे धोती पहने हुए हैं जो कटि-प्रदेश में काय बन्धन या मेखला से सुदृढ़ बँधी हुई है।

(iv) इन मूर्तियों के आभूषणों में कानों में भारी कुण्डल, गले में भारी कण्ठा (ग्रैवेयक), वक्ष पर चपटा तिकोना हार तथा भुजाओं पर अंगद है।

(v) मूर्तियों को थोड़ा स्थूल या घटोदर दिखाया गया है- जैसा कि परखम तथा पवाया की मूर्तियों में हमें देखने को मिलता है।

(vi) यक्ष तथा यक्षिणियों की मूर्तियाँ द्विभुज दिखाई पड़ती हैं। प्रायः इनके हाथ में थैली रहती है, यत्र तत्र शंख का भी अंकन दृष्टिगोचर होता है। इसके अतिरिक्त कतिपय प्रतिमाओं में कमर में खोंसी हुई छुरी भी देखी जा सकती है।

(vii) इन यक्ष प्रतिमाओं में से कई तो मणिभद्र मूर्तियाँ हैं जो कुबेर के मित्र और वैसे ही प्रभावशाली थे।

इस प्रकार भारतीय शिल्प की प्राचीनतम मूर्तियों में इनकी रचना शैली अग्रस्थानीय है। ये सभी प्रतिमाएँ देवता की असीम शक्ति की प्रतीक हैं। इनकी स्थूल, भरी-पूरी आकृति जीवन की उस खुली, गर्वीली तथा उच्छृंखल भावुकता की अभिव्यक्ति करती है जो उसकाल की विजयिनी भारतीय जाति की विशेषता थी। ये आकृतियाँ नाम मात्र की दैवीय जान पड़ती हैं। वस्तुतः ये आकृतियाँ रक्तमांस के नर-नारियों के नमूने हैं जिनमें दैवीय चमत्कार भर दिया गया था।

कुबेर को भरहुत से प्राप्त एक अभिलेख में 'कुपिरो यक्खो' कहा गया है तथा उनकी प्रतिमा भी भरहुत स्तूप के तोरण पर प्राप्त हुई है। भरहुत और साँची स्तूप में उत्कीर्ण यक्ष-मूर्तियों की शैली में प्राचीन यक्ष -परम्परा ही पायी जाती है। ये शुङ्गकालीन यक्ष पूर्वकालिक यक्ष-मूर्तियों की ही परम्परा में निर्मित हैं। भरहुत में उत्कीर्ण लेखों की

सहायता से अनेकशः यक्ष-यक्षियों की पहचान की जा सकी है। भरहुत के शिल्पियों ने उनकी स्वतंत्र पहचान हेतु उनके अलग-अलग वाहन निर्धारित किये हैं। विरूढ़क-यख (विरूढ़क-यक्ष), कुपिरो (कुबेर-वैश्रवण)[1], गंगेय (पालि-गंगितो), सुचिलोम तथा सुपवस (सुप्रवस) इन सभी के हाथ नमस्कार मुद्रा में हैं तथा उनकी वस्त्र सज्जा में भी समानता है किन्तु उनके आधार भाग पर बने वाहन अलग-अलग हैं तथा कुबेर एक बड़े उदर वाले यक्ष की पीठ पर खड़े हैं।

कुबेर के अनुचरों के रूप में यक्षों को धन एवं अमृत का रक्षक देव माना गया है। इस प्रकार की एक आकृति साँची स्तूप पर विशेष रूप से दर्शनीय है। यहाँ कूर्म-पृष्ठ पर एक यक्षी की आकृति है जिसके हाथों में पद्मलता है तथा जिसपर हंस बैठे हुए हैं। पद्मनाल यक्ष की नाभि से उद्भूत होता दिखायी दे रहा है। साँची स्तूप संख्या तीन के तोरण और वेदिका- स्तम्भ पर मालाधारी यक्षों को उत्कीर्ण किया गया है। प्रस्तुत यक्षाकृति मथुरा, गान्धार और अमरावती में कालान्तर में अंकित यक्षों का पूर्वाभ्यास प्रतीत होती है।

कुबेर के व्यक्तित्व एवं प्रतिमापरक लक्षण साहित्य में अनेकशः प्राप्त होते हैं। कुबेर का शाब्दिक अर्थ है - कुत्सित आकृति वाला।[2] यद्यपि बौद्ध ग्रन्थों में कुबेर की कुत्सित आकृति से सम्बन्धित कोई सन्दर्भ नहीं प्राप्त होता। फिर भी कुबेर को बत्तीस लक्षणों से युक्त तथा सौन्दर्य से युक्त बताया गया है। [3] कुबेर के बोधिसत्व के जन्म के समय उत्तर दिशा से आने का विवरण जो ललितविस्तर में प्राप्त होता है, उससे कुबेर के जटिल तथा योद्धा रूप का संकेत प्राप्त होता है। इन्हें धनुष, तीर, तलवार, बर्छी, भाला, त्रिशूल, चक्र, कनय तथा भिन्दिपाल आदि अस्त्र-शस्त्र लिए हुए तथा वर्म और कवच

---

1 कुबेर यक्ष, भरहुत स्तूप, पिलर रिलीफ, प्रथम शताब्दी ई० पू०

2 कुत्सया कुप्यता शप्तं कुशरीरमजायत्।

कुबेरः कुशरीरत्वात्स नाम्ना धनदः स्मृतः।।

भविष्य पुराण, 1.124.28

3 कनिघंम, द स्तूप आफ भरहुत, पृष्ठ 22

पहने हुए चित्रित किया गया है।[1] परन्तु कुबेर की प्रतिमाओं में ये सम्पूर्ण विशेषताएँ एक साथ प्राप्त नहीं होतीं। महाभारत में कुबेर को सुनहले रंग का कहा गया है जिसकी आभा स्वर्ण किरणों के समान थी तथा उन्हें ऋद्धि के साथ प्रदर्शित करने का उल्लेख प्राप्त होता है ।[2] अन्यत्र कुबेर को लक्ष्मी के साथ संयुक्त रूप से प्रदर्शित करने का विवरण भी प्राप्त होता है तथा लक्ष्मी को उनकी पत्नी कहा गया है। [3] भद्रा को भी महाभारत में उनकी पत्नी स्वीकार किया गया है।[4]

मत्स्यपुराण में कुबेर के लक्षणों का विस्तृत विवरण प्राप्त होता है जिसने कुबेर के प्रतिमास्वरूप का निर्धारण करने में महत्वपूर्ण भूमिका निर्मित की। इसमें कुबेर के दोनों कानों को कुण्डल से अलङ्कृत कहा गया है। उन्हें महोदर अर्थात् विस्तृत उदर वाले, अष्ट निधियों से युक्त, गुह्यकों से घिरे हुए, हार तथा केयूर से सुशोभित, श्वेतवस्त्र धारण किये हुए तथा नरयुक्त विमान पर आसीन रूप से प्रदर्शित करने का विवरण प्राप्त होता है। [5]

---

1 ललित विस्तर, पृष्ठ 237

2 महाभारत, 3.139.8

3 तत्रैव, 3.168.13

4 तत्रैव, 1.199.6

5 कुबेरञ्च प्रवक्ष्यामि कुण्डलाभ्यामलंकृतम्।
महोदरं महाकायं निद्ध्यष्टक समन्वितम्।।
गुह्यकैर्बहुभिर्युक्तं धनव्ययकरैस्तथा।
हारकेयूर रचितं सिताम्बरधरं सदा।।
गदाधरञ्च कर्त्तव्यं वरदं मुकुटान्वितम्।
नरयुक्तविमानस्थ एवं रित्या च कारयेत्।।

मत्स्य पुराण, नानादेव प्रतिमावर्णनम्, 260,20-22

बृहत्संहिता में कुबेर को द्विभुज, नरवाहन से युक्त अर्थात् मनुष्य के ऊपर प्रदर्शित करने का विधान प्राप्त होता है तथा उनकी घटोदर विशेषता वर्णित है। उन्हें किरीटधारी (मस्तक पर मुकुट) के रूप में भी दिखाये जाने का उल्लेख प्राप्त होता है। [1] अग्निपुराण में कुबेर को सभी आभूषणों से सुसज्जित तथा मेष संस्थित अर्थात् उनका वाहन मेष के रूप में अंकित किया गया है।[2] 'गदी कुबेरौ मेषस्थ' अर्थात् उनकी गदी उपाधि स्पष्ट रूप से उनके प्रिय अस्त्र गदा का अभिव्यञ्जक प्रतीत होता है। अग्निपुराण में सभी दिक्पालों को द्विभुज भी कहा गया है। [3]

विष्णु धर्मोत्तर पुराण में कुबेर के प्रतिमा लक्षणों का विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है। उन्हें पद्मपत्र की आभा के समान, सर्वाभरणभूषित, लम्बोदर, चार भुजाओं से युक्त, पिंगल लोचन, अपीच्य अर्थात् उदीच्य वेशधारी, कवच धारण करने वाला तथा उदर तक विस्तृत हार को धारण करने वाला कहा गया है।[4] विष्णुधर्मोत्तर पुराण में उनके मुख में दो दाँतों का प्रदर्शन करने का उल्लेख मिलता है। उनकी श्मश्रुधारी उपाधि भी प्राप्त होती

---

1 नरवाहनः कुबेरो वामकिरीटी बृहत्कुक्षिः।

वृहत्संहिता, 57.57

2 मकरे वरुणः पाशी वायुर्ध्वजधरोमृगे।
गदी कुबेरो मेषस्थ ईशानश्च जटी वृषे।।

अग्निपुराण, 51.15

3 "द्विबाहवो लोकपालाः।"

तत्रैव, 51.16

4 "कर्त्तव्यः पद्मपत्राभो धनदो नरवाहनः।
चामीकराभो धनदः सर्वाभरण भूषणः।।
लम्बोदरश्चतुर्बाहुर्वामपिंगल लोचनः।
अपीच्यवेशः कवची हारभारार्पितोदरः।।"

विष्णु धर्मोत्तर पुराण, खण्ड 3, अध्याय 53, श्लोक 1-2, पृष्ठ 341

है तथा उनकी बायीं गोद में वर प्रदान करने वाली द्विभुजी ऋद्धि देवी का अंकन करना चाहिए।[1] देवी के बायें हाथ में रत्नपात्र तथा उनका दाहिना हाथ कुबेर की पीठ पर रखे हुए अंकन करना चाहिए पैर में सिंह के अङ्कन से युक्त नूपुर का अङ्कन करना चाहिए तथा शंख एवं पद्म नामक निधियों का उनके वास्तविक रूप में अंकन करना चाहिए। अपनी दोनों बायीं भुजाओं में वे शक्ति तथा गदा धारण करते हैं। [2] इस पुराण में कुबेर के राजत्व की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए स्वर्ण नामक उत्तम धन को राज्य के धन के रूप में वर्णित किया गया है तथा सभी आभूषणों से संयुक्त उसे ब्राह्मण कहा गया है। कुबेर के द्वारा धारण की गयी शक्ति और गदा क्रमशः राजशक्ति एवं दण्डनीति के परिचायक हैं।[3]

---

1 ''द्वे च दंष्ट्रे मुखे तस्य कर्त्तव्ये श्मश्रुधारिणः।
वामेन विनता कार्या मौलिस्तस्यारिमर्दिनी।।
वामोत्संग गता कार्या ऋद्धिर्देवी वरप्रदा।
देव पृष्ठगतं पाणिं द्विभुजायास्तु दक्षिणम्।''

तत्रैव, 3.53,3-4. पृष्ठ 341

2 ''रत्नपात्रकरं कार्यं वामं रिपुनिपूदन।
गदा शक्ति च कर्त्तव्ये तस्य दक्षिण हस्तयोः।।
सिंहाङ्क लक्षणं वृत्तं शिबिकामपि पादयोः।
शंख पद्मौ निधी कार्यौ स्वरूपौ निधि संस्थितौ।।''

तत्रैव, 3.53.5-6 पृष्ठ 341

3 ब्राहमणं कथितं तस्य सर्वाभरण साधनम्।
सुवर्ण नाम विख्यातं धनानामुत्तमं धनम्।।
तस्यानुग्रहतो धत्ते वासः कनकसन्निभम्।
शक्तिरेव स्मृता शक्तिर्दण्डनीतिस्तथा गदा।।

तत्रैव, 3.53.8-9

उनके शरीर के समीप ही शंख एवं पद्म को प्रदर्शित करना चाहिए।[1] उनके हाथ में स्थित रत्नपात्र उनके विविध गुणों के परिचायक हैं।[2] उनके पैरों के नीचे स्थित 'नर', राज्य का प्रतीक है जिस पर कुबेर शासन करते हैं।[3] चूंकि कुबेर धन के देवता हैं इसलिए नर रूपी राज्य के ऊपर स्थित होने के कारण अर्थव्यवस्था के प्रतीक हैं। उनके दोनों दाँत निग्रह और अनुग्रह के प्रतीक है।[4] विष्णुधर्मोत्तर पुराण के इस विवरण से कई महत्वपूर्ण तथ्य ज्ञात होते हैं। प्रारम्भिक स्तर पर कुबेर की द्विभुज प्रतिमाएँ ही बनती थीं। अन्य पौराणिक देवताओं की भाँति उनके देवत्व और अलौकिकत्व को प्रदर्शित करने के लिए उनके चतुर्बाहु स्वरूप का विधान प्रस्तुत किया गया है। उनको अपीच्य अथवा उदीच्य वेशधारी कहना विदेशी विशेषता गान्धार शैली के प्रभाव का परिचायक है। इसी प्रकार उनके मुख में केवल दो विशाल दाँतों का अंकन उस प्राचीन यक्ष -परम्परा का परिचायक है जिसके प्रभाव में कुबेर की प्रतिमाएँ प्रारम्भिक काल से ही बनती रही है। 'पद्मपत्राभ' विशेषण

---

1 शंख पद्मान्त निष्कान्तं वदनं तस्य पारर्वतः।
अनिरुद्धस्तुविज्ञेयस्त्वया देवो धनाधिपः।।
तत्रैव, 3.53.7

2 लोकयात्रा च कथिता ऋद्धिर्ज्ञेयास्वभावतः।
तत्करे रत्नपात्रं तु गुणाधारं प्रचक्षते।।
तत्रैव, 3.53.10

3 नरं राज्यं विजानीहि यत्रस्थस्तु सदा विभुः।
स्वरूपतस्तु विज्ञेयौ शंखपद्मौ तथा निधी।।
तत्रैव, 3.53.11

4 वित्ततोंशो जयत्यस्मिंस्माभ्यां प्रसवतेऽयुतः।
अर्थ सक्षमया ज्ञयेः केतुः सिंहाङ्कलक्षणः।।
निग्रहानुग्रहे दंष्ट्रे तस्य तात महात्मनः।
यक्षाधिपस्येतदनन्त दंष्ट्रं नामे वने यक्षनदस्य राजन्।।
तत्रैव, 3.53.12-13

सम्भवतः कुबेर के वस्त्र के लिए प्रयुक्त है तथा 'चामीकराभ' सम्भवतः उनके शरीर के वर्ण के लिए प्रयुक्त हुआ है।

हेमाद्रि ने कुबेर की विशेषताओं को दूसरे यक्षों के साथ अत्यन्त महत्वपूर्ण रूप में वर्णित किया है। इनके अनुसार यक्षों को वृकोदर अथवा लम्बोदर, द्विभुज अपने हाथों में निधियों को लिए हुए तथा अत्यधिक मद्यपान के कारण भयंकर दिखाई देने वाले के रूप में चित्रित करना चाहिए तथा उनके स्वामी वैश्रवण को हाथ में मुग्दर अथवा गदा को लिए हुए प्रदर्शित करना चाहिए।[1] अपराजितपृच्छा में कुबेर को गजवाहन, चतुर्भुज, गदा, निधि, बीजपूरक तथा कमण्डलु को लिए हुए दिखाया जाना चाहिए ऐसा उल्लेख प्राप्त होता है।[2]

अंशुमदभेदागम में कुबेर को द्विभुज, यक्षेश अर्थात् यक्षों में सर्वश्रे ष्ठ रूप में आभूषणों से सुसज्जित, हाथ क्रमशः वरद तथा अभय मुद्रा में एवं बायें हाथ में मुग्दर अथवा गदा को लिए हुए वर्णित किया गया है। इनके मस्तक पर करण्डमुकुट तथा इनके उत्तरीय वस्त्र धारण करने का भी उल्लेख मिलता है।[3] इनके दाहिने हाथ में शंख निधि तथा बायें हाथ में पद्म निधि का अंकन होना चाहिए तथा बायें तरफ ही पत्नी ऋद्धि देवी का अंकन होना चाहिए। इनके आसन-पीठ पर दो नेत्र वाले मेष का इनके वाहन के रूप में अंकन तथा लाल वस्त्रों से युक्त सौम्य रूप में दोनों निधियों से युक्त इनको

---

1 बनर्जी, डेवलपमेण्ट आफ हिन्दू आइकोनोग्राफी, पृष्ठ 338-39

2 गदां निधिं बीजपूरं करैर्विभ्रत्कमण्डलुम्।
गजारूढ़ः प्रकर्त्तव्यः सौम्यो यो नरवाहनः।।
अपराजितपृच्छा, 37.4

3 धनदस्सर्वयक्षेशास्सर्वाभरणभूषितः।
तप्तकाञ्चनसङ्काशो हस्तद्वयसमन्वितः।।
वरदाभयहस्तश्च गदां वै वामहस्तके।
करण्डमुकुटोपेतस्सितवासोत्तरीयकः।।
राव, टी०ए० गोपीनाथ, ई०एच० आई०, II, परिशिष्ट 'ब' पृष्ठ 263

प्रदर्शित करना चाहिए।[1] कुबेर के चतुर्भुज होने की स्थिति में पाश्वों में आसीन शक्ति विभवा तथा वृद्धि का आलिंगन करते हुए शेष दो हाथों में गदा तथा शक्ति के साथ प्रदर्शित किया जाना चाहिए। अन्य रूपों में यह अपनी पत्नी तथा शंख एवं पद्म दो निधियों के साथ भी दिखाये गये हैं।[2] यहाँ पर गदा एवं शक्ति का अंकन इनके योद्धा एवं राज शक्ति का परिचायक प्रतीत होता है।

शुप्रभेदागम देवता कुबेर को दो भुजाओं से युक्त, श्याम रूप वाला, भंयकर, लालवस्त्र तथा रक्त-लोचन से युक्त एवं अपने एक हाथ में गदा को लिए हुए चित्रित करता है।[3] शिल्परत्न में कुबेर को शिव (हर) का मित्र बताया गया है जो द्रव्य, हार से विभूषित रहते हैं तथा किरीटमुकुट, कुण्डल एवं श्वेत वस्त्र को धारण करते हैं। ये महोदर तथा लम्बी भुजाओं वाले हैं तथा मनुष्यों द्वारा खींचे जाने वाले रथ पर आरूढ़ है। इनको

---

1 दक्षभागे शंखनिधिर्वामे पद्मनिधिस्तथा।
धनदस्य तु वामे तु देवीं कुर्यात्सलक्षणाम्।।
पद्मपीठो परिष्ठात्तु द्विनेत्रो मेषवाहनः।
रक्ताम्बरधरस्सौम्यश्शंखपद्मनिधिर्युतः।।
तत्रैव, ई०एच०आई०, II, परिशिष्ट'ब' पृष्ठ 263

2 शंखपद्मनिधी द्वौ च भूताकारो महाबलौ।
असीनौ पद्मपीठे तु पद्महस्तौ द्विजोत्तमः।।
करण्डमुकुटोपेतौ सितावासोत्तरीयकौ।
धनदं ह्येवमाख्यातं प्राग्वद्रुद्रांश्च कल्पयेत्।।
तत्रैव, ई०एच०आई०, II, परिशिष्ट ब , पृष्ठ 263

3 यक्षेशं तु गदाहस्तं श्यामरूपं भ्यावहम्।
द्विबाहुं रक्तवस्त्राढ्यं रक्ताक्षं रक्त पाणिनम्।।
तत्रैव, ई०एच०आई०, II, परिशिष्ट ब, पृष्ठ 264

अष्टनिधियों गदा तथा गुह्यकों से युक्त रूप में चित्रित करना चाहिए। [1] पूर्वकारणागम के अनुसार कुबेर देवता को शंख एवं पद्मनिधियों के साथ हाथ में गदा को लिए हुए तपाये गये सुवर्ण के वर्ण के समान मुकुट, कुण्डल, हार तथा केयूर से युक्त एवं नरवाहन के रूप में चित्रित किया जाना चाहिए।[2] रूपमण्डन में कुबेर के प्रतिमालक्षण रूप को विशिष्ट रूप में वर्णित किया गया है। इन्हें चतुर्भुज रूप में प्रदर्शित किया गया है। इनके हाथों में गदा, बीजपूरक, निधि, चकोतराफल तथा कमण्डलु को दिखाया गया है। उल्लेखनीय है कि रूपमण्डन में इन्हें गजवाहन तथा नरवाहन दोनों रूपों में प्रदर्शित किया गया है। [3] कुबेर का शाब्दिक अर्थ है निम्न या भोंड़ा शरीर वाला (कुत्सितं वेरं शरीरं यस्य सः कुबेरः)। कदाचित्, इसी कारण से प्रतिमाविधान में इन्हें थुलथुले शरीर वाला तथा धनपति एवं यक्ष स्वामी होने के नाते धन की थैली लिए एक भरे -पूरे सेठ के रूप में दिखलाते

---

1 हरमित्रं प्रवक्ष्यामि द्रव्यहारविभूषिम्।
किरीटकुण्डलयुक्तं श्वेताम्बरविराजितम्।।
नरयुक्तविमानस्थं गदापाणिं वरप्रदम्।
महोदरं महाबाहुं गौरवर्णं मनोहरम्।।
अष्टभिर्निधिभिर्युक्तं द्रविणव्यग्र पाणिभिः।
समन्ताद् गुह्यकैर्युक्तं चित्रकर्मणि लेखयेत् ।।

तत्रैव, ईएच०आई०, II , परिशिष्ट ब, पृष्ठ 264

2 मुकुटी कुण्डली हारी केयूरी नरवाहनः।
यक्षराजः कुबेरोऽयं तप्तकाञ्चनसन्निभः।।
शंखपद्म निधियुक्तोगदाहस्तो निधिश्वरः

तत्रैव, ई०एच०आई०, भाग 2, पृष्ठ 265

3 गदानिधि बीजपूरकमण्डलुधरः।
गजारूढ़ प्रकर्त्तव्यः सौम्ययो(?) नरवाहनः।।

तत्रैव, ई०एच०आई०, भाग 2, पृष्ठ 265

हैं।[1] कुबेर को उत्तर–दिशा का नवनिधि अधिपति माना गया है। वे यक्षों के अधिपति तथा देवों के कोषाध्यक्ष हैं। बौद्ध सम्प्रदाय में कुबेर को 'धनाध्यक्ष' अथवा जम्भल के रूप में चित्रित करने का विधान मिलता है। उनके बायीं ओर पत्नी हारीति का अंकन तथा उन्हें गजारूढ़ प्रदर्शित किया जाता है। नरयुक्त विमान या बकरी से जुती गाड़ी भी उनका वाहन है। उनका वर्ण श्वेत है तथा अन्य विद्वान् उन्हें कई वर्णवाला मानते हैं। उनका पेट बड़ा है तथा उनकी चार भुजाएँ हैं। उनके ऊपर के दो हाथों में निधि–द्रव्य की थैली का अंकन होता है। विभिन्न शिल्पशास्त्रियों के मत में वह फल, गदा, कुम्भ तथा कमण्डल को धारण करते हैं। उनका प्रमुख आयुध गदा है।[2]

इस प्रकार रूपमण्डन में कुबेर को चतुर्भुज बताया गया है किन्तु द्विभुज कुबेर की प्रतिमा बनाने का विधान भी प्राचीन है। वृहत्संहिता में इन्द्र, यम तथा कुबेर को द्विभुज ही बताया गया है।[3] अग्नि तथा मत्स्य पुराण में भी कुबेर को द्विभुज बताया गया है।[4] मानसोल्लास में भी यह उल्लेख प्राप्त होता है कि सभी दिशाधिपति द्विभुज हैं तथा कुबेर का वाहन गज तथा नर दोनों हैं।[5] उल्लेखनीय है कि विष्णुधर्मोत्तर में ही सर्वप्रथम चतुर्भुज लोकपालों की सूक्ष्म कल्पना मिलती है[6] किन्तु यहाँ केवल इन्द्र, यम, वरुण तथा कुबेर का ही विवेचन प्राप्त होता है। समरांगण सूत्रधार में भी इसी प्रकार का विवेचन प्राप्त होता है। चतुर्भुज कुबेर की कल्पना अपराजितपृच्छा में भुवनदेव ने विशद रूप में की है तथा इसी परम्परा का निर्वाह सूत्रधारमण्डन ने रूपमण्डन में किया है।

---

1 राव, टी०ए० गोपीनाथ, ई०एच०आई०, भाग 2, पृष्ठ 532

2 पद्मश्री, प्रभाशंकर ओ०सोमपुरा, भारतीय शिल्प संहिता, दिक्पाल स्वरूप, पृष्ठ 146-47

3 बृहत्संहिता, 57.57

4 अग्निपुराण, 51.16

5 मानसोल्लास, 1.3, पृष्ठ 772-798

6 विष्णुधर्मोत्तर, 3.50-53

सम्भवतः गुजरात एवं राजस्थान में चतुर्भुज कुबेर की प्रतिमाओं के निर्माण की व्यापक मान्यता थी। कुबेर के वाहन विचार में रूपमण्डन तथा मत्स्य पुराण में किञ्चित् भिन्नता है। रूपमण्डन में कुबेर के वाहन के रूप में जहाँ गज एवं नर दोनों का उल्लेख है, वहीं मत्स्यपुराण में कुबेर का वाहन केवल नर ही बताया गया है। अग्निपुराण में कुबेर का वाहन न तो नर है न तो गज, अपितु मेष है। उल्लेखनीय है कि रूपमण्डन तथा अपराजित पृच्छा का वाहन विचार मानसोल्लास पर आधारित प्रतीत होता है।

कुबेर के वर्ण को स्वर्णिम पीत बताया गया है तथा अन्य स्त्रोत इन्हें पिंगल वर्णवाला भी कहते हैं। महाभारत में कुबेर को सूर्य के समान लाल वर्ण वाला कहा गया है।[1] 'तप्तकाञ्चनसङ्काशो ' कह करके तपे हुए स्वर्ण के सदृश कुबेर के वर्ण को स्वीकार किया गया है।[2] इनके अधोवस्त्र को लाल तथा ऊपरी वस्त्र को सफेद बताया गया है। अंशुमदभदागम में भी इन्हें 'रक्ताम्बरधरसौम्य' कहकर उनके रक्त एवं श्वेतवस्त्रों की ओर संकेत किया है। [3] कुबेर का ऊपरी श्वेत वस्त्र सम्भवतः उनके सौम्य स्वभाव को प्रदर्शित करता है। वह विभिन्न आभूषणों यथा-किरीट अथवा करण्ड-मुकुट, कुण्डल तथा स्वर्ण सिक्कों से बनाये गये हार को धारण करते हैं। वह प्रायः द्विभुज तथा कभी-कभी चतुर्भुज, एक हाथ में गदा अथवा मुग्दर को लिए हुए शंख एवं पद्म निधियों के साथ तथा कभी-कभी अष्टनिधियों के साथ भी प्रदर्शित किये गये हैं। कभी-कभी इन्हें अत्यन्त भयङ्कर दिखाया गया है तथा वह गजारूढ़ हैं। प्रायः विभिन्न ग्रन्थों में कुबेर को लम्बोदर अथवा महोदर, नरवाहन (मनुष्य की आकृति पर बैठे हुए), धन के स्वामी तथा अनेकशः आभूषणों को धारण किये हुए प्रदर्शित किया गया है। कुबेर धन के देवता हैं तथा इनहें समृद्धिशाली व्यक्ति के रूप में दिखाया गया है। इन्हें आभूषणों से सुसज्जित, हाथ में धन की थैली तथा दो निधियों (शंख एवं पद्म), कभी-कभी सभी निधियों के

---

1 महाभारत, 3.139.8

2 राव, टी०ए०, गोपीनाथ, ई०एच०आई०, भाग 2, पृष्ठ 535-37

3 तत्रैव, ई०एच०आई०, भाग 2, पृष्ठ 535-37

साथ प्रदर्शित किया जाता है। इनको धन एवं समृद्धि के देवता के रूप में (निधियों को धारण करने के कारण) तथा युद्ध के अस्त्र गदा को धारण करने के कारण योद्धा के रूप में चित्रित किया गया है। यह सम्भव है कि उन्होंने कोष एवं धन की रक्षा के लिए गदा को धारण किया हो। कुबेर का निवास स्थान हिमालय स्वीकार किया गया है। यह उल्लेखनीय है कि हिमालय के कुछ भागों में अभी भी ऐसी चौकियाँ निर्मित की जाती हैं जिनके पाद मानवमुखी होते हैं तथा ऐसा प्रतीत होता है कि मानो ये मनुष्यों के द्वारा उठायी जा रही है।[1]

जैन परम्परा में कुबेर को मल्लिनाथ का यक्ष स्वीकार किया गया है। इनके प्रतिमालक्षण सम्बन्धी विविध उल्लेख प्राप्त होते हैं। निर्वाण कलिका में गरुड़वदन कुबेर का वाहन गज है।[2] इन्हें चतुर्मुख, इन्द्रायुध वर्ण तथा अष्टभुज दाहिने हाथों में वरदमुद्रा, परशु तथा शूल एवं अभयमुद्रा तथा बायें में बीजपूरक, शक्ति, मुग्दर एवं अक्षसूत्र को लिए हुए दिखाया जाता है।[3] कतिपय अन्य ग्रन्थों में भी इन्हीं लक्षणों का वर्णन प्राप्त होता हैं।[4] मन्त्राधिराजकल्प में कुबेर का उल्लेख चतुर्मुख रूप में नहीं प्राप्त होता है। देवतामूर्तिप्रकरण में कुबेर को रथारूढ़ दिखाया गया है जिनके केवल छह हाथों में ही आयुधों का उल्लेख मिलता है तथा कुबेर के द्वारा शूल तथा अक्षसूत्र का उल्लेख नहीं

---

1 सहाय, भगवन्त, आइकोनोग्राफी ऑफ माइनर हिन्दू एण्ड बुद्धिस्ट डीटीज, पृष्ठ 62

2 केवल निर्माण कलिका में ही कुबेर को 'गरुड़वदन' कहा गया है।

3 ''कुबेर यक्षं चतुर्मुखमिन्द्रायुधवर्णं गरुडवदनं गजवाहनं अष्टभुजं
वरदपरशुशूलाभययुक्तदक्षिणपाणिं बीजपूरकशक्तिमुद्गराक्षसूत्रयुक्तवामपाणिं चेति ।''
निर्वाण कलिका, 18.19

4 पद्मानन्द महाकाव्य परिशिष्ट–मल्लिनाथ, 58-59; मन्त्राधिराजकल्प, 3.43; आचार दिनकर, 34, पृष्ठ 175; मल्लिनाथ चरित्रम्(विनयचन्द्र सूरिकृत), 7.1154-1156; त्रिशष्टिशलाकापुरुषचरित, 6.6.251-52

प्राप्त होता है।[1] प्रतिष्ठासारसंग्रह में कुछ इसी तरह का विवरण प्राप्त होता है। इसमें कुबेर को हस्तिवाहन, सुरेन्द्रचापवर्णसदृश तथा चतुर्मुख रूप में वर्णित किया गया है।[2] प्रतिष्ठासारोद्धार में कुबेर के हाथों में फलक, धनुष, दण्ड, पद्म, खड्ग, बाण, पाश एवं वरदमुद्रा में प्रदर्शित करने का उल्लेख मिलता है।[3]

अपराजितपृच्छा में यक्ष-कुबेर को चतुर्मुख तथा सिंह पर आरूढ़ बताया गया है तथा उनके हाथों में पाश, अंकुश, फल एवं वरदमुद्रा के रूप में दिखाया गया है।[4] इस प्रकार कुबेर के निरूपण में नाम, गजवाहन एवं मुद्गर के सन्दर्भ में पौराणिक कुबेर का प्रभाव देखा जा सकता है।[5] किन्तु जैन-परम्परा में कुबेर की मूर्ति विज्ञान परक अन्य विशेषताएँ स्वतंत्र तथा मौलिक हैं। यह उल्लेखनीय है कि जैन कुबेर के हाथ में नकुलक को प्रदर्शित करने का कोई भी वर्णन नहीं प्राप्त होता।

दक्षिण भारतीय परम्परा में भी निर्मित किये गये ग्रन्थों में कुबेर को अष्टभुज कहा गया है तथा उनका वाहन गज है। दिगम्बर साहित्यिक परम्परा में चतुर्मुख यक्ष के दाहिने हाथ में खड्ग, शूल, कटार तथा अभयमुद्रा तथा बायें हाथ में शर, धनुष, बर्छी (या गदा) और कटक मुद्रा (अथवा कोई अन्य आयुध) के प्रदर्शन का विधान मिलता है। एक श्वेताम्बर ग्रन्थ के अनुसार जिसका नाम अज्ञात है, में कुबेर को चतुर्मुख, खड्ग, खेटक,

---

1 देवतामूर्तिप्रकरण, 7.53

2 मल्लिनाथस्य यक्षेशः कुबेरो हस्तिवाहनः।
सुरेन्द्रचापवर्णोसावष्टहस्तश्चतुर्मुखः।।
प्रतिष्ठासारसंग्रह, 5,58

3 सफलकधनुर्दण्डपद्म खण्डगप्रदरसुपाशवरप्रदाष्टपाणिम्।
गजगमनचतुर्मुखेन्द्र चापद्युति कलशांकनतंयजेकुबेरम्।।
प्रतिष्ठासारोद्धार, 3.147, द्रष्टव्य, प्रतिष्ठातिलकम्, 7.19, पृष्ठ 337

4 अपराजित पृच्छा, 221.53

5 भट्टाचार्य, बी०सी०, जैन आइकोनोग्रैफी, पृष्ठ 113

बाण, धनुष, मातुलुंग, परशु, वरदमुद्रा तथा शण्डमुद्रा (?) से युक्त दिखाने का उल्लेख किया गया है। इस प्रकार उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि दक्षिण भारतीय परम्पराएँ उत्तर भारतीय दिगम्बर परम्परा से प्रभावित थीं। यह उल्लेखनीय है कि कुबेर-यक्ष की कोई स्वतंत्र या जिन-संयुक्त मूर्ति नहीं मिली है।

कुबेर के जम्भल स्वरूप के प्रतिमा लक्षण बौद्ध ग्रन्थों में भी प्राप्त होता है। अक्षोभ्य तथा रत्नसंभव इस परम्परा के अनुसार इसके दो रूप हैं। रत्नसंभव प्रकार के जम्भल देवता के दाहिने हाथ में नेवला तथा बायें हाथ में फल प्रदर्शित किया जाता है। नेवला निधि का सूचक है जिसको दबाने से वह बाहर निकलता है।[1] जम्भल को स्वतंत्र या शक्ति के साथ प्रदर्शित किया जाता है। शक्ति के साथ होने पर नीचे आठ दलों वाले दो कमल होते हैं। वह आभूषणों से सुसज्जित हैं। जम्भल को बड़े उदर वाला, सुनहले पीतवर्ण का दिखाया गया है। उनके दाहिने तथा बायें हाथ में क्रमशः फल तथा नेवला होना चाहिए। वसुधारा के साथ वह पीत पद्म की माला धारण करते हैं। आठ दलों पर आठ यक्ष-मणिभद्र, पूर्णभद्र, धनद, वैश्रवण, केलिमली, सिविकुण्डलि, सुखेन्द्र तथा शैलेन्द्र स्थित हैं। प्रत्येक यक्ष के साथ उसकी यक्षी भी सम्बद्ध है जिनमें चित्रकाली, दत्ता, सुदत्ता, आर्या, सुभद्रा, गुप्ता देवी तथा सरस्वती इन आठ यक्षियों का उल्लेख किया जा सकता है। [2]

जम्भल को जिस समय अकेला दिखाया जाता है तो वह सुनहले वर्ण वाला होता है तथा नेवला उसके दाहिने हाथ में एवं फल को बायें हाथ में प्रदर्शित किया जाता है। कुबेर (जम्भल) की एक प्रतिमा ललितासन मुद्रा नेपाल से प्राप्त हुई है।[3] जम्भल जब अपनी शक्ति के साथ प्रदर्शित होता है तो वह तीन मुख तथा छह भुजाओं वाला होता है। वह श्वेतवर्ण वाला है। उसका दाहिने ओर का दो मुख तथा बायीं तरफ का एक मुख क्रमशः लाल तथा नीले रंग का होता है। वसुधारा को दो हाथों से पकड़े हुए जम्भल

---

1 सिंह, अमरेन्द्र कुमार, यक्ष किन्नर और दिक्पाल, पृष्ठ 179

2 बी०, भट्टाचार्य, दि इण्डियन बुद्धिस्ट आइकोनोग्राफी, पृष्ठ 237

3 सिंह, अमरेन्द्र कुमार, यक्ष, किन्नर और दिक्पाल, पृष्ठ 179

वज्रपर्यङ्क मुद्रा में आसीन रहते हैं। इनके अन्य हाथों में वज्र, असि, निधि तथा पद्म को प्रदर्शित किया जाता है। प्रत्यालीढ़ मुद्रा में जम्भल अत्यन्त भयानक स्थिति में दाहिने हाथ में खून से भरा हुआ कपाल धारण करते हैं तथा उनके वाहन कुबेर हैं। बायें हाथ में नेवला प्रदर्शित है।[1] इस प्रकार का एक उदाहरण सारनाथ से प्राप्त होता है। अन्य किसी भी स्थान से ऐसी प्रतिमा नहीं प्राप्त होती है।

कुबेर का प्राचीनतम मूर्तन भरहुत के एक स्तम्भ पर प्राप्त होता है। इसमें कुबेर घटोदर नर के ऊपर खड़े हुए प्रदर्शित किये गये हैं। यह नर कुबेर के भार से आक्रान्त दिखाया गया है। उसके दोनों हाथ आगे की ओर आधार पर टिके हुए कुबेर के भार को संभालते हुए प्रदर्शित किये गये हैं। कुबेर के दोनों हाथ नमस्कार मुद्रा में एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। कुबेर का दाहिना हाथ घुटने से किञ्चित् मुड़ा हुआ प्रदर्शित है। गले में ग्रैवेयक, कानों में कुण्डल तथा हाथों में केयूर बन्द प्रमुखता के साथ प्रदर्शित हैं। यह उल्लेखनीय है कि इसमें कुबेर के कुत्सित रूप का कहीं संकेत नहीं प्राप्त होता, बल्कि उनके चेहरे पर कोमलता तथा चारुता के भाव परिलक्षित होते हैं। प्रतिमा के समीप यह उल्लिखित- ''कुपिरो यक्खो'' लेख से यह स्पष्ट है कि यह आकृति कुबेर की ही है।[2]

साँची में भी कुबेर का अंकन प्राप्त होता है। उत्तरी तोरण द्वार के पूर्वी स्तम्भ के निचले भाग में कुबेर की विशालकाय तथा भव्य प्रतिमा उत्कीर्ण है। यहाँ पर कुबेर को स्थानक मुद्रा में प्रदर्शित किया गया है। उनका बायाँ हाथ कटि पर विन्यस्त है तथा दाहिने हाथ में मातुलुंग (बिजौरा नीबू) धारण किये हुए है। दोनों हाथों की कलाइयों में आभूषण तथा केयूर बन्द अत्यन्त प्रमुखता के साथ प्रदर्शित है। गले में हार भी विशेष रूप उल्लेखनीय है। कानों तक लटकते हुए कुण्डल तथा मस्तक पर उन्नत बन्ध के रूप में प्रदर्शित उष्णीय उल्लेखनीय है। पृष्ठ भाग से होता हुआ दोनों बाहुओं के मध्य से नीचे लटकता हुआ उत्तरीय तथा उसका किनारा अलंकृत रूप में प्रदर्शित है। कटि के बायें भाग

---

1 तत्रैव, यक्ष किन्नर और दिक्पाल, पृष्ठ 179

2 अग्रवाल, वासुदेव शरण, भारतीय कला, पृष्ठ 146-47, चित्र 204 तथा भगवन्त सहाय, पृष्ठ 62

में छुरिका का प्रदर्शन दर्शनीय है। कुबेर की मुखाकृति भी यक्ष-परम्परा में ही निर्मित प्रतीत होती है। इसमें भरहुत की भाँति सौम्यता दृष्टिगत नहीं होती। यह उल्लेखनीय है कि यक्ष प्रतिमाओं में कमर में खोंसी हुई छुरी प्रदर्शित करने की परम्परा पहले से ही विद्यमान थी। ग्वालियर संग्रहालय के मणिभद्र यक्ष, लखनऊ संग्रहालय की पलवल यक्ष-मूर्ति, विदिशा तथा नोह की यक्ष मूर्ति में कमर में खोंसी हुई छुरी की विशेषता द्रष्टव्य है।[1]

मथुरा-कला में वैश्रवण कुबेर की अनेकशः लम्बोदर प्रतिमाएँ ऐसी मिली हैं जो किंकर या गुह्यक मुद्रा में हैं, अर्थात् इनके दोनों हाथ भारवहन मुद्रा में ऊपर उठाये हुए प्रदर्शित किये गये हैं। यह भरहुत, साँची तथा पश्चिमी भारत की गुफाओं में उत्कीर्ण किन्नर प्रतिमाओं से समानता रखते हैं। कुछ परिवर्तन के साथ इसी मूर्ति को कुबेर प्रतिमा के रूप में परिवर्तित कर दिया गया जो उसी प्रकार घटोदर, सुखासन में बैठा हुआ, प्रसन्न वदन, सोने का भारी कण्ठा पहने, एक हाथ में पान-पात्र तथा दूसरे हाथ में थैली लिए हुए, किसी चिन्ता रहित तथा प्रसन्न मुद्रा वाले धनिक श्रेष्ठी की आकृति वाला प्रतीत होता है। ऐसी कुबेर प्रतिमाएँ मथुरा कला की अपनी स्वयं की उपज हैं।[2] मध्य भारत तथा गान्धार शैली में दोनों स्थानों पर इस प्रकार की प्रतिमा का अभाव है। इस मूर्ति को श्रे ष्ठी अथवा महाजन शैली की प्रतिमा हम कह सकते हैं। वास्तव में यह प्रतिमा धनपति कुबेर की प्रतिकृति या प्रतिछवि दिखायी पड़ती है। धनपति कुबेर का स्थान कैलास पर्वत पर है, ऐसा अनेकशः आपान गोष्ठियों से सम्बन्धित मूर्तियों में देखा जा सकता है तथा कैलास के समीप स्थित अलकापुरी को कुबेर की राजधानी के रूप में उल्लिखित किया गया है।[3]

---

1 जोशी, नीलकण्ठ पुरुषोत्तम, प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान, पृष्ठ 181 तथा भाष्कर नाथ मिश्र, साँची, पृष्ठ 46 तथा चित्र सं॰ 41

2 अग्रवाल, वासुदेव शरण, भारतीय कला, पृष्ठ 256

3 तत्रैव, भारतीय कला, पृष्ठ 256

मथुरा शैली की इन विशुद्ध भारतीय शैली की मूर्तियों के अतिरिक्त वे प्रतिमाएँ हैं जिनमें बाकस देवता के पान गोष्ठियों के अंकन का दृश्य एक बड़े तथा मोटे शिलापट्ट के दोनों ओर प्रदर्शित किया गया है। इन प्रतिमाओं की विशे षताएँ निम्नवत हैं-

(i) बड़े पत्थर के टुकड़े पर दोनों ओर मूर्तियाँ उकेरी गयी हैं जिनमें पान गो ष्ठी तथा मदोन्मत्त व्यक्तियों का चित्रण प्रदर्शित किया गया है।

(ii) इन प्रतिमाओं ये सबसे महत्वपूर्ण प्रतिमा कैलास पर आसीन कुबेर की है जो भारतीय परम्परा में सकच्छ धोती पहने है। इस मूर्ति के लक्षण शुद्ध भारतीय हैं। इन पर न यूनानी बाकस का प्रभाव है और न ही सिलेनस का।

(iii) परन्तु शिल्पकारों को इस तथ्य का ज्ञान अवश्य था कि इस प्रकार की प्रतिमाओं का सम्बन्ध यूनानी परम्परा से था क्योंकि पालिखेरा से प्राप्त प्रतिमा में कुबेर के बायीं ओर खड़ी हुयी स्त्री लम्बी आस्तीन की कुर्ती तथा नीचे पैरों तक का घाघरा तथा मोटे जूते पहने है जो स्पष्टतः यूनानी परम्परा के परिचायक हैं।

(iv) कुबेर के दाहिने हाथ में एक लम्बोतरा गोड़ेदार चषक है जिसमें हत्था या मुष्टि लगी हुई है।

(v) पालिखेरा की मूर्ति में एक व्यक्ति अँगूरों का गुच्छा लिए हुए है जिसका सम्बन्ध उदीच्य देशों से था।

(vi) इन सभी प्रतिमाओं के मस्तक पर एक कटोरा दिखाया गया है। पालिखेरा की मूर्ति में इसका व्यास सोलह इंच तथा गहराई आठ इंच है।

आपान गोष्ठी करते हुए वैश्रवण की प्रथम मूर्ति 1836 ई० में कर्नल स्टैसी को प्राप्त हुई थी, जो सम्प्रति इण्डियन म्यूजियम कलकत्ता में संरक्षित है। इसमें प्रधान प्रतिमा कुबेर की है जिसका पेट निकला हुआ है तथा जो मदोन्मत्त रूप में पीछे को उलट रहा है। उनके मस्तक पर अंगूर की बेल का सेहरा है तथा उनकी वेशभूषा भारतीय है, जबकि उनके अनुचरों का वेश विदेशी परम्परा से ओत-प्रोत प्रदर्शित किया गया है। [1] पालिखेरा

---

1 अग्रवाल, वासुदेव शरण, भारतीय कला, पृष्ठ 257, चित्र सं० 390

ग्राम से प्राप्त आपान गोष्ठी से सम्बन्धित वैश्रवण की प्रतिमा उल्लेखनीय है। इसके सामने की ओर कैलास पर बैठे हुए कुबेर की घटोदर मूर्ति भारतीय परम्परा में धोती को पहने हुए है तथाा पीछे की ओर भी वही व्यक्ति मदोन्मत्त असहाय दशा में चित्रित किया गया है। [1]

आपान गोष्ठी के एक दृश्य का अंकन महोली ग्राम से 1938 ई० में प्राप्त हुआ है जो प्रतिमालक्षण की दृष्टि से विशेष महत्व रखता है। इस दृश्याङ्कन में पूरी तरह से भारतीय शैली का विकास सम्भव हो सका है। यह शिलापट्ट के दोनों ओर उकेंरी गयी है तथा मथुरा की जो निजी सर्वोत्तम रूपवती शैली की विशे षता थी, इसमें पूर्णतया दृष्टिगत होती है। प्रतिमा की माप तीन फुट चार इंच x दो फुट छह इंच x एक फुट दो इंच है। इसके ऊपर भी एक कटोरा रखा गया था, जो अब पूर्णतया भग्न हो चुका है। यह पृष्ठभूमि में उकेरे हुए एक वृक्ष के ऊपर रखा गया था। इसके अग्रभाग में चार मूर्तियाँ विद्यमान हैं। मध्य भाग में स्थित स्त्री प्रतिमा मदोन्मत्त मुद्रा में कुछ नीचे को झुकी हुई प्रदर्शित की गयी है। उसका बायाँ हाथ एक कुब्जिका के कन्धे पर स्थित है जो बायें हाथ में चषक लिए हुए खड़ी है। स्त्री आकृति के पीछे खड़ा हुआ उसका पति उसकी दाहिनी भुजा पकड़े उसे गिरने से संभाल रहा है। पृष्ठभूमि में खड़ी हुई आश्चर्यमुद्रा में एक वर्षधर मूर्ति है जिसमें स्त्री तथा पुरुष दोनों के लक्षण विद्यमान हैं। [2] एक अन्य महत्वपूर्ण चित्रण में चार स्त्री-पुरुष हर्षोल्लास से नृत्य करते हुए दिखाये गये हैं। [3]

इस मूर्ति के समान ही तथा अत्यन्त प्राचीन दूसरी मूर्ति महोली से आधा मील दक्षिण-पूर्व नरोली गाँव में 1022-23 ई० में मिली थी जो अब इण्डियन म्यूजियम कलकत्ता में संरक्षित है।[4] इसके दृश्य भाग की यथावत अनुकृति एक समीप स्थित स्तम्भ (मथुरा संग्रहालय-371) पर मिलती है जो कंकाली टीले से 1914 ई० में प्राप्त हुआ था।

---

1 तत्रैव, भारतीय कला, पृष्ठ 257, चित्र सं० 389

2 अग्रवाल, वासुदेव शरण, भारतीय कला, पृष्ठ 257, चित्र सं० 391

3 तत्रैव, भारतीय कला, पृष्ठ 257, चित्र सं० 392

4 तत्रैव, भारतीय कला, पृष्ठ 257

यह स्थान भी मथुरा की ओर महो ली से लगभग दो मील दूर स्थित है। इस विवरण से यह प्रतीत होता है कि पालिखेरा, नरोली तथा महोली इन तीन गाँवों में निवास करने वाले लोग जो एक दूसरे से केवल एक मील के ही घेरे में स्थित थे, वे सभी वैश्रवण कुबेर की पान गोष्ठियों वाली मूर्तियों के बड़े प्रेमी थे तथा श्रद्धा से उनकी पूजा भी किया करते थे।[1] उल्लेखनीय है कि महोली का नाम ही मधुपल्ली था, अर्थात् वह स्थान जहाँ मधुपान के देवता का केन्द्र हो। नरोली अथवा नरपल्ली का नर शब्द भी कुबेर के यक्षों का वाचक समझना चाहिए जिसके कारण कुबेर को नरवाहन कहा गया है। इस प्रकार महोली के शिल्पी कला के सौष्ठव में सर्वश्रेष्ठ कलाकार थे। यह भी उल्लेखनीय है कि महोली में पान गोष्ठी के दृश्य से सम्बन्धित फलक 1938 ई० में एक विशालकाय बोधिसत्व मूर्ति के निकट एक चबूतरे पर वासुदेव शरण अग्रवाल महोदय को मिला था जिससे ज्ञात होता है कि कुबेर-वैश्रवण पूजा तथा बोधिसत्व पूजा में परस्पर सामञ्जस्य स्थापित हो चुका था।[2] कतिपय अन्य प्रतिमाओं में भी इन दो धार्मिक मान्यताओं का समन्वय और भी विशिष्ट एवं स्पष्ट रूप से प्रकट किया गया है। इस परम्परा की मूर्तियों में एक ओर कुबेर की बैठी मूर्ति है, जिसके बायीं ओर हारीति की मूर्ति है जो अपने एक हाथ में पान-पात्र तथा दूसरे हाथ में थैली लिए हुए है अथवा दोनों के सामने मधु (मद्य) के दो बड़े कटोरे रखे हुए है।[3]

प्रथम शती ई० का एक कुषाण कालीन चित्रफलक विशेष महत्व रखता है जो सम्प्रति मथुरा संग्रहालय में संरक्षित है।[4] इसमें अर्द्धनारीश्वर की आकृति के अतिरिक्त विष्णु तथा गजलक्ष्मी के साथ कुबेर को भी प्रदर्शित किया गया है। समूह में दूसरे

---

1 तत्रैव, भारतीय कला, पृष्ठ 257

2 अग्रवाल, वासुदेव शरण, भारतीय कला, पृष्ठ 257, चित्र सं० 375

3 तत्रैव, भारतीय कला, पृष्ठ 257

4 जर्नल ऑव यू०पी० हिस्टारिकल सोसायटी, दिसम्बर 1937, पृष्ठ 30-34
(फलक सं० 2520) जे०आई०एस०ओ०ए०, भाग-v, पृष्ठ-124, चित्र सं०- XIV.2, अग्रवाल, वी०एस०, कैटलाग आफ ब्राह्मनिकल इमजेस इन मथुरा आर्ट, पृष्ठ 41

देवताओं की तरह खड़े हुए, अपने दाहिने हाथ को अभयमुद्रा में किये हुए प्रदर्शित किया गया है। जो इनके देवत्व के प्रमाण की पुष्टि करता है। समृद्धि के प्रतीक रूप में कुबेर बायें हाथ में धन की थैली को लिए हुए है तथा बायीं ओर गदा जैसे आयुध को बगल में दबाये हुए हैं। इनकी आकृति लम्बोदर है तथा यहाँ पर इनके वाहन 'नरवाहन' का अङ्कन नहीं प्राप्त होता है।

मथुरा–कला की उसी समय की कुबेर की एक प्रतिमा गोसनखेड़ा नामक स्थान से प्राप्त हुई है, जो मथुरा संग्रहालय में सुरक्षित है। इस आकृति में कतिपय विशेषताएँ प्राप्त होती है जो शीघ्र ही न केवल पौराणिक विचारधारा में अपितु बौद्ध एवं जैन परम्परा की कुबेर की आकृतियों में भी व्यापक रूप से प्रतिष्ठित हो गयी। इस आकृति में कुबेर के दाहिने हाथ को अभयमुद्रा में तथा बायें हाथ में धन की थैली लिए हुए तथा बायीं ओर नीचे बगल में लम्बी छड़ी को दबाये हुए प्रदर्शित किया गया है। यहाँ कुबेर को थोड़ा सा आगे निकला हुआ पेट वाला दिखाया गया है।[1]

मथुरा के चारों तरफ से प्रचुर संख्या में कुबेर की प्रतिमाएँ मिली हैं। इसका कारण यह है कि प्राचीन काल में मथुरा व्यापार–वाणिज्य का बहुत बड़ा केन्द्र था जहाँ से देश के विविध भागों में विभिन्न मार्ग जाया करते थे। समृद्ध व्यापारियों के द्वारा सम्भवतः कुबेर की प्रतिमा की माँग अत्यधिक थी जो धन तथा ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए इनकी पूजा किया करते थे। मथुरा से प्राप्त कुबेर की ये मूर्तियाँ जो इस समय स्थानीय संग्रहालय में सुरक्षित हैं, वह निःसन्देह प्रतिमा लक्षण की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है तथा इनकी तीन प्रकार की मूर्तियों के रूप में व्याख्या की गयी है।

प्रथम प्रकार की मूर्तियों में उन मूर्तियों का उल्लेख किया जा सकता है जो समृद्धिशाली व्यक्ति के रूप में चित्रित है। मथुरा की एक चहार दीवारी के स्तम्भ से ग्राउज महोदय के द्वारा एक प्रतिमा गिरिधर पुर टीले से पूर्व तथा कंकाली टीले से दक्षिण स्थित पालिखेरा तथा महोली ग्राम से खोजी गयी हैं जो प्रथम प्रकार की मूर्तियों की

---

1 ए०एस०आई०ए०आर०, 1916-17, चित्र VII, डी० फोगे ल, ला स्कल्पचर, डे मथुरा, आकृति XLIV, डी०, अग्रवाल, वी०एस०, वही, पृष्ठ 83(सं० 613)

विशेषताओं से सम्पन्न हैं।[1] इसमें कुबेर गले में सुन्दर हार अथवा माला पहने हुए हैं तथा कानों में बड़े कुण्डल लटक रहे हैं। एक कपड़ा उनके निकले हुए पेट के चारों ओर लपेटा हुआ है तथा बायाँ घुटना देवता की सामान्य भाव-भंगिमा को व्यक्त कर रहा है। उनके सिर के बाल सुन्दर एवं सुव्यवस्थित हैं तथा उनकी मूँछें ऊपर को उठी हुयी प्रदर्शित की गयी हैं। उनकी अलसायी हुई आँखें तथा दिखायी देती हुयी दाँत की पंक्तियाँ एक अलग तरह की मुस्कान को बिखेरती हैं। दोनों भुजाएँ टूट गयी हैं। इनके भग्न स्थिति से ऐसा प्रतीत होता है कि ये ऊपर को उठी हुई थीं। [2] प्रतिमा में दोनों हाथों के अभाव के कारण तथा उनके वाहन के अभाव में यह सन्देह हो जाता है कि यह कुबेर की प्रतिमा है या नहीं। इस सन्दर्भ में डॉ० अग्रवाल का कथन अधिक तर्कसंगत प्रतीत होता है कि प्रतिमा का सामान्य लक्षण वृकोदर आकृति है जो मथुरा-शैली की प्रधान विशे षता है।[3] मथुरा कला में समान आकृति की अनेकशः कुबेर आकृतियाँ प्राप्त हुयी हैं जो मथुरा संग्रहालय में संरक्षित हैं। [4] इस प्रकार हम इस आकृति को कुबेर की प्रतिमा के रूप में पहचान सकते हैं ।

मथुरा से प्राप्त कुबेर की द्वितीय प्रकार की प्रतिमाओं में एक अलग विशेषता दृष्टिगत होती है। कुबेर प्रायः दो भुजाओं के साथ वृकोदर प्रदर्शित किये गये हैं। इनके एक हाथ में सामान्यतया धन की थैली तथा दूसरे हाथ में मद्य-चषक है। कुबेर की इस प्रकार की प्रतिमाएँ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होती है। समूह में देवता ललितासन मुद्रा में बैठे हुए प्रदर्शित किये गये हैं जबकि अकेले उन्हें कमल पर अथवा आधार पर खड़े हुए दिखाया गया है। कुबेर को कहीं पर पत्नी हारीति के साथ अथवा कहीं अकेले दिखाया गया है।

---

1 ग्राउज, मथुरा, पृष्ठ 124 फोगेल, ला स्कल्पचर दे मथुरा, चित्र XLIX,बी०;
अग्रवाल, वी०एस०, कैटलाग ऑफ ब्राह्मनिकल इमेज इन मथुरा आर्ट, पृष्ठ 78

2 तत्रैव, पृष्ठ 78

3 तत्रैव, पृष्ठ 78

4 तत्रैव, पृष्ठ 79 तथा आगे।

कुबेर को सुसज्जित शिरोभूषण से युक्त तथा प्रचुर आभूषणों के साथ प्रदर्शित किया गया है। इन प्रतिमाओं में उनके वाहन नरवाहन का अभाव है जो सन्देह को प्रदर्शित करता है। प्रायः उनके साथ दो पात्र अथवा आठ पात्रों को दिखाया गया है जो निधियों के प्रतीक हैं। ये प्रायः देवता के साथ मध्य काल में सम्बद्ध हुए जो उनके आधार स्तम्भ पर उत्कीर्ण है।[1]

मथुरा से प्राप्त तृतीय प्रकार की मूर्तियों में कुबेर को प्रफुल्लचित्त प्यासे बौने के रूप में प्रदर्शित किया गया है जिसे आकर्षक अप्सराओं के द्वारा बलपूर्वक मद्य-पान कराया जा रहा है। ग्राउज के द्वारा पालिखेरा [2] से एक प्रस्तर प्रतिकृति खोजी गयी है जिसपर मथुरा शैली में पाँच आकृतियाँ वृक्ष के नीचे दिखाई गई है जो सम्भवतः कल्पवृक्ष है । इस प्रतिकृति में एक मोटा नग्न मानव अपने बायें पैर का सहारा लिए हुए तथा कैलास की ऊचाई को प्रदर्शित करते हुए बैठा है जो देवता के निवास स्थान को अभिव्यक्त करता है। यहाँ पर इन्हें बैठे हुए तथा काष्ठ-प्याले में मद्य-पान करते हुए चित्रित क़िया गया है। यहाँ स्त्री सेविकाएँ पात्र भरने के लिए तैयार खड़ी हुयी दिखाई गयी हैं। ये सभी घटनाएँ एक दूसरे आदमी, स्त्री एवं छोटे बच्चे के द्वारा देखी जा रही है।

इलाहाबाद संग्रहालय में मथुरा शैली में निर्मित तथा मथुरा से ही प्राप्त कुषाण कालीन दो मूर्तियाँ संग्रहीत है। दोनों ही प्रतिमाएँ लाल चित्तीदार प्रस्तर पर निर्मित हैं तथा दोनों में ही कुबेर को आसीन मुद्रा में प्रदर्शित किया गया है। एक प्रतिमा में कुबेर एकाकी प्रदर्शित है। उनका एक हाथ अभय मुद्रा में है तथा दूसरे हाथ में मद्य-चषक लिए हुए हैं। इसी प्रकार दूसरी प्रतिमा में कुबेर हारीति के साथ प्रदर्शित हैं तथा उनके नीचे भक्तगण

---

1 अग्रवाल, वी०एस०, ए कैटलाग ऑफ ब्राह्मनिकल इमेज इन मथुरा आर्ट, पृष्ठ 79 तथा आगे, संख्याएँ- सी० 9, सी०10, सी 11, इत्यादि (स्वयं अकेले प्रदर्शित है) तथा संख्याएँ सी० 8, सी० 12, सी० 28 तथा सी० 29 इत्यादि, (पत्नी के साथ दिखाये गये हैं)

2 तत्रैव, पृष्ठ 93-95 (सं० सी० 2)

स्मिथ, एच०एफ०ए० आई०सी०, पृष्ठ 44-45, चित्र 20 ए ; ग्राउज, वही, पृष्ठ 124

दिखाये गये हैं।[1] इस प्रकार कुषाण काल में भी कुबेर की प्रतिमाएँ अधिक संख्या में मिलती हैं। इन प्रतिमाओं के प्रतिमालक्षण की विशषताओं के आधार पर कुषाण कालीन कुबेर प्रतिमाओं की निम्नलिखित विशषताएँ प्रस्तुत की जा सकती हैं[2]-

(i) कुबेर को थुलथुला शरीर वाल तथा तुन्दिल अङ्कित किया जाता है, उसके मस्तक पर उष्णीष, कानों में कुण्डल तथा गले में कण्ठा को प्रदर्शित किया गया है।

(ii) एक प्रकार की मूर्तियों में उनका दाहिना हाथ अभय मुद्रा में रहता है तथा बायें हाथ में नेवले के आकार की थैली होती है जिसे नकुली कहते हैं, जब कि द्वितीय प्रकार में जो अधिक सामान्य प्रतीत होता है, अभयमुद्रा के स्थान पर मद्य का पात्र दिखाया गया है। [3]

(iii) कुबेर की पत्नी का नाम भद्रा मिलता है। बौद्धों के यहाँ यह हारीति के नाम से पहचानी जा सकती हैं। कतिपय प्रतिमाओं में कुबेर के साथ बच्चों को लिए हुए कमल धारिणी भद्रा के भी चित्रण मिलते हैं।[4]

(iv) भद्रा के अतिरिक्त लक्ष्मी का अङ्कन भी कुबेर के साथ कुषाण-काल में किया गया है।[5] इस प्रतिमा में लक्ष्मी के पास कमल तथा भद्रा के हाथ में मद्य-पात्र को प्रदर्शित किया गया है।

(v) एक विशेष प्रतिमा में कुबेर को संगीत का आनन्द लेते हुए देखा जा सकता है।[6]

---

1 प्रमोद चन्द्र, स्टोन स्कल्पचर इन दि इलाहाबाद म्यूजियम, पृष्ठ 50, चित्रफलक 151-152

2 जोशी, नील कण्ठ पुरुषोत्तम, प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान, पृष्ठ 178-79

3 मथुरा संग्रहालय, संख्या-सी० 25, 26,31 इत्यादि

4 जोशी, नीलकण्ठ पुरुषोत्तम, मथुरा की मूर्तिकला, फलक 40-69

5 मथुरा संग्रहालय, सं० सी० 30

6 मथुरा संग्रहालय, सं०-18.1538

(vi) कुषाण-कालीन प्रतिमाओं में कुबेर के साथ उनका वाहन प्रदर्शित नहीं किया गया है। इस प्रकार विभिन्न तथ्यों के आधार पर यह धारणा व्यक्त की जा सकती है कि मथुरा का कुषाण-कालीन कुबेर एक विलासी धनी सेठ की प्रतिकृति प्रतीत होता है।

गान्धार-कला में कुबेर की अनेकशः प्रतिमाएँ उपलब्ध होती हैं। मध्य-देश में जिसे वैश्रवण अथवा कुबेर के नाम से जाना जाता था, वही देवता गान्धार-कला में पञ्चिक नाम से प्रसिद्ध था। यह दिव्य आलौकिक शक्ति से सम्पन्न तथा धन का कल्याणकारी देवता था। पञ्चिक की मूर्तियों में कुबेर को आभूषणों से सुसज्जित, ललितासन-मुद्रा में पैर लटकाए हुए बैठा दिखाया गया है तथा उनके बायें हाथ में लम्बा बर्छा या कुन्त है। गान्धार-कला में हारीति सौभाग्य, पुत्र-पौत्र तथा धन-धान्य की अधिष्ठातृ देवी थी। उसके अङ्क में तथा स्कन्ध पर बच्चे बैठाये गये प्रदर्शित किये जाते हैं। यह गान्धार-कला में मातृदेवी के रूप में पूजी जाती थीं। हारीति की कतिपय चतुर्भुज मूर्तियाँ मिली हैं जो एक हाथ में कमण्डलु तथा दूसरे हाथ में त्रिभुज को धारण किये हुए हैं। इससे यह प्रतीत होता है कि दुर्गा और हारीति इन दो देवियों का परस्पर समन्वय किया गया रहा होगा। [1] काश्यप संहिता के रेवती कल्प में वर्णित जातुहारिणी देवी का बौद्ध रूप हारीति था। हारीति की पूजा एवं मान्यता मथुरा में भी लोकप्रिय थी। ऐसा प्रतीत होता है कि यक्षराज वैश्रवण के अवतार पाञ्चालिक तथा पञ्चिक-यक्ष एक ही जान पड़ते हैं। हिमालय से लेकर विन्ध्याचल के मध्य तक पाञ्चालिक की पूजा की प्रधानता थी। गान्धार प्रदेश के गृहस्थों की सम्पूर्ण कल्याण कामनाओं की पूर्ति करने वाले पञ्चिक तथा हारीति ही थे। गान्धार से लेकर उत्तर मध्य एशिया तक पञ्चिक तथा हारीति की पूजा का पर्याप्त प्रचार-प्रसार हो चुका था। कतिपय इस काल की प्रतिमाओं में पञ्चिक के हाथ में थैली तथा हारीति के हाथ में ऋद्धिश्रृंग प्रदर्शित किया गया है। [2]

---

1 अग्रवाल, वासुदेव शरण, भारतीय कला, पृष्ठ-288

2 तत्रैव, भारतीय कला, पृष्ठ 288-89

गान्धार-कला में कुबेर (पञ्चिक) एवं उसकी पत्नी हारीति का उल्लेख प्रचुरता के साथ प्राप्त होता है।[1] इनका अनेक रूपों में चित्रण किया गया है। देवता को बैठे हुए अथवा खड़े हुए प्रदर्शित किया गया है। कुछ समय वह अपनी पत्नी के साथ तो कभी अकेले चित्रित हैं। अपने मूर्तन में वह यद्यपि एक उत्कृष्ट व्यक्तित्व वाले देवता के रूप में हेलेनिस्टिक कला में दिखायी पड़ते हैं, फिर भी प्रतिमा लक्षण की दृष्टि से मथुरा कला से वह नितान्त भिन्न हैं। गान्धार कला में भी कुबेर को थुलथुले शरीर वाला तथा आगे निकला हुआ पेट वाला दिखाया गया हैं। इनके शरीर पर सुसज्जित आभूषण इनके समृद्धि युक्त होने का परिचायक है। थैली इनके हाथ में होती है तथा कतिपय प्रतिमाओं में इन्हें धन अथवा सौभाग्य के नियामक के रूप में प्रदर्शित किया गया है।[2] कुबेर का सैनिक रूप कुछ प्रतिमाओं में दिखाई पड़ता है जिसमें उन्हें बैठे हुए दुबला-पतला तथा हाथ में भाला को लिये हुए दिखाया गया है।[3] कुछ प्रतिमाओं में बैठे हुए युगल के पैर के नीचे स्थित थैली से सिक्कों को बाहर निकलता हुआ दिखाया गया है।[4] पेशावर के निकट तहकाल नामक स्थान से परवर्तीकाल की कुबेर की एक प्रतिमा उपलब्ध हुई है जो लाहौर संग्रहालय में सुरक्षित है।[5] इस प्रतिमा में देवता को सशक्त आकृति वाला तथा दृढ़निश्चय को व्यक्त करने वाली आँख एवं मूँछ के साथ प्रदर्शित किया गया है। शहर-ए-बहलोल से प्राप्त एक दूसरी महत्वपूर्ण आकृति में कुबेर को अपनी पत्नी के साथ बैठे हुए दिखाया गया है। इसमें कुबेर को युद्ध के देवता के रूप में नहीं बल्कि प्रेम, शान्ति तथा धन एवं समृद्धि के देवता के रूप में प्रदर्शित किया गया है। इसमें इनकी आँखें मृदु स्वभाव वाले

---

1 मजूमदार, एन०जी०, ए गाइड टू दि स्कल्पचर्स इन दि इण्डियन म्यूजियम भाग-2, पृष्ठ - 100

2 तत्रैव, पृष्ठ 99-100

3 तत्रैव, पृष्ठ 99

4 तत्रैव, पृष्ठ 100

5 मार्शल, जॉन, दि बुद्धिस्ट आर्ट ऑफ गान्धार, पृष्ठ 104-105, चित्र सं० 143. स्मिथ, वी०ए०, एच०एफ०ए०आई०सी०, पृष्ठ 59, चित्र 33

मानव की भाँति हैं तथा इनकी आकृति सौम्य है साथ ही साथ इनके हाथ में भाला भी प्रदर्शित नहीं किया गया है। यह प्रतिमा पेशावर म्यूजियम में संरक्षित है।[1]

गान्धार-कला के कुबेर तथा उनसे सम्बन्धित पञ्चिक, हारीति इत्यादि के विवेचन से कई महत्वपूर्ण तथ्य उद्घाटित होते हैं। यह उल्लेखनीय है कि कुबेर के नरवाहन स्वरूप का प्रथम अङ्कन भरहुत में प्राप्त होता है, परन्तु न तो मथुरा के कलाकारों ने और न ही गान्धार के कलाकारों ने उनके वाहन का अंकन किया है। दोनों ही परम्पराओं में कुबेर को निधियों के साथ नहीं प्रदर्शित किया गया है। इसके स्थान पर निधियों को घड़े के रूप में प्रदर्शित किया गया है।[2] नीलकण्ठ पुरुषोत्तम जोशी ने मथुरा से प्राप्त कुषाण कालीन एक फलक की ओर ध्यान आकर्षित किया है जिसमें घटोदर पुरुषाकृति के दोनों ओर दो स्त्री आकृतियाँ प्रदर्शित हैं- एक हाथ में कमल तथा दूसरे हाथ में प्याला प्रदर्शित किया गया है। जोशी ने इन्हें कुबेर, श्री तथा हारीति के रूप में स्वीकार किया है। [3] परन्तु इस फलक पर बच्चे का अङ्कन न होने से उसे कुबेर, श्री तथा ऋद्धि के रूप में भी स्वीकार किया जा सकता है।

विष्णुधर्मोत्तर पुराण में कुबेर के उदीच्यवेश का विधान प्राप्त होता है। इसकी भी परम्परा गान्धार कला से प्रारम्भ हुयी। बोस्टन संग्रहालय में कुबेर की एक छोटी कांस्य प्रतिमा रखी हुयी है जिसमें घड़े के ऊपर ललितासन-मुद्रा में बैठे हुए कुबेर को प्रदर्शित किया गया है। इसमें कुबेर को पैरों में लम्बे जूते पहने हुए दिखाया गया है तथा विविध प्रकार के आभूषण, जैसे ग्रैवेयक, बाजूबन्द, कर्णाभूषण तथा मुकुट प्रदर्शित है। इस प्रतिमा का दाहिना हाथ भग्न है तथा बायें हाथ में नकुलक जैसी कोई वस्तु लिए हुए हैं। यद्यपि

---

1 मार्शल, जॉन, दि बुद्धिस्ट आर्ट ऑफ गान्धार, पृष्ठ 104-105, चित्र 144
स्मिथ, वही, पृष्ठ 59-60, चित्र सं० 31 बी०।
जिम्मर, एच०, दि आर्ट ऑफ इण्डियन एशिया, चित्र सं० 64 बी।

2 सहाय, भगवन्त, आइकोनोग्रैफी ऑफ माइनर हिन्दू एण्ड बुद्धिस्ट डीटीज, पृष्ठ 66

3 जोशी, एन०पी०, मथुरा स्कल्पचर्स मथुरा 1966, चित्र सं० 69; पाल, प्रतापादित्य, ललितकला, वाल्यूम 5, पृष्ठ 19

यह प्रतिमा परवर्ती प्रतीत होती है, परन्तु गान्धार-कला में प्रचलित उदीच्य वेश की परम्परा का प्रतिनिधित्व करती है।[1] गान्धार से प्राप्त पञ्चिक हारीति उत्कीर्णन में पुरुषाकृति में मूँछों का अंकन भी विदेशी प्रभाव का परिचायक है।

फूशे ने गान्धार कला में प्राप्त होने वाले युगल दम्पति को पञ्चिक तथा हारीति के रूप में सर्वप्रथम स्वीकार किया था।[2] इन्हीं का अनुसरण इस सन्दर्भ में प्रायः सभी विद्वानों ने किया है। रोजनफिल्ड ने यह सम्भावना व्यक्त की है कि हारीति और पञ्चिक दोनों बौद्ध-साहित्य में अत्यन्त गौण व्यक्तित्व के रूप में प्रदर्शित किये गये हैं। अतः सभी को पञ्चिक तथा हारीति कहना उचित प्रतीत नहीं होता, न तो इत्सिंग एवं न तो ह्वेनसांग ने ही गान्धार से सम्बन्धित अपने विवरणों में पञ्चिक का कोई उल्लेख किया है। सामान्यतया हाथ में भाला होने के कारण पुरुष आकृति को विद्वानों ने पञ्चिक स्वीकार किया है किन्तु विष्णुधर्मोत्तर पुराण में भी कुबेर के हाथों में भाला धारण करने का विधान प्राप्त होता है। इस आधार पर रोजनफिल्ड ने कतिपय युगल प्रतिमाओं को कुबेर एवं हारीति के रूप में स्वीकार किया है। मोतीचन्द्र ने भी इनमें से कुछ को कुबेर और 'श्री' के रूप में समीकृत करने का प्रयास किया है।[3]

मथुरा कला में गृह संस्थित अर्चा के रूप में कुबेर की अनेक प्रतिमाएँ निर्मित की गयी। लगभग आठ इंच ऊँची एक प्रतिमा कंकाली टीले से प्राप्त हुई थी जिसमें कुबेर के बायें हाथ में अमृतघट का प्रदर्शन किया गया है तथा दाहिना हाथ भग्नावस्था में है। कुबेर की बायीं ओर स्त्री आकृति का अंकन है जिसे लक्ष्मी के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त कुबेर के दाहिनी ओर एक छोटी आकृति तथा हारीति अथवा लक्ष्मी

---

1 पाल, प्रतापादित्य, ललित कला, धनद कुबेर ऑफ दि विष्णुधर्मोत्तर पुराण एण्ड सम इमेजेज फ्राम नार्थ ईस्ट इण्डिया, वाल्यूम V, पृष्ठ 13-14

2 फूशे, ए०, एल आर्ट ग्रीको बोधिके डु गान्धारा, 1918, पृष्ठ 110 तथा आगे

3 मोती चन्द्र, ''निधिश्रृंग (कार्नुकोपीया) : ए स्टडी इन साइम्बोलिज्म'', 'प्रिन्स ऑफ वेल्स म्यूजियम बुलेटिन, सं० 9, 1964-66, पृष्ठ 26-28.

के बायीं ओर तीन छोटी आकृतियाँ प्रणाम की मुद्रा में अञ्जलिबद्ध प्रदर्शित है। इसी प्रकार नवगवाँ, केरावी, मनोहरपुर टीला, कटरा केशवदेव, निधौली ग्राम, ब्रह्माण्डघाट, गोपालपुर इत्यादि स्थानों से प्राप्त प्रतिमाओं को भी गृह-अर्चा के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। इन सभी प्रतिमाओं की ऊचाई पाँच इंच से लेकर दस इंच तक है। [1]

मथुरा तथा इसके आस-पास से कतिपय ऐसी प्रतिमाएँ भी प्राप्त हुयी हैं। जिनपर अभिलेख अङ्कित है। मथुरा से लगभग नौ मील उत्तर-पश्चिम में स्थित रालभडार नामक स्थान से लगभग नौं इंच ऊँचा कुबेर एवं हारीति के अङ्कन से युक्त एक फलक प्राप्त हुआ है जिसमें 'प्रियताम साधक' का उल्लेख मिलता है।[2] इसका तात्पर्य है कि देवता साधना करने वालों के ऊपर प्रसन्न हों। इसी प्रकार पालिखेरा गाँव के मातामठ नामक स्थान से कुबेर की एक दस इंच ऊँची प्रतिमा प्राप्त हुयी है जिसमें यह उल्लेख मिलता है कि यह प्रतिमा बीसवें वर्ष में निर्मित की गयी अर्थात् 98 ई० में इसका निर्माण हुआ।[3] यहीं से प्राप्त एक अन्य प्रतिमा में 'आर्य हुषम्मि स्य निवर्त्तना'[4] का उल्लेख मिलता है। इसकी भी लिपि कुषाण कालीन है। गायत्री टीला से प्राप्त एक प्रतिमा विशेष विचारणीय है जिसमें कुबेर को भद्रासन-मुद्रा में पाद-पीठिका में प्रदर्शित किया गया है। सम्भवतः यह कोई बौद्ध-मूर्ति थी। इस प्रतिमा पर कुषाण-कालीन ब्राह्मी में निम्न अभिलेख अंकित है[5]-

1. I [दा] सस्य वाधुय
2.2. वोचस्य भगीनि

---

1 पाल, प्रतापादित्य, ललितकला, वही, वाल्यूम-V, पृष्ठ 19

2 जर्नल आफ दि यू०पी० हिस्टारिकल सोसायटी, वाल्यूम-XXII, 1949, पृष्ठ 182

3 जर्नल आफ दि यू०पी० हिस्टारिकल सोसायटी, वाल्यूम XXII(1949)] पृष्ठ 185

4 तत्रैव, पृष्ठ 185

5 तत्रैव, पृष्ठ 186

अर्थात् दास की वधू जो वोच की बहन थी, सम्भवतः इस स्त्री ने ही इसका निर्माण करवाया था।

दयाराम साहनी ने एक लघु फलक का उल्लेख किया है जो राजस्थान के सम्भर नामक स्थान से प्राप्त हुआ है। इसमें कुबेर तथा हारीति का अङ्कन किया गया है। इस पर एक लघु अभिलेख भी है। इससे ज्ञात होता है कि यह प्रतिमा कुषाण कालीन है।[1]

सामान्यतया ऐसा माना जाता है कि कुषाण-काल की अपेक्षा गुप्त-काल में कुबेर की स्वतंत्र देवता के रूप में उपासना अपेक्षाकृत कम हो गयी थी। उनका अङ्कन दिक्पाल के रूप में विशेषतः होने लगा था।[2] देवगढ़ के दशावतार मन्दिर में कुबेर का द्विभुज अङ्कन प्राप्त होता है किन्तु कुषाण कालीन राजत्व तथा अलङ्करण का इस प्रतिमा में अभाव है। गुप्तकाल में कुबेर की प्रतिमाएँ अत्यल्प प्राप्त हुयी हैं। यद्यपि धन एवं ऐश्वर्य से सम्बन्धित होने के कारण कुबेर के पूजन तथा मूर्ति-निर्माण की परम्परा काफी प्राचीन रही है। अष्ट दिक्पाल समूह में निरूपित होने से पूर्व ही कुबेर की स्वतंत्र मूर्तियों का निर्माण प्रारम्भ हो चुका था जिनके अनेकशः उदाहरण विभिन्न पुरातात्विक स्थलों पर उपलब्ध हैं। कुबेर की मूर्तियाँ कुषाण-काल से ही बनने लगी थीं। इसमें उष्णीष से युक्त द्विभुज कुबेर घटोदर हैं। कुषाण कालीन मूर्तियों में कुबेर के साथ कभी-कभी बालक के साथ भद्रा तथा लक्ष्मी का भी अंकन हुआ है। एक प्रतिमा में लक्ष्मी पद्म तथा भद्रा मद्य-पात्र से युक्त हैं।[3] कुषाण कालीन मूर्तियों में कुबेर के वाहन का अभाव है। मथुरा की एक मूर्ति में उन्हें मद्य-पान करती हुई एक सुन्दर युवती के साथ चित्रित किया गया है।[4] मथुरा कला परम्परा में निर्मित कतिपय गुप्तकालीन प्रतिमाएँ मथुरा संग्रहालय में रखी

---

1 अग्रवाल, वी०एस०, द्वारा प्रदर्शित नागरी प्रचारिणी पत्रिका, बनारस, 13 (I) न्यू सीरीज, चित्रफलक, 18, पृष्ठ संख्या 17 तथा आगे

2 जोशी, एन०पी०, प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान, पृष्ठ 179

3 तत्रैव, प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान, पृष्ठ 179

4 तत्रैव, प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान, पृष्ठ 179

हुयी हैं, जिससे ज्ञात होता है कि कुषाण शैली का भी प्रभाव इस अवधि में पर्याप्त था। मथुरा से एक ऐसी प्रतिमा प्राप्त हुयी है जिसमें कुबेर के दोनों हाथों में मद्य-च षक प्रदर्शित किया गया है। शीर्ष भाग शरीर के अन्य अंगो की तुलना में अधिक विशाल तथा समानुपात रहित है। मूँछों का अंकन गान्धार कला के प्रभाव का परिचायक है। प्रतिमा घटोदर है, किन्तु पैर अत्यन्त छोटा है। [1] इसी प्रकार एक अन्य प्रतिमा में कुबेर तथा हारीति को अगल-बगल बैठे हुए प्रदर्शित किया गया है। कुबेर के दाहिने हाथ में नकुलक तथा बायें हाथ में मद्य-चषक है। हारीति के बायें हाथ में कमल पुष्प प्रदर्शित किया गया है तथा दाहिना हाथ कन्धे तक ऊपर उठा हुआ है।[2] पोटराकुण्ड से प्राप्त कुबेर तथा हारीति की इस प्रतिमा को वासुदेव शरण अग्रवाल ने धन के देवता तथा प्रजनन की देवी के अंकन का प्रतीक माना है। मथुरा कला में कुबेर को कैलास पर्वत पर आसीन भी प्रदर्शित करने की परम्परा थी। कैलास पर्वत कुबर का निवास स्थान था तथा उनकी राजधानी अलकापुरी वहीं स्थित थी। मथुरा के समीप लोहबन[3] ग्राम से प्राप्त एक प्रतिमा इस दृष्टि से विचारणीय है जिसमें कुबेर कैलास पर्वत पर बैठे हुए प्रदर्शित किये गये हैं तथा उनके दोनों ओर स्त्री-आकृतियाँ प्रदर्शित हैं,एवं उसमें निर्मित पद्म-प्रभामण्डल विशेष रूप से विचारणीय है। कतिपय अन्य प्रतिमाओं में कुबर के एक हाथ में मद्य-चषक तथा दूसरे हाथ में कमल का अंकन प्राप्त होता है। गोसन [4] ग्रम से इसी प्रकार की एक अन्य प्रतिमा प्राप्त हुयी है। कतिपय प्रतिमाओं में कुबेर के साथ-साथ हारीति की प्रतिमाओं में भी उनके हाथ में मद्य-चषक का अंकन किया गया है। कभी-कभी कुबेर के हाथ में अमृत-घट का अंकन भी प्राप्त होता है। मथुरा संग्रहालय में कुबेर एवं हारीति की एक ऐसी संयुक्त प्रतिमा रखी हुयी है, जिसमें कुबेर के बायें हाथ में

---

1 जर्नल ऑफ यू०पी० हिस्टारिकिल सोसायटी, वाल्यूम XXII (1949) पृष्ठ 184

2 तत्रैव, पृष्ठ 181

3 तत्रैव, पृष्ठ 184

4 तत्रैव, पृष्ठ 184

अमृतघट का प्रदर्शन किया गया है।[1] यद्यपि इन प्रतिमाओं के आकार से स्पष्ट है कि स्वतंत्र रूप से मन्दिर के गर्भगृह में उपासना हेतु ये निर्मित नहीं की गयीं थीं। यह प्रतिमा केवल पाँच इंच ऊँची है। संभव है कि यह गृह संस्थित अर्चा के रूप में प्रयुक्त की जाती रही हों। मत्स्य पुराण में भी यह उल्लेख मिलता है कि गृहस्थों को अपने घर में उपासना के लिए अंगुष्ठ पर्व से लेकर एक वितस्ति अर्थात् बारह अंगुल तक की प्रतिमा निर्मित करनी चाहिए।[2] यह उल्लेखनीय है कि इस प्रकार की छोटी प्रतिमाएँ मथुरा कला में कुषाण काल से ही प्राप्त होने लगती है। इन प्रतिमाओं के आधार पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि गुप्तकाल में भी मथुरा और उसके समीपवर्ती क्षेत्रों में कुबेर की उपासना महत्वपूर्ण थी।

इन प्रतिमाओं के अतिरिक्त कुबेर का अङ्कन दिक्पाल तथा अवान्तर देव के रूप में भी प्राप्त होता है। मथुरा से प्राप्त एक मृण्फलक पर मुख्य अंकन चतुर्भुजी महिषासुरमर्दिनी का है तथा उनके बगल में घटोदर कुबेर का भी अंकन प्राप्त होता है।[3] इसी प्रकार देवगढ़ के दशावतार मन्दिर में भी ऊपरी तोरण में घटोदर कुबेर का अंकन किया गया है।[4] भूमरा के गुप्तकालीन मन्दिर की बनी दीवालों में चन्द्रशाला में यम, सूर्य, ब्रह्मा, गणेश, स्कन्द इत्यादि के साथ कुबेर का भी अङ्कन हुआ है। इन सभी अंङ्कनों में कुबेर के लक्षण गतानुगतिक ही है। इसमें कुबेर द्विभुज रूप में दिखाये गये हैं। उनके बायें हाथ में सनाल कमल का अङ्कन है तथा दाहिना हाथ पूर्णतया भग्न है। इसमें तीन घट भी प्रदर्शित हैं। दो घट कुबेर के दोनों पार्श्व में तथा एक घट उनके पाद-पीठ के नीचे

---

1 जर्नल ऑफ दि यू०पी० हिस्टारिकल सोसायटी, वाल्यूम XXII, (1949) पृष्ठ 186

2 अंगुष्ठ पर्वदारभ्य वितस्तिर्यावदेवतु।
गृहेषु प्रतिमाकार्या नाधिकाशस्य ते बुधैः।।
मत्स्य पुराण, अ० 257', श्लोक 22

3 अग्रवाल, वी०एस०, मथुरा टेराकोटाज, जर्नल ऑफ यू०पी० हिस्टारिकल सोसायटी, जिल्द-9, भाग 2

4 जोशी, एन०पी०, प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान, पृष्ठ 179

दिखाया गया है। उल्लेखनीय है कि इस अंकन में मद्य-चषक तथा धन की थैली या नकुलक का अंकन नहीं प्राप्त होता।[1] इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि गुप्तकाल में ही जिस प्रकार कला के अन्य पक्षों में मौलिकता की उद्भावना हो रही थी, उसी प्रकार कुबेर के अंकन में भी कतिपय नवीन तत्व समाहित हो रहे थे। उल्लेखनीय है कि कलिदास ने भी कुबेर के द्वार उपान्त पर शंख एवं पद्म निर्मित होने का उल्लेख किया है।[2]

भरतपुर (राजस्थान) के कमान[3] नामक स्थान से प्राप्त कुबेर की गुप्तकालीन प्रतिमा अत्यन्त उल्लेखनीय है। देवता वृकोदर तथा दो हाथों से युक्त अपने स्वाभाविक रूप में बैठे हुए हैं। वह बायें हाथ में धन की थैली तथा दाहिने हाथ में मद्य-चषक लिए हुए हैं। यह प्रतिमा कुबेर के आसवपायी मूर्ति की प्रतीक है। इस तरह की प्रतिमाएँ मथुरा क्षेत्र से मिली है जो मथुरा संग्रहालय में संरक्षित है। कुबेर का शिरोभूषण कृत्रिम बालों से निर्मित है तथा उनके मस्तक के मध्य भाग में गोलाकार तिलक लगा हुआ है। गले में एकावली, कर्णाभूषण, भुजबन्द, कंगन तथा नूपुर इत्यादि देवता की आकृति को

---

1 मेमायर्स ऑफ आर्कियोलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया, 16, पृष्ठ 12,
चित्रफलक 13 अ

2 ''एभिः साधो हृदयनिहितर्लक्षणैर्लक्षयेथा,
द्वारोपान्ते लिखितवपुषौ शंखपद्मौ च दृष्ट्वा।''
कालिदास, उत्तर मेघ, श्लोक 20

3 अग्रवाल, वी०एस०, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, हिन्दी, बनारस, 13(I) न्यू सीरीज,
चित्र सं०18, पृष्ठ 17 तथा आगे
-जर्नल ऑफ दि यू०पी० हिस्टारिकल सोसायटी, भाग 22, पृष्ठ 176 तथा आगे।
-इस प्रतिमा का उल्लेख यूनाइटेड किंगडम के भी कुछ संग्रहालयों में हुआ है।
-गुप्तकालीन इस प्रकार की अत्यधिक प्रतिमाओं के लिए द्रष्टवा
- प्रोग्रेस रिपोर्ट आफ दि आर्कलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया, वेस्टर्न सर्किल पूना,
1919, पृष्ठ 65 तथा आगे

आकर्षण युक्त बना देते हैं। वास्तव में इनका मूर्तन अत्यन्त सफलता पूर्वक किया गया है।[1] इसी प्रकार आसवपायी कुबेर की प्रतिमा ग्वालियर संग्रहालय में संरक्षित है।[2]

गुप्तकाल के पश्चात् भी कुबेर की प्रतिमाएँ निर्मित होती रहीं। लगभग सातवीं शती की एक प्रतिमा पभोसा से प्राप्त हुई है जो इस समय लखनऊ संग्रहालय में रखी हुई है। इसमें कुबेर की प्रतिमा के साथ कतिपय नवीन अङ्कन प्राप्त होते हैं। इसमें कुबेर की प्रतिमा को अर्द्धपर्यङ्कासन स्थिति में प्रदर्शित किया गया है। कुबेर की यह द्विभुजी प्रतिमा विविध आभूषणों से युक्त है। गले में हार तथा केयूरक विशेष उल्लेखनीय है। यह उल्लेखनीय है कि इसमें कुबेर का घटोदर स्वरूप नहीं प्राप्त होता है। कुबेर जिस पीठिका पर बैठे हैं, उसके नीचे दो घट प्रदर्शित किये गये हैं। जो सम्भवत: शंख एवं पद्मनिधि के प्रतीक है। इनमें से एक के ऊपर कुबेर का दाहिना पैर रखा हुआ है जो इस तथ्य का परिचायक है कि कुबेर निधियों के रक्षक है। इनके दाहिने हाथ में चषक तथा बायें हाथ में थैली का अंङ्कन किया गया है तथा दोनों ओर परिचार क के रूप में श्मश्रुयुक्त पुरु ष तथा स्त्री का अंकन है। इस प्रकार शंख एवं पद्मनिधि के पात्रों का प्रदर्शन गुप्तकाल में प्रारम्भ हुआ और मध्यकाल तक चलता रहा।[3] इस प्रतिमा को भगवन्त सहाय ने जितेन्द्र नाथ बनर्जी के विवरण के आधार पर मथुरा संग्रहालय में रखे होने का उल्लेख किया है जो उचित नहीं है यह लखनऊ संग्रहालय में रखी हुयी है जिसकी संख्या[4] ल० स० जी-56 है।

---

1 इस प्रकार की गुप्तकालीन प्रतिमा सरदार म्यूजियम जोधपुर में रखी गयी है; अग्रवाल, आर०सी०, ललित कला, सं० 1-2, पृष्ठ 75-76, चित्र सं० 18

2 ठाकरे, आर०एस०, कैटलाग ऑफ दि स्कल्पचर्स इन दि आर्कियोलाजिकल म्यूजियम एट ग्वालियर, 1952, पृष्ठ 8

3 बनर्जी, जे०एन०, डी०एच०आई०, पृष्ठ 344, फलक 14, चित्र 2

4 शुक्ल, बी०सी०, भारतीय कला के विविध आयाम, पृष्ठ-40-41

नालन्दा[1] से कुबेर की एक अन्य प्रस्तर मूर्ति प्राप्त हुयी है। यद्यपि आकार में यह छोटी है फिर भी अत्यन्त अद्वितीय रूप से निर्मित की गयी है। देवता मुकुट को धारण किये हुए हैं तथा आभूषणों से सुसज्जित हैं। वह यज्ञोपवीत को धारण किये हुए तथा तीन अलंकृत घट जो समृद्धि को प्रदर्शित करते हैं, उनके पीछे निर्मित है इनमें से दो उनके मस्तक के दोनों ओर हैं तथा एक मूर्ति पर निर्मित है। कुबेर की एक दूसरी प्रतिमा सिंहभूमि जिले के बेनी सागर नामक स्थान से प्राप्त हुई है जिसमें कुबेर को चार कलशों के साथ प्रदर्शित किया गया है।[2]

पहाड़पुर से प्राप्त कुबेर की मूर्ति भी अत्यन्त महत्व रखती है। इसमें देवता को अपने हाथ को घुटनों पर मोड़े हुए तथा पैर को आराम की मुद्रा में आश्रय दिये हुए वर्गकार घेरे में प्रदर्शित किया गया है तथा कुबेर के बायें हाथ में सिक्कों से परिपूर्ण धन का थैला है।[3] पहाड़पुर से ही कुबेर की एक स्वतंत्र प्रतिमा प्राप्त होती है जिसमें देवता को चतुष्पाद आसन पर बैठे हुए वृकोदर तथा उनके नीचे शंख तथा पद्मनिधि का अंकन प्रदर्शित किया गया है। कुबेर के बायें हाथ में पात्र है तथा दाहिना हाथ वरदमुद्रा में प्रदर्शित है।[4] कलकत्ता के इण्डियन म्यूजियम में कुबेर को मोटे बौने वाले देवता के रूप में नीचे आसन पर बैठे हुए दिखाया गया है। उनके बायें हाथ में थैली है तथा दाहिने हाथ में गेंद की तरह कोई वस्तु है।[5] असम के राज्य संग्रहालय में भी कुबेर को सामान्यतः भारी-भरकम, निकले हुए उदर वाला तथा हाथ में समृद्धि के प्रतीक घट को लिए हुए

---

1 ए०एस०आई०ए०आर०, 1927-28, पृष्ठ 160

2 जे०बी०आर०एस० XLII, पृष्ठ 6, चित्र सं० 3

3 एम०ए०एस०आई०-55, पृष्ठ 55, चित्र सं० 38, बी०

4 जे०डी०एल०, 30, पृष्ठ 64-65

5 बनर्जी, आर०डी०, ई०आई०एस०एम०एस०, पृष्ठ 119; ब्लाख, टी०, कैटलाग आफ दि आर्कियोजिकल कलेक्शन इन दि इण्डियन म्यूजियम कलकत्ता।

दिखाया गया है।[1] एक नौवी शती ई० की प्रतिमा राजस्थान में ओसिया के मन्दिर नं० 9 से प्राप्त हुयी है जो गान्धार तथा अन्यत्र से प्राप्त कुबेर की मूर्ति की प्रतिकृति प्रतीत होती है।[2]

मेवाड़ स्थित भीनमाल नामक स्थल की 1954 में की गयी खुदाई से कन्डीनाथ मन्दिर के ईंटे के स्तर से एक छोटी आसवपायी कुबेर की मूर्ति मिली है। इनके बायें हाथ में नकुलक एक प्रकार की थैली है तथा उठे हुए दाहिने हाथ में मद्य-चषक है। कुबेर के मस्तक पर मुकुट है। एकावली इत्यादि अनेक आभूषणों से युक्त कुबेर की मुद्रा 'कमान' नामक स्थल से प्राप्त गुप्तकालीन प्रतिमा के समान है[3] तथा मालानगर से प्राप्त अप्रकाशित, सिर विहीन कुबेर मूर्ति से पहले की प्रतीत होती है। इसे परवर्ती गुप्तकाल की प्रतिमा स्वीकार किया जा सकता है।[4]

ओसिया[5] के पिप्पलदा माता के मुख्य मन्दिर के गर्भगृह से महिषमर्दिनी तथा गणेश के साथ एक लघु कुबेर की प्रतिमा प्राप्त हुयी है। इन्हें एक स्थान पर ही एक दूसरे से सम्बन्धित दिखाया गया है। यह प्रतिमा 642 ई० के सकराई माता प्रस्तर अभिलेख[6] में प्राप्त गणेश, चण्डिका तथा धनद की प्रशंसा में प्राप्त प्रथम तीन श्लोकों की ओर ध्यान आकृष्ट करती है। अभिलेख का तृतीय श्लोक कुबेर के आशीर्वाद के रूप में प्राप्त होता

---

1 बरूआ, बी०के०, ए कल्चरल हिस्ट्री ऑफ असम, पृष्ठ 192

2 स्मिथ, वी०ए०, एच०एफ०ए०आई०सी०, पृष्ठ 128, चित्र सं० 79ए

3 द्रष्टव्य-बाम्बे गजेटियर I(i) पृष्ठ 449 तथा आगे

4 डॉ० एम०आर०मजूमदार के अनुसार इस प्रतिमा को सातवीं-आठवीं शताब्दी ई० में रखा जा सकता है।

5 इस मन्दिर की विस्तृत जानकारी के लिए द्रष्टव्य – दि आर्कलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया एनुअल रिर्पोट 1908-9, पृष्ठ 101-115

6 छाबरा, बी०सी०, दि इपिग्रैफिया इण्डिका, 27, पृष्ठ 28 तथा आगे

है(यक्षों को सम्बोधित करते हुए):-

''मधु-मदे जानु दृष्टिः स्पष्टनीलोत्पलाभो मुकुटमणिममूखैः रञ्जितः पीतवासाः जलधर इव विद्युत्च्चक्र चापानुविद्धो भवतु धनदनामा वृद्धिदो वः सुयक्षः।''

इस श्लोक में कुबेर के मधुपायी रूप का वर्णन होने के साथ-साथ 'नीलोत्पलाभ ' अर्थात् नील कमल के समान आभा वाले तथा 'पीतवास' अर्थात् पीला वस्त्र धारण करने वाला उन्हें बताया गया है। नीलकमल के समान वर्ण वाले कुबेर जो पीतवासस हैं उनकी उपमा ऐसे मेघ से की गयी है जो इन्द्र धनुष से अनुविद्ध अर्थात् वेधित हो तथा विद्युत्छटा से परिपूर्ण हो। इस प्रकार कुबेर का राजस्थान से प्राप्त प्रारम्भिक अभिलेखिय प्रमाण अत्यन्त महत्वपूर्ण है जिसमें कुबेर ने सुयक्षों के कल्याण की कामना की है।

ओसिया के पिप्पलदा माता मन्दिर से प्राप्त वृकोदर बैठी हुयी कुबेर की प्रतिमा अत्यन्त महत्व की है। देवता के बायें हाथ में थैली तथा दाहिने में मद्य-चषक है। उल्लेखनीय है कि इनके दाहिने जंघे पर इनकी पत्नी हारीति का अंकन आसीन-मुद्रा में किया गया है। ये वनमाला को धारण किये हुए हैं। इसके अतिरिक्त वह गले में एकावली पहने हुए हैं तथा विभिन्न आभूषण केयूर, कमरपेटी तथा कर्णाभूषण इत्यादि धारण किये हुए है। इसमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण इनके सिर के घुघराले केश[1] एवं मुकुट है। स्मिथ महोदय का कहना है कि ओसिया से प्राप्त इस प्रकार की प्रतिमा की तुलना कुबेर की गान्धार तथा अन्य स्थानों से प्राप्त प्रतिमाओं से की जा सकती है।[2]

---

1 द्रष्टव्यः- इस प्रकार के बालों की सजावट गुप्तकालीन मृण्मूर्ति जो राजघाट से प्राप्त हुई है, मिलती है।
अग्रवाल, वी०एस०, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, बनारस, 45(3) पृष्ठ 218

2 स्मिथ, वी०ए०, ए हिस्ट्री ऑफ फाइन आर्ट्स इन इण्डिया एण्ड सिलोन, आक्सफोर्ड, 1930, पृष्ठ 128, आकृति 79 बी०

मेवाड़ से तीन किलोमीटर दूर भटुण्डा नामक स्थान से कुबेर की एक लघु प्रतिमा ओसिया परम्परा में बैठी हुयी प्राप्त हुयी है। बाँसी से प्राप्त जैन यक्ष कुबेर की प्रतिमा जो सम्प्रति उदयपुर के विक्टोरिया हाल संग्रहालय में सुरक्षित है, अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यह प्रतिमा इक्कीस इंच ऊँची तथा अट्ठारह इंच चौड़ी है तथा इसका काल परवर्ती गुप्तकाल अर्थात् सातवीं-आठवीं शती ई० माना जा सकता है। यहाँ कुबेर की प्रतिमा द्विभुजी, आसीन मुद्रा में, सभी आयुधों के साथ, वृकोदर स्वरूप में बायें हाथ में धन की थैली तथा दाहिने हाथ में चकोतरा फल लिए हुए प्रदर्शित की गयी हैं। इसके नीचे गज का मूर्तन किया गया है जो कुबेर का वाहन है। सर्वाधिक महत्वपूर्ण ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि यहाँ पर कुबेर के मुकुट पर बैठे हुए ध्यानी जैन का उच्चित्रण है।[1] इसी प्रकार की एक प्रतिमा ग्वालियर के निमथुर नामक स्थान से प्राप्त हुयी है किन्तु बाँसी से प्राप्त प्रतिमा मूर्तन के क्षेत्र में कलाकारों की अद्‌भुत देन कही जा सकती है।[2]

भीनमाल के उत्खनन में वराह घनश्याम के मन्दिर से चतुर्भुजी कुबेर की प्रतिमा प्राप्त हुयी है। देवता स्थानक-मुद्रा में स्थित हैं तथा उनका वाहन गज उनकी बायीं ओर खड़ा है। ऊपर के दोनों हाथों में वह नकुलक को धारण किये हुए हैं तथा उनके निम्न दाहिने हाथ में गदा तथा निम्न बायाँ हाथ भग्नावस्था में विद्यमान है। राजस्थान के बनासवाड़ा के समीप अरथुन नामक स्थान से भी कुबेर की प्रतिमा मिली है जो अजमेर संग्रहालय की गैलरी में संरक्षित है।

जयपुर के निकट अम्बर के पुरातत्वीय संग्रहालय में आबनेरी से प्राप्त एक ही फलक पर पंक्तिबद्ध रूप में गणेश, गजलक्ष्मी तथा कुबेर की बैठी हुयी प्रतिमा अत्यन्त

---

1 द्रष्टव्य- भट्टाचार्य बी०सी०, जैन आइकोनोग्रैफी, लाहौर, पृष्ठ 155, फुट नोट 1

2 द्रष्टव्य- अग्रवाल, आर०सी०, जर्नल ऑफ इण्डियन म्यूजियम, XII, 1956; मरु भारती, हिन्दी, पीलानी, IV(2) , पृष्ठ 100; बिरला विद्या बिहार मैक्जीन, हिन्दी, पिलानी III, पृष्ठ 53-56

उल्लेखनीय है।[1] यहाँ कुबेर अपने दाहिने हाथ में मद्य-पात्र लिए हुए हैं तथा उनके बगल में एक स्त्री आकृति मद्य से पूर्णघट को लिए हुए प्रदर्शित की गयी है। इन तीनों देवी-देवताओं का अंकन आठवीं शती ई० के आसपास का प्रतीत होता है जो प्रतिमालक्षण की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

हरविलास सारदा[2] कुबेर की एक प्रतिमा का उल्लेख करता है जो कुम्भलगढ़ के मामदेव मन्दिर में रखी हुयी है। इस उच्चित्रण में कुबेर के दो सेवक उनकी थैली से सिक्के बाहर निकालते हुए प्रदर्शित हैं। ये सिक्के दो तश्तरियों में रखे जा रहे है जिनमें से एक गोलाकार है तथा दूसरी वर्गाकार । यह महत्वपूर्ण प्रतिमा देश की प्लास्टिक कला को अभिव्यक्त करती है तथा पन्द्रहवीं शतीब्दी के आर्थिक दशा पर भी प्रभाव डालती है।

कुबेर उत्तर-दिशा के दिक्पाल हैं। इन्हें प्रायः उत्तरी दीवाल के पूर्वी कोने पर दिखाया जाता है किन्तु विष्णु मन्दिर में इन्हें उत्तर-पश्चिम के कोने पर प्रदर्शित किया गया है। उनका वाहन प्रायः गज,[3] मेष [4] अथवा मनुष्य [5] है। सचिया माता के मन्दिर में स्थित कुबेर प्रतिमा के आसन के नीचे दो घट [6] प्रदर्शित हैं। ये शंख तथा पद्मनिधि के प्रतीक हैं। कतिपय मुख्य प्रतिमाओं में कुबेर या तो जटा के साथ [7] अथवा करण्डमुकुट[8]

---

1 तत्रैव, ललित कला, ललित कला अकादमी ऑफ इण्डिया, सं० 1-2, पृष्ठ 1312, चित्र सं० 5

2 हरविलास शारदा, पृष्ठ 187-द्वारा आर०सी०अग्रवाल, सम इन्ट्रेस्टिंग स्कल्पचर्स ऑफ यक्ष एण्ड कुबेर फ्राम राजस्थान

3 जे०टी०, एन०ई०, एन० डब्लू एण्ड एस० डब्लू, स्राइन, जंघा।

4 एस०एम०टी०, एन०ई०स्राइन, जंघा;पी०डी०टी०, जंघा

5 एच०एच०टी०, संख्या- I, II एण्ड III, जंघा; वी०टी० संख्या I एण्ड II

6 एस०एम०टी०, एस०ई० स्राइन, जंघा

7 तत्रैव, एस०ई० स्राइन, जंघा

8 एच०एच०टी० संख्याIII गर्भगृह जंघा; एस०एम०टी०, एन०डब्लू ० स्राइन

धारण किये हुए हैं जबकि दूसरी जगह इनके केश घुंघराले प्रदर्शित हैं।[1] नकुलक इनकी सभी प्रतिमाओं में मिलता है। इनके साथ अन्य वस्तुएँ जैसे आयुध-गदा, चषक, पद्म, अंकुश तथा घट हैं।[2] कुबेर की स्थानक मुद्रा में तथा आसीन-मुद्रा में बैठी हुई दोनों प्रतिमाएँ उपलब्ध होती हैं। इन दोनों मुद्राओं में ये प्रतिमाएँ द्विभुजी अथवा चतुर्भुजी हैं।[3] द्विभुजी प्रतिमाओं में प्रायः बायें हाथ में नकुलक है जबकि दाहिने हाथ में मद्य-चषक अथवा भग्न है।[4] एक अन्य उदाहरण में बायें हाथ में कुबेर के मद्य-चषक है, जबकि दाहिना हाथ भग्न हो चुका है। अन्य दो उदाहरणों में दाहिना हाथ अभय मुद्रा में प्रदर्शित है अथवा फल लिए है तथा बायें हाथ में नकुलक प्रदर्शित किया गया है। उल्लेखनीय है कि कुबेर की चतुर्भुज मूर्तियों में इनके आयुध इत्यादि धारण के सन्दर्भ में बहुत विभिन्नताएँ मिलती हैं। ओसिया से प्राप्त चर्तुभुजी कुबेर की प्रतिमाओं में प्रदर्शित वस्तुओं

---

1 एच०एच०टी० संख्या II एण्ड III, गर्भगृह जंघा; सूर्या टेम्पुल, गर्भगृह, जंघा।

2 कालिया, आशा, आर्ट ऑफ ओसियन टेम्पुल्स, पृष्ठ 138

3 तत्रैव, आर्ट ऑफ ओसियन टैम्पुल्स, पृष्ठ 138

4 तत्रैव, आर्ट ऑफ ओसियन टेम्पुल्स, पृष्ठ 138

के आधार पर उनका वर्गीकरण निम्न रूप में किया गया है [1]:-

(i) आसीन मुद्रा में स्थित प्रतिमाएँ:-

वर्गीकरण	निम्न दाहिना हाथ	उर्ध्व दाहिना हाथ	उर्ध्व बायाँ हाथ	निम्न बायाँ हाथ
1	चषक	अंकुश	पद्म	नकुलक
2	चषक	गर्दन पर आधारित नकुलक	-	गदा
3	आराम मुद्रा में जंघे पर स्थित है।	पद्म	पद्म	नकुलक
4	नकुलक	भग्न	भग्न	भुजा भग्न है: सम्भवत:गदा
5	भग्न	पद्म	नकुलक	चषक
6	चषक	गर्दन पर आधारित नकुलक	-	भग्न
7	अस्पष्ट आयुध	नकुलक	अंकुश	फल
8	नकुलक	कमलनाल	अकुश	चषक

(ii) स्थानक मुद्रा में स्थित प्रतिमाएँ

वर्गीकरण	निम्न दाहिना हाथ	उर्ध्व दाहिना हाथ एवं उर्ध्व बायाँ हाथ	निम्न बायाँ हाथ
1	भग्न	दोनों हाथ में नकुलक गर्दन पर रखे हुए	भग्न
2	गदा	" "	"
3	भग्न	" "	फल
4	वरदमुद्रा में अक्षमाला	" "	भग्न
5	कट्यवलम्बित	" "	"

1 कालिया आशा, आर्ट ऑफ ओसियन टेम्पुल्स, पृष्ठ 138-139

कुबेर की मधुपायी प्रतिमाएँ मन्दिरों के अधिष्ठान भाग तथा द्वार चौखटों पर प्राप्त होती हैं। यहाँ देवता को वृकोदर तथा ललितासन-मुद्रा में बैठे हुए प्रदर्शित किया गया है तथा उनके बगल में खड़ी स्त्री सेविकाएँ घट से मद्य-चषक में मद्य डाल रही हैं। इन प्रतिमाओं में कुबेर अपने स्वाभाविक रूप में हैं किन्तु उनका वाहन यहाँ प्रदर्शित नहीं हैं।[1] पिप्पल देवी मन्दिर के गृर्भगृह में इसी प्रकार की एक विशाल प्रतिमा प्राप्त होती है।[2] कुबेर की प्रतिमाओं से सम्बन्धित विवरण हमें अंशुमदभेदागम, शिल्परत्न, विष्णुधार्मोत्तर पुराण, मत्स्य पुराण, अग्निपुराण, अपराजितपृच्छा तथा रूपमण्डन में विविध रूपों में प्राप्त होते हैं। इन प्रतिमा शास्त्रीय ग्रन्थों के अनुसार कुबेर को स्थानक मुद्रा अथवा आसीन-मुद्रा में नरवाहन अथवा मनुष्यों द्वारा खींचे जाने वाले रथ पर आसीन अथवा मेष या गज पर आसीन होना चाहिए।[3]

उड़ीसा के अनेक मन्दिरों में कुबेर का अंकन उत्तरी दिशा के दिक्पाल एवं देवता के रूप में मिलता है। ब्रहमेश्वर तथा मघेश्वर मन्दिर में इनका अंकन मनोकामना को पूर्ण करने वाले वृक्ष के रूप में किया गया है तथा साथ में आठ पात्रों के रूप में निधियों को प्रदर्शित करके किया गया है। निधियों के स्वामी कुबेर ही हैं।[4] परवर्तीकालीन उड़ीसा के मन्दिरों के सभी स्थानों पर इन आठ पात्रों को कामना पूर्ण करने वाले वृक्ष की डालियों से लटकाकर धन के स्वामी कुबेर के साथ जोड़कर उच्चित्रित किया गया है।[5] मुक्तेश्वर

---

1 तत्रैव, आर्ट ऑफ ओसियन टेम्पुल्स, पृष्ठ 139

2 तत्रैव, आर्ट ऑफ ओसियन टेम्पुल्स, पृष्ठ 139

3 तत्रैव, आर्ट ऑफ ओसियन टेम्पुल्स, पृष्ठ 139.
-बनर्जी, जे० एन०, ई० एच० आई०, वाल्यूम II, भाग II, पृष्ठ 536; रूपमण्डन 2.37

4 पाणिग्रही, आर्कियोलाजिकल रिमेन्स एट भुवनेश्वर पृष्ठ 79

5 तत्रैव, आर्कियोलाजिकल रिमेन्स एट भुवनेश्वर, पृष्ठ 144

मन्दिर में इन्हें धन की थैली के साथ प्रदर्शित किया गया है।[1] परशुरामेश्वर मन्दिर में कुबेर को प्रायः बायें हाथ में घट को लिए हुए दिखाया गया है। [2] उल्लेखनीय है कि उड़ीसा से प्राप्त प्रतिमाओं में कुबेर के किसी वाहन का उच्चित्रण नहीं प्राप्त होता है। [3]

भुवनेश्वर में कुबेर की केवल दस प्रतिमाएँ उपलब्ध होती हैं जिसमें दो स्थानक मुद्रा तथा शेष आसीन मुद्रा में हैं। कुबेर को सामान्यतः चौकी या पद्मपीठ पर पद्मासन या ललितासन मुद्रा में दिखाया गया है। उनकी पद्मपीठिका के नीचे पाँच अथवा सात निधि पात्रों का अंकन प्राप्त होता है। स्थानक-मुद्रा में कुबेर पद्मपीठ पर त्रिभङ्ग-मुद्रा में खड़े हैं। अधिकांश मूर्तियों में देवता का हाथ खण्डित है। अतः उनके आयुधों के विषय में कुछ कहना असम्भव है।[4] अन्य दिक्पाल प्रतिमाओं की तरह कुबेर का अंकन द्विभुज रूप में ही प्राप्त होता है। कुबेर के साथ सामान्यतः वाहन का अंकन नहीं हुआ है, केवल दो प्रतिमाओं में मेष वाहन है तथा एक में नकुल का अंकन प्राप्त होता है। [5] मेष वाहन हमें कुछ अन्य स्थलों की मूर्तियों में भी मिलता है, किन्तु नकुल वाहन भुवनेश्वर की प्रतिमा की अभिनव विशेषता है[6] जो उनके नकुलचर्म से बने धन की थैली से सम्बन्धित है। अधिकांश मूर्तियों में पीठिका पर पाँच या सात कलश निर्मित हैं जो निधि-पात्रों के रूप में कुबेर के वाहन का ही अंकन है।[7]

---

1 तत्रैव, आर्कियोलाजिकल रिमेन्स एट भुवनेश्वर, पृष्ठ 93

2 तत्रैव, आर्कियोलाजिकल रिमेन्स एट भुवनेश्वर, पृष्ठ 70

3 तत्रैव, आर्कियोलाजिकल रिमेन्स एट भुवनेश्वर, पृष्ठ 82-83

4 पाण्डेय, रेखा, भुवनेश्वर की देव मूर्तियाँ : एक प्रतिमा शास्त्रीय अध्ययन पृष्ठ 285

5 तत्रैव, पृष्ठ 285

6 तत्रैव, पृष्ठ 285

7 पाण्डेय, रेखा, भुवनेश्वर की देव मूर्तियाँ: एक प्रतिमा शास्त्रीय का अध्ययन, पृष्ठ 285

परशुरामेश्वर मन्दिर के जगमोहन की प्रतिमा में कुबेर चौकी पर पद्मासन में निर्मित हैं। इनके दाहिने हाथ का आयुध खण्डित है, तथा बायें में कलश (निधिपात्र) है। मुकुट, यज्ञोपवीत इत्यादि सामान्य अलङ्करणों से सुसज्जित देवता के साथ वाहन का अंकन नहीं प्राप्त होता है। ब्रह्म मन्दिर के गर्भगृह तथा जगमोहन की मूर्तियों में देवता पद्मपीठ पर सुखासन की मुद्रा में बैठे हैं। इनके पद्मपीठ के नीचे पाँच तथा ऊपरी कोनों में दो निधि पात्र रखे हुए हैं।[1]

सर्वप्रथम राजा-रानी मन्दिर में कुबेर की स्थानक प्रतिमा निर्मित की गयी। विश्वपद्म पर त्रिभंग मुद्रा में खड़े देवता के दाहिने हाथ में आयुध अस्पष्ट है। जबकि बायें हाथ में नकुलक है जिसके निचले भाग में पुष्पों का अलङ्करण है। मुख्य पद्म के नीचे सात शाखाओं वाला एक वृक्ष (सम्भवतः कल्पवृक्ष) है, जिसकी शाखाओं वाला सात निधि पात्र प्रदर्शित है।[2] लिंगराज मन्दिर में देवता मेष वाहन पर ललितासन में प्रदर्शित हैं। किरीट मुकुट तथा अन्य सामान्य आभूषणों से सज्जित कुबेर के दोनों हाथ खण्डित हैं वाहन के दोनों ओर पद्मपीठ पर दो देव प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित हैं, जो कुबेर के समान ही स्थूल शरीर वाली तथा घटोदर है। इन देव-प्रतिमाओं के ऊपर दो-दो चामरधारिणी तथा मधुपात्रधारी नारी आकृतियाँ एक के ऊपर एक पद्मपीठ पर त्रिभङ्ग मुद्रा में स्थित हैं।[3] लिंगराज मन्दिर के परकोटे के मन्दिरों पर दिक् पाल तथा दिक्पाली दोनों का अंकन प्राप्त होता है परन्तु ये मूर्तियाँ काफी खण्डित अवस्था में प्राप्त होती हैं। एक मन्दिर में दिक्पाली के हाथ में दण्ड तथा मधुपात्र प्रदर्शित है। चित्रकारिणी मन्दिर में दिक्पाल पद्मपीठ पर त्रिभंग-मुद्रा में खड़े हैं। उनके हाथों के आयुध खण्डित हैं। पद्मपीठ के नीचे पाँच निधि पात्रों का अङ्कन प्राप्त होता है। सारी देउल मन्दिर में देवता

---

1 तत्रैव, पृष्ठ 285

2 तत्रैव, पृष्ठ 285

3 तत्रैव, पृष्ठ 286

के वाहन के रूप में नकुल का अंकन मिलता है[1] तथा ऊपरी जंघे की दिक्पाली के दाहिने हाथ में अभयाक्ष तथा बायें में मधुपात्र प्रदर्शित हैं। उल्लेखनीय है कि कुबेर के वाहन के रूप में नकुल का अंकन केवल उड़ीसा की कला परम्परा में ही देखने को मिलता है जो असाधारण प्रतीत होता है।

कुबेर की तेरहवीं शताब्दी ई० की एक सुन्दर प्रतिमा राज्य संग्रहालय भुवनेश्वर में संरक्षित है। इसमें कुबेर के वाहन, आयुध तथा अलङ्करणों का बहुत ही सुन्दर ढंग से अंकन किया गया है। मेषवाहन पर ललितासन-मुद्रा में प्रदर्शित देवता के दाहिने हाथ में गदा तथा बायें में नकुलक है। नकुलक का मुख सिंह के समान तथा नीचे का भाग अलंकृत है जो उड़ीसा की कला से प्रभावित प्रतीत होता है। किरीट मुकुट, हार, कटिसूत्र, नुपूर इत्यादि अलङ्करणों से शोभित कुबेर का नीचे लटकता दाहिना पैर पद्मपीठ पर स्थित है तथा इनके दोनों ओर पद्मपीठ पर दो पुरुषाकृतियों का उच्चित्रण है जिनके दाहिने हाथ में फल है। बायीं ओर की आकृति के हाथों में दण्ड तथा निधिपात्र प्रदर्शित है। देव आकृतियों के ऊपर चामर तथा मधुपात्र लिए नारी सेविकाओं की आकृतियाँ प्रदर्शित है। इनके दाहिने स्कन्ध के पास पद्मपीठ पर पद्मासन में एक अन्य नारी आकृति है जो दोनों हाथों में मधुपात्र लिए हुए है। इसके ऊपर एक पुरुष आकृति खड़ी है। वामस्कन्ध के पास पद्मपीठ पर पद्मासन में वंशी बजाती हुई एक पुरुष आकृति तथा उसके ऊपर कीर्तिमुख, शंखवादक और मालाधारी विद्याधरों की आकृतियाँ प्रदर्शित की गयी हैं।[2]

अष्ट-दिक्पालों के अङ्कन की परम्परा हमें खजुराहो के मन्दिरों में भी देखने को मिलती है। यहाँ पर कुबेर का अङ्कन स्वतंत्र रूप से प्राप्त होता है। द्विभुज मूर्तियों में कुबेर के दाहिने हाथ में धन की थैली तथा बायें में चषक है। कुबेर का मूर्तन यहाँ सामान्यतः चतुर्भुज रूप में किया गया हे। खजुराहो की चतुर्भुज मूर्तियों में उनके करों में चषक (या फल कभी-कभी वरदमुद्रा में अथवा कटिहस्त) पद्म (गदा या नकुलक), नकुलक

---

1 पाण्डेय, रेखा, भुवनेश्वर की देव मूर्तियाँ: एक प्रतिमा शास्त्रीय अध्ययन, पृष्ठ 286

2 तत्रैव, पृष्ठ 286

(पद्म या गदा) तथा कमण्डलु (या नकुलक) प्रदर्शित हैं। ये मूर्तियाँ सामान्यतः वाहन रहित है किन्तु यत्र-तत्र मेष अथवा श्वान का वाहन के रूप में अंकन प्राप्त होता है।[1] उल्लेखनीय है कि 'श्वान' कुबेर के वाहन के रूप में खजुराहो-कला की अपनी निजी विशेषता है।

मढेरा में कुबेर की एक मूर्ति मुख्य भित्ति पर चित्रित है। बृहदजठर कुबेर का वाहन स्पष्ट नहीं है तथा दो हाथ भी भग्न प्रदर्शित है तथा शेष दो हाथों में नकुलक एवं गदा को दिखाया गया है। दिक्पाल के रूप में निरूपण के साथ ही कुबेर की द्विभुज तथा चतुर्भुज रूपों की मढेरा में आठ मूर्तियाँ भी उपलब्ध है। इनमें कुबेर के साथ निधि-थैली (दोनों उर्ध्व हाथों में), गदा (या चषक अथवा वरदमुद्रा या फल) एवं पद्म (या जल-पात्र) को दिखाया गया है।[2]

खजुराहो-मन्दिर के उत्तर पर्वी कोने पर स्थानक मुद्रा में कुबेर की प्रतिमा प्राप्त होती है परन्तु अधिकांशतः वे बैठे हुए प्रदर्शित किये गये हैं। द्विभुज कुबेर की प्रतिमाओं में उनके हाथ में मद्य-पात्र तथा नकुलक है तथा अन्य प्रदर्शन में कुबेर को चतुर्भुज दिखाया गया है। इन चतुर्भुज प्रतिमाओं में प्रायः प्रथम हाथ में मद्य-चषक अथवा फल (कभी-कभी वरदमुद्रा या कटिविन्यस्त)। कमल, गदा अथवा नकुलक, द्वितीय हाथ में तथा तृतीय हाथ में नकुलक, कमल अथवा गदा एवं चौथे हाथ में नकुलक अथवा कमण्डलु को प्रदर्शित किया गया है। कुबेर के हाथों में धन की थैली होती है जो उनके समृद्धि अथवा धन की थैली होती है जो उनके समृद्धि अथवा धन का स्वामी होने का परिचायक है। लगभग सभी प्रतिमाओं में कुबेर के हाथों में धन की थैली को नेवले के आकार का प्रदर्शित किया गया है जो बौद्ध-देवता जम्भल के नकुलक की प्रतिकृति प्रतीत होता है। प्रायः यह कुबेर की चतुर्भुज प्रतिमाओं में ही देखने को मिलता है। कतिपय

---

1 ख० दे० प्र०, पृष्ठ 232-233

2 गिरि, करुणा, पूर्व निर्दिष्ट, पृष्ठ 69-70

प्रतिमाओं में द्वितीय एवं तृतीय हाथ में पकड़े हुए लम्बा नकुलक देवता की गर्दन के पीछे प्रदर्शित किया गया है।[1]

कुबेर की द्विभुज प्रतिमाओं का उल्लेख प्रायः हाथों में मद्य-च षक तथा नकुलक के साथ खजुराहो की कला में देखने को मिलता है। इन आकृतियों का समीकरण हम मथुरा से प्राप्त कुबेर प्रतिमाओं के साथ कर सकते हैं। खजुराहो की कतिपय प्रतिमाओं में कुबेर का आसवपायी रूप (मद्य पान करते हुए) चित्रित है। कभी-कभी पुरुष अथवा स्त्री अनुचर उनके पास मद्य से भरा हुआ पात्र लेकर खड़े रहते हैं तथा कुबेर के हाथ में खाली मद्य-पात्र में मदिरा डालते हुए प्रदर्शित किये गये हैं।[2]

दिक्पाल के रूप में कुबेर की कतिपय प्रतिमाएँ द्विभंग मुद्रा में तथा कुछ स्थानक मूर्तियाँ त्रिभंग मुद्रा में प्रदर्शित की गयी हैं किन्तु ये प्रतिमाएँ यत्र-तत्र ही प्राप्त होती है। ये या तो मन्दिर की दीवालों पर या संग्रहालय में है। कुबेर की ये मूर्तियाँ अर्द्धपर्यङ्क मुद्रा में बैठी है। इनमें से कुछ मूर्तियाँ वृकोदर प्रदर्शित की गयी हैं। अंशुमद भेदागम के अनुसार कुबेर प्रायः अपने मस्तक पर करण्ड मुकुट[3] धारण करते हैं। प्रायः तीन या चार घट देवता के आसन के नीचे उच्चित्रित किये गये हैं। अष्ट निधि के प्रतीक के रूप में कोई उदाहरण खजुराहो से प्राप्त नहीं होता जैसा कि भुवनेश्वर के एक उच्चित्रण में देखने को मिलता है। यहाँ पर सामान्यतः कुबेर को किसी वाहन के साथ प्रदर्शित नहीं किया गया है किन्तु लक्ष्मण तथा आदिनाथ मन्दिर में कुबेर का वाहन मेष है तथा जगदम्बा एवं विश्वनाथ मन्दिर में इनका वाहन कुत्ते के समान कोई जानवर प्रतीत होता हैं कतिपय अन्य उदाहरणों में देवता के अनुचर या भक्त को भी प्रदर्शित किया गया है।[4]

---

1 अवस्थी, रामाश्रय, खजुराहो की देव प्रतिमाएँ, पृष्ठ 232-233

2 तत्रैव, पृष्ट 234

3 राव, गोपीनाथ, टी०ए०, ई०एच०आई०, वाल्यूम II, भाग 2, परिशिष्ट बी, पृष्ठ 263

4 अवस्थी, रामाश्रय, खजुराहो की देव प्रतिमाएँ, पृष्ठ 235, चित्र संख्याएँ 99-103

खजुराहो के कन्दरिया महादेव के मन्दिर से कुबेर की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रतिमा प्राप्त हुयी है। इसमें देवता को अपनी पत्नी ऋद्धि के साथ प्रदर्शित किया गया है। कुबेर ललितासन–मुद्रा में बैठे हैं तथा उनकी पत्नी ऋद्धि उनके बायें जंघे पर बैठी है। कुबेर अपने तीन हाथों में क्रमशः मद्य–चषक, कमलसमूह तथा नकुलक को लिए हुए है तथा अपनी पत्नी का आलिंगन कर रहे हैं, साथ ही साथ अपने बायें हाथ से देवी के बायें स्तन को स्पर्श करते हुए चित्रित किये गये हैं तथा देवी ऋद्धि भी देवता का आलिंगन करती हुयी दिखायी गयी हैं। उनका दाहिना हाथ कुबेर के दाहिने कन्धे पर रखा हुआ है तथा वह बायें हाथ में मकर (मछली) को कसकर पकड़े हुए हैं। देवता के दाहिनी ओर स्त्री सेविकाएँ मद्य से परिपूर्ण घट को अपने हाथ में लिए हुए खड़ी स्वामी के मद्य–चषक को भरती हुयी दिखायी गयी हैं तथा मनुष्य सेवक देवी के बायीं ओर खड़े प्रदर्शित है। कुबेर तथा ऋद्धि दोनो प्रभूत आभूषणों से विभूषित हैं। मूर्ति के निचले भाग पर दो अलङ्कृत घटों का उच्चित्रण है जो पद्मनिधि एवं शंख निधि के प्रतीक हैं। यह प्रतिमा बहुत ही सुन्दर तथा महत्वपूर्ण है। कुबेर अपनी पत्नी के साथ यदा–कदा ही इस प्रकार से चित्रित किये गये हैं।[1] मध्यकाल की ठीक इसी प्रकार की प्रतिमा ग्वालियर संग्रहालय में संरक्षित है।[2]

गया के विष्णुपद मन्दिर के परिसर से एक पालकालीन प्रस्तर फलक प्राप्त होता है जिसमें पाँच देवताओं की मूर्तियों को प्रदर्शित किया गया है, इनमें से एक कुबेर है।[3] धन के स्वामी कुबेर को वृकोदर तथा बैठे हुए प्रदर्शित किया गया है। उनके साथ एक बड़ा कलश उच्चित्रित है जो धन, सुवर्ण तथा आभूषणों का प्रतीक है। यहाँ कुबेर को द्विभुज रूप में दिखाया गया है, तथा वह हाथों से सम्भवतः कुछ सुवर्ण मोतियों को बिखेर रहे हैं।

---

1 तत्रैव, पृष्ठ 236, चित्र संख्या 101

2 ठाकरे, आर०एस०, कैटलाग ऑफ दि स्कल्पचर्स इन दि आर्कियोलाजिकल म्यूजियम, ग्वालियर, पृष्ठ 16

3 मिश्रा, उमेश, कोमेमोरेशन वाल्यूम, गंगा नाथ झा रिसर्च इंस्टीट्यूट, पृष्ठ 714-15

इलाहाबाद संग्रहालय की जमसोत से प्राप्त कुबेर-प्रतिमा मटमैले बलुए पत्थर से बनी है तथा इसका चेहरा भग्न हो चुका है। [1] कुबेर गद्दी पर अर्द्धपर्यङ्क मुद्रा में बैठे हुए हैं। यह प्रतिमा बारहवीं शताब्दी ई० की है। इनके निम्न बायें हाथ में मद्य-चषक को प्रदर्शित किया गया है जब कि निम्न दाहिना हाथ भग्न हो चुका है। देवता अपने दो हाथों में नकुलक (धन की थैली) को अपने मस्तक के पीछे रखे हुए दिखाए गये हैं। उल्लेखनीय है कि नकुलक का इस स्थिति में उच्चित्रण अपना विशेष महत्व रखता है। यह प्रतिमा 52 से०मी० ऊँची है।

इसीकाल की कुबेर की एक दूसरी प्रतिमा भीटा से प्राप्त हुयी है जो इलाहाबाद संग्रहालय में संरक्षित है तथा मटमैले बलुए पत्थर से निर्मित है। प्रतिमा में घुटने के नीचे का महत्वपूर्ण भाग भग्न हो चुका है। [2] कुबेर अर्द्धपर्यङ्कासीन हैं तथा उनके दाहिने हाथ में मद्य-पात्र तथा बायें में एक लम्बा नकुलक प्रदर्शित किया गया है। उनके कन्धे के दोनों ओर दो सेवक, जिनमें एक पुरु ष तथा दूसरी स्त्री है, खड़े हैं। पुरुष सेवक उनकी दाहिनी ओर मद्य से परिपूर्ण पात्र लिए हुए हैं तथा स्त्री-सेविका उनकी बायीं ओर चँवर को लिए हुए चित्रित की गयी है। प्रतिमा की बनावट भव्य एवं उत्कृष्ट नहीं है। यह लगभग 63 से०मी० ऊँची तथा 56 से०मी चौड़ी है।

कन्नौज से भारतीय कला की एक महत्वपूर्ण प्रतिकृति शिव-पार्वती के विवाह के दृश्याङ्कन से युक्त प्राप्त होती है। इसमें उनके देवताओं के साथ प्रस्तर फलक के ऊपरी भाग पर धन के स्वामी कुबेर की आकृति का मूर्तन है जिसकी पहचान मथुरा कला में वृकोदर तथा एक हाथ में मद्य-चषक तथा द्वितीय हाथ में धन की थैली के साथ प्राप्त कुबेर की मूर्ति से की जा सकती है।[3] कुबेर यहाँ पर अपने वाहन नरवाहन के साथ हैं।

---

1 चन्द्रा, प्रमोद, स्टोन स्कल्पचर इन दि इलाहाबाद म्यूजियम, पृष्ठ 123, आकृति CVIII.X319

2 तत्रैव, पृष्ठ 107, आकृति XCIV.256

3 मुन्शी, के०एम०, सागा आफ इण्डियन स्कल्पचर, पृष्ठ 68

वह मनुष्य आकृति के पृष्ठ भाग पर आसीन हैं जिसमें वह अपने दोनों हाथों को उठा कर देवता को सहारा दिये हुए हैं।

इस प्रकार भारत वर्ष के उत्तरी भाग से प्राप्त कुबेर की प्रतिमाओं के अध्ययन एवं विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि समय-समय पर कुबेर का विविध रूपों में रूपाङ्कन किया गया। भरहुत में कुबेर नरवाहन पर खड़े हैं। इस प्रतिमा में न तो कोई अन्य आकृति है और न तो वह वृकोदर हैं । मथुरा से प्राप्त कतिपय प्रतिमाओं में कुबेर को वृकोदर रहित स्वस्थ शरीर वाले पुरुष के रूप में चित्रित किया गया तथा यहाँ उनका वाहन भी अनुपस्थित है। वह बायें हाथ में धन की थैली को धारण करते हैं जो उनकी प्रधान विशेषता है। उनका दाहिना हाथ अभय मुद्रा में प्रदर्शित होना, उनके देवत्व की अवधारणा की पुष्टि करता है। मथुरा की कतिपय प्रतिमाओं में देवता को वृकोदर दिखाया गया है जबकि उनकी अन्य विशेषताएँ वैसी ही हैं। कालक्रम के आधार पर प्राप्त मथुरा की कुछ बाद की प्रतिमाओं में कुबेर को लम्बे उदर वाले समृद्धिशाली व्यक्ति के रूप में प्रदर्शित किया गया है। आभूषणों से सुसज्जित तथा कृत्रिम केश से युक्त, श्मश्रु तथा अलसायी हुयी नेत्र वाला प्रदर्शित किया गया है। मथुरा से प्राप्त कुबेर की संयुक्त मूर्तियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं जिसमें उन्हें नेतृत्व करता हुआ प्रदर्शित किया गया है। इसमें देवता वृकोदर तथा उनके हाथों में क्रमशः धन की थैली तथा मद्य-चषक विद्यमान है। मथुरा से कुबेर की अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रतिमा गान्धार की हेलेनिस्टिक कला से प्राप्त होती है। यहाँ कुबेर को एक सैनिक के रूप में भाला लिए हुए प्रदर्शित किया गया है। उल्लेखनीय है कि मथुरा तथा गान्धार दोनों कलाओं में कुबेर को वाहन के साथ प्रदर्शित नहीं किया गया है। कतिपय अपवादों के अतिरिक्त प्रतिमाओं में कुबेर के साथ निधि-पात्रों को भी सम्बद्ध नहीं किया गया है। गुप्तकाल, परवर्ती गुप्तकाल तथा मध्यकालीन कुबेर की प्रतिमाओं का विश्लेषण बनर्जी महोदय के द्वारा प्रस्तुत किया गया है। उनकी धारणा के अनुसार प्राचीन परम्परायें ही कुबेर की प्रतिमा निर्माण में प्रचलित नहीं रहीं, बल्कि परवर्ती काल में उनमें उनके नवीन तत्व का समावेश हुआ।[1] इस प्रकार इन सभी उद्धरणों में

---

1 बनर्जी, जे०एन०, ई०एच०आई०, पृष्ठ 344

कुबेर-देवता के वाहन की अनुपस्थिति एक सन्देह को जन्म देता है,यद्यपि कन्नौज के महत्वपूर्ण चित्रफलक में देवता को नरवाहन के रूप में देखा जा सकता है।

पौराणिक-परम्परा में कुबेर की प्रतिमाओं की तुलना में बौद्ध एवं जैन-धर्म में प्रतिमाएँ अल्पसंख्या में प्राप्त होती हैं। धन के बौद्ध देवता जम्भल की प्रतिमा देश के विभिन्न भागों से प्राप्त होती है। जो पौराणिक परम्परा में प्राप्त कुबेर की वृकोदर प्रतिमा के समान है। कुछ प्रारम्भिक तथा बाद की मध्यकालीन प्रतिमाओं में जम्भल को निधियों के घटों के साथ प्रदर्शित किया गया है। केवल एक आधार पर कुबेर की पौराणिक प्रतिमाओं तथा इनमें अन्तर स्थापित किया जा सकता है। जम्भल की कुबेर-प्रतिमा में हाथ में धन की थैली के स्थान पर नकुलक को प्रदर्शित किया गया है जिसको दबाने पर उसके मुख से सिक्के निकलते हुए दिखाये गये हैं। यहाँ पर नकुलक एक महत्वपूर्ण धन के प्रतीक के रूप में उच्चित्रित है। कतिपय प्रतिमाओं में जम्भल को ध्यानी बुद्धों के साथ चित्रित किया गया है। व्यवहारिक रूप से जैन कुबेर प्रतिमाओं तथा पौराणिक कुबेर प्रतिमाओं में कोई अन्तर प्रतीत नहीं होता। बौद्ध देवता जम्भल के समान जैन कुबेर कभी-कभी अपने मुकुट पर 'जिन' को धारण करते हैं अथवा उनका मूर्तन एक 'जिन' के साथ किया गया है। अकोटा कांस्य उच्चित्रण में नग्न आदिनाथ को अम्बिका तथा कुबेर के साथ उच्चित्रित किया गया है।[1] पौराणिक परम्परा की तरह कुबेर कमल पर सुखासन मुद्रा में बैठे हुए हैं। उनका उदर कुछ निकला हुआ प्रदर्शित है। दाहिने हाथ में गेंद तथा बायें हाथ में एक लम्बी थैली लिए हुए हैं। उनके सिर पर करण्डमुकुट है तथा अनेकशः आभूषणों से सुसज्जित होने के कारण वे धन के देवता प्रतीत होते हैं।

दक्षिण-भारत से कुबेर की अधिक प्रतिमाएँ नहीं प्राप्त होती हैं। राव तथा डुब्रेइल ने इनका विवरण प्रस्तुत नहीं किया गया है। परवर्तीकालीन उनके लेखों [2] में यह उल्लेख मिलता है कि कुबेर श्वेत अश्व पर आसीन हैं तथा तलवार तथा बकलस (दो सिरों को बाँधने वाला धातु का बना बकसुआ) उनके हाथों में है जो उनके योद्धा तथा सेनानायक

---

1 मुन्शी, के०एम०, सागा ऑफ इण्डियन स्कल्पचर, चित्र सं० 47

2 डुब्रेइल, जी०, आइकोनोग्राफी ऑफ सदर्न इ ण्डिया, पृष्ठ 108

होने की पुष्टि करता है। इस प्रकार की प्रतिमाएँ दक्षिणी भारत में नहीं प्राप्त होती हैं। दक्षिणी भारतीय अधिकांश आगमों में कुबेर को नरवाहन के रूप में प्रस्तुत किया गया है जैसा कि उनके उत्तर भारतीय आकृतियों में देखने को मिलता है।

कुबेर से सम्बन्धित कतिपय परम्पराएँ तिब्बत में प्राप्त होती हैं। यह उल्लेखनीय है कि इस क्षेत्र में बौद्धों की वज्रयान परम्परा का प्रभाव अत्यधिक था जिसका निदर्शन कुबेर से सम्बन्धित विवरणों में भी देखा जा सकता है। कुबेर को त्रिशीर्ष, त्रिपाद, अष्टदन्त हरिताक्ष के रूप में तिब्बती परम्परा में वर्णित किया गया है। यह उल्लेखनीय है कि कुबेर का यह रूप न तो भारतवर्ष और न तो भारतवर्ष के बाहर किसी भी प्रतिमा में प्राप्त होता है। कुबेर के हाथों में नकुलक तथा गदा धारण करने की परम्परा भी तिब्बत में प्राप्त होती है। तिब्बती लामाओं का यह विश्वास है कि नकुल नागों के ऊपर विजय का प्रतीक है जो पहले धर्मपाल नामक दो स्वरूप लामा बौद्ध मत में विशेष रूप से प्रचलित हैं।[1] 'यी–दम' के रूप में कुबेर को जम्भल कहा जाता है जो सम्भवतः जम्भार से उत्पन्न है क्योंकि 'यी–दम' के रूप में कुबेर अपने दाहिने हाथ में जम्भार या नीबू निरन्तर धारण किये रहते हैं। बायें हाथ में नकुलक जिससे रत्न निकलते हुए प्रदर्शित है। 'यी–दम' के एक द्वितीय स्वरूप का भी प्रचलन लामा–धर्म के अन्तर्गत था जिसमें कुबेर दाहिने हाथ में कपाल तथा बायें हाथ में लम्बा नकुलक धारण किये रहते हैं। वे सर्प के आभूषणों से युक्त तथा उनके मुकुट में ध्यानी बुद्ध सम्भवतः रत्नसंभव की प्रतिमा निर्मित रहती है।[2] जम्भल के त्रिमुख तथा षड्भुजी होने का भी उल्लेख साधनमाला में प्राप्त होता है। जिसमें उन्हें वज्रपर्यङ्क मुद्रा में प्रदर्शित किया जाता है तथा उनको प्रज्ञा–वसुधारा को अपने दोनों हाथों से आलिंगन करते हुए दिखाया गया है। शेष दोनों दाहिने हाथों में वह वज्र तथा खड्ग धारण किये रहते हैं तथा शेष दोनों वामहस्त में मरकतमणि (पन्ना) तथा कमल धारण किये रहते हैं।[3] यह उल्लेखनीय है कि त्रिमुख तथा षड्भुजी जम्भल की

---

1 गेटी, ए०, दि गाड्स ऑफ नार्दन बुद्धिज्म, पृष्ठ 140

2 तत्रैव, पृष्ठ 140

3 भट्टाचार्य, बी०, बुद्धिस्ट आइकोनोग्रैफी, पृष्ठ 238

प्रतिमाएँ अल्प मात्रा में ही प्राप्त होती है। पीपिङ्ग के चीनी संग्रह में इस स्वरूप को प्रदर्शित करने वाली जम्भल की दो प्रतिमाएँ संग्रहीत हैं।[1] इस प्रकार 'यी–दम ' के रूप में कुबेर के सौम्य तथा रौद्र दोनों स्वरूप लामा बौद्ध मत में प्राप्त होते हैं। यह उल्लेखनीय है कि तन्त्र तथा वज्रयान परम्परा के प्रभाव के कारण कुबेर जम्भल के रूप में अवश्य प्रदर्शित किये गये, परन्तु उनका जो स्वरूप पौराणिक परम्परा में विद्यमान था, वह सर्वथा तिरोहित नहीं हुआ। यही कारण है कि कुबेर को आसनस्थ मुद्रा में प्रदर्शित करते समय उनके दाहिने पैर को कमल पुष्प पर दिखाया गया है। उनके पार्श्व में कभी–कभी शंख तथा औंधे मुख घट का अङ्कन किया गया है। घट में से निकलते हुए रत्न भी प्रदर्शित किये गये हैं। कभी–कभी इनके दाहिने हाथ में भी घट प्रदर्शित किया गया है।[2]

'धर्मपाल ' के रूप में कुबेर को या तो सिंह के ऊपर आसीन प्रदर्शित किया गया है अथवा खोल्बोक पीठिका पर प्रदर्शित किया गया है। कभी–कभी उन्हें अश्व पर भी बैठे हुए प्रदर्शित किया गया है। ग्रुण्डवेल ने कुबेर के एक ऐसे स्वरूप का उल्लेख किया है जिसमें उन्हें राक्षस के ऊपर खड़े हुए प्रदर्शित किया गया है। धर्मपाल के रूप में सामान्यतया उन्हें द्विभुजी रूप में ध्वज अथवा त्रिशूल दाहिने हाथ में तथा लघु नकुलक बायें हाथ में धारण किये हुए प्रदर्शित किया गया है। कभी–कभी उन्हें दीपङ्कर बुद्ध और मनल बुद्ध दोनों के साथ में अङ्कित किया जाता था।[3]

गेटी ने कांस्य की बनी हुयी कुबेर की एक ऐसी प्रतिमा का विवेचन किया है जो प्रतिमाशास्त्रीय दृष्टि से विलक्षण प्रतीत होती है क्योंकि यह प्रतिमा न तो साहित्यिक लक्षणों से मेल रखती है और न ही अन्य ज्ञात प्रतिमापरक उदाहरणों से इसका सादृश्य स्थापित किया जा सकता है। इसमें कुबेर के तीन पाद प्रदर्शित किये गये हैं किन्तु तीन

---

1 तत्रैव, पृष्ठ 179

2 गेटी, ए०, दि गाड्स ऑफ नार्दन बुद्धिज्म, पृष्ठ 141

3 तत्रैव, पृष्ठ 141

शीर्ष के स्थान पर पाँच शीर्ष प्रदर्शित किये गये है। मध्यशीर्ष के तीनों तरफ तथा उसके ऊपर एक शीर्ष दिखाया गया है। केवल ऊपरी शीर्ष को छोड़कर सभी रौद्र रूप में प्रदर्शित हैं तथा सभी शीर्षों में तृतीय नेत्र का अङ्कन किया गया हे। इस प्रतिमा में कुबेर को अष्टभुजी रूप में प्रदर्शित किया गया है। ऊपर के दो हाथ वज्र हुँकार मुद्रा में दिखाये गये हैं तथा शेष दो हाथों में वे कपाल लिए हुए प्रदर्शित किए गये हैं। अन्य हाथों में घन्टा, वज्र तथा ग्रियुग अथवा खड्ग धारण किये रहते हैं तथा अधोवस्त्र के रूप में मनुष्य चर्म लपेटे रहते हैं तथा उनके तीनों पैर मानव खोपड़ी पर रखे हुए प्रदर्शित हैं तथा उनके आभूषण सर्प के रूप में दिखाये गये हैं। [1]

---

1 तत्रैव, पृष्ठ 141, चित्र संख्या 49

षष्ठ अध्याय

उपसंहार

उपसंहार

'कुबेर' के मूल में 'कुप्' धातु का प्रयोग प्रतीत होता है जिसका अर्थ है उभाड़ना या ऊपर उठाना। इसी 'कुप्' धातु से 'कुब्ज' तथा 'कुभ्र' शब्द की व्युत्पत्ति हुयी है जिसका अर्थ है ऊपर उठा हुआ या वक्र। व्युत्पत्तिपरक यह विशेषता कुबेर की प्रतिमाओं में भी दृष्टिगत होती हैं। उन्हें अधिकाशंतः घटोदर रूप में ही चित्रित किया गया है। हाप्किंस ने यह सम्भावना व्यक्त की है कि प्रारम्भिक स्तर पर कुबेर पर्वतीय क्षेत्र में निवास करने वाले अर्द्ध देवता थे। क्रेश्मेर ने यह सम्भावना व्यक्त की है कि कुबेर के साथ पाश-क्रीड़ा जैसे तत्व हित्तीयों तथा मितन्नियों से प्रभावित होकर जुड़ी। इससे स्पष्ट है कि कुबेर की अवधारणा किसी न किसी रूप में इण्डो-यूरोपियन अवधि में ही अर्थात् भारतवर्ष में आर्यों के आगमन के पहले ही विद्यमान थी।

कुबेर के व्यक्तित्व की अवधारणा तथा उनकी उपासना के विकासात्मक चरणों का ऐतिहासिक अध्ययन अनेक महत्वपूर्ण तथ्यों को उद्घाटित करता है। कुबेर पहले यक्ष के रूप में प्रतिष्ठित थे। यक्षोपासना के प्राचीनतम संकेत ऋग्वेद से ही मिलने लगते हैं। यक्ष वैदिकेतर परम्परा से सम्बिन्धित थे। ऋग्वेद में एक स्थल पर मित्र और वरुण को सन्दर्भित करते हुए यह कहा गया है कि उनकी प्रजा में न तो कोई आश्चर्य दिखायी पड़ता है, और न तो कोई यक्ष । अद्भुतक्रतु' तथा 'महद्बल' जैसी उपाधियाँ भी यक्षों के लिए ऋग्वेद में प्रयुक्त हुयी हैं। अथर्ववेद में यक्षों को 'इतरजन' भी कहा गया है। इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि यक्षों की उपासना करने वालों को प्रारम्भिक स्तर पर निम्न दृष्टि से देखा जाता था। भले ही यक्ष वैदिक देवताओं की कोटि में परिगणित न किये गये हों, परन्तु अथर्ववेद की रचना के समय तक उन्हें वैदिक धारा में समाहित करने का प्रयास किया जाने लगा था। अथर्ववेद में यक्षों के लिए ब्रह्म

शब्द का प्रयोग मिलता है तथा यक्षों के निवास के रूप में अमृत से गिरी हुयी 'अपराजिता ब्रह्मपुरी' की कल्पना की गयी है। इसी ब्रह्मपुरी में हिरण्यकोष था। पाणिनि के एक उद्धरण में भी यक्ष और वैदिक संस्कृति के पारस्परिक सम्बन्ध पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। पाणिनि ने सेवल, सुपरि और विशाल नामक यक्षों का उल्लेख करते हुए इनके साथ साथ वरुण और अर्यमा नामक देवताओं का भी उल्लेख किया है। यक्ष और कुबेर के पारस्परिक सम्बन्धों का स्पष्टीकरण दोनों के धन से सम्बन्धित होने की मान्यता में देखा जा सकता है। भारतीय परम्परा में यक्ष तथा यक्षिणियाँ धन प्रदान करने में तथा भूमि के अन्दर निहित धन की रक्षा करने के लिए प्राचीन काल से ही लोकविश्रुत हैं। अथर्ववेद में हिरण्यकोष होने का उल्लेख उनके धन से सम्बन्धित होने की मान्यता का महत्वपूर्ण प्रमाण है। कुबेर की मान्यता भी 'धनद' अर्थात् धन प्रदान करने वाले देवता के रूप में थी। अतः दोनों का सम्बन्ध स्वभाविक था। कुबेर की उपासना से सम्बन्धित अनेक कर्मकाण्ड वैदिक वाङ्मय में प्रचलित थे। अथर्ववेद में कुबेर की प्रचलित संज्ञा वैश्रवण भी प्राप्त होती है तथा इन्हें धनपति, विशाम्पति तथा राजा इत्यादि उपाधियों से विभूषित किया गया है। तैत्तिरीय आरण्यक में कुबेर से सम्बन्धित वैश्रवण-यज्ञ का विस्तृत विवरण प्राप्त होता है। इसी आरण्यक में उनके निवास के रूप में सुदर्शन,क्रौञ्च तथा मैनाक पर्वतों का उल्लेख किया गया है तथा उनके नगर से 'शतद्वाट्टार' कहा गया है। कुबेर के आह्वान से सम्बन्धित एक मंत्र ऐतिहासिक दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है जिससे उन्हें अन्नमुखी लक्ष्मी को धारण किये हुए चित्रित किया गया है। उसी अन्नमुखी लक्ष्मी का सम्बन्ध कृषि से था। कुबेर और लक्ष्मी के परस्पर सम्बन्धित होने का यह प्राचीनतम उल्लेख है। यह उल्लेखनीय है कि 'कुबेर यज्ञ' के सन्दर्भ में अग्नि स्थापन बलिहरण तथा उपस्थापन इत्यादि कृत्यों का भी उल्लेख प्राप्त होता है जिससे स्पष्ट है कि जो उपासना प्रारम्भ में वैदिकेतर थी, उसका स्थान धीरे-धीरे वैदिक कर्मकाण्डों ने ले लिया। इसीप्रकार माध्यन्दिनि संहिता तथा श्रौत एवं गृह्य सूत्रों में भी कुबेर की उपासना

से सम्बन्धित अनेक साक्ष्य प्राप्त होते हैं। इस प्रकार यदि अथर्ववेद से लेकर आरण्यक ग्रन्थों तक कुबेर से सम्बन्धित विवरणों का परिक्षण किया जाए तो यह ज्ञात होता है कि कुबेर धीरे-धीरे अर्द्धदेव की श्रेणी से ऊपर उठकर पूर्ण देवत्व की श्रेणी को प्राप्त हो रहे थे। कुबेर की 'कामकाम' तथा 'कामेश्वर' उपाधियाँ हैं, जो अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रतीत होती हैं। सम्भवतः उस समय तक यह धारणा बद्धमूल हो चुकी थी कि 'वैश्रवण-यजन्' के द्वारा मनुष्य की सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। यह उल्लेखनीय है कि मुख्य वैदिक धारा में सम्मिलित हो जाने के पश्चात् भी कुबेर का प्रारम्भिक स्वरूप पूर्णतया तिरोहित नहीं हो सका। हिरण्यकेशी गृहयसूत्र में जातक के उत्पन्न होने के समय विविध प्रकार की वस्तुओं को प्राप्त करने वालों में 'कौबेरकों' का भी उल्लेख किया गया है तथा इन्हें राक्षसराज के द्वारा प्रेषित कहा गया है।

गृह्यसूत्रों में नवनिर्मित भवन में प्रवेश करते समय कुबेर की पूजा से सम्बन्धित कृत्यों का विवरण प्राप्त होता है। कौथुम गृह्यसूत्र में वैश्रवण की प्रार्थना द्वारा भूत-प्रेतों को दूर करने का वर्णन किया गया है। गृह्यसूत्रों के समय तक कुबेर सभी प्रकार की दैवीय शक्तियों से सम्पन्न मानलिए गये थे।

कुबेर की उपासना महाकाव्यों तथा पुराणों में विविध सन्दर्भों से भी परिलक्षित होती है। महाभारत का यह उल्लेख कि पितामह ब्रह्मा ने कुबेर को अमरत्व, धन का आधिपत्व तथा लोकपालत्व तीन वरदान प्रदान किये थे, विशेष महत्वपूर्ण प्रतीत होता है। एक स्थल पर यम, कुबेर, वरुण तथा इन्द्र का उल्लेख चार लोकपालों के रूप में किया गया है। उद्योग पर्व में कुबेर को आहुति देने का उल्लेख किया गया है। महाभारत में कुबेर को पूरब दिशा से सम्बन्धित किया गया है। मत्स्य पुराण में अन्य लोकपालों के साथ कुबेर को भी गन्ध, धूप इत्यादि से उनके अर्चन तथा मंत्र के द्वारा उन्हें बलि प्रदान करने का उल्लेख मिलता है। विष्णुधर्मोत्तर पुराण में भी कुबेर की उपासना तथा बलि प्रदान करने का विस्तृत विवरण दिया गया है।

कुबेर न केवल पौराणिक परम्परा में बल्कि बौद्ध परम्परा में भी अत्यधिक लोकप्रिय थे। यद्यपि प्रारम्भिक बौद्ध साहित्य में यक्ष पूजा को तिरच्छानविज्जा तथा

मिच्छाजीवा कहा गया है परन्तु यक्षों की उपासना अत्यन्त प्रतिष्ठित थी। यही कारण है कि महानिद्देश में कुबेर के लिए भगवान् शब्द का प्रयोग किया गया है। धर्मधातुवागीश्वर मण्डल में यक्षों के जिन आठ अधिपतियों का उल्लेख मिलता है, उनमें कुबेर को सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना गया है। जैन ग्रन्थ अङ्गविज्जा में वरुण, सोम तथा इन्द्र इत्यादि के समकक्ष वैश्रवण अर्थात् कुबेर का उल्लेख किया गया है। इससे स्पष्ट है कि यक्ष और कुबेर की अभिन्नता तथा एकात्मकता को केवल वैदिक एवं पौराणिक परम्परा में ही नहीं, अपितु जैन एवं बौद्ध साहित्य में भी उनकी एकात्मकता एवं अभिन्नता को स्वीकार किया गया है।

कुबेर की उपासना से सम्बन्धित प्रमाण जैन साहित्य में भी प्राप्त होते हैं। कुषाण कालीन अंगविज्जा नामक ग्रन्थ में वैश्रवण का उल्लेख प्राप्त होता है तथा उनसे सम्बन्धित उपासना भी। भगवती सूत्र में कुबेर के अनुचर मणिभद्र तथा पूर्णभद्र को शक्तिशाली स्वीकार किया गया है। बौद्धों की भाँति जैनियों में भी कुबेर को उत्तर दिशा के स्वामी के रूप में चित्रित किया गया है। कुबेर का वास्तु देवता के रूप में विवेचन जैन-परम्परा की विशिष्ट देन है।

रामायण और महाभारत में भी वैदिक एवं वैदिकेतर तत्वों के परस्पर समायोजन की प्रक्रिया परिलक्षित है। रामायण में मुनि विश्रवा और देववर्णिनी के पुत्र के रूप में कुबेर का वर्णन इसी परम्परा का परिचायक है। पुराणों में कुबेर की उपासना से सम्बन्धित व्रतों का भी उल्लेख किया गया है। कुबेर से सम्बन्धित 'रोच' व्रत में केवल रात्रि में भोजन करने का विधान किया गया है। मत्स्य पुराण में उनके ध्वज स्थापन तथा गन्ध धूप इत्यादि से पूजन करने की परम्परा प्राप्त होती है। इससे स्पष्ट है कि यक्ष-परम्परा से प्रारम्भ होकर कुबेर वैदिक देवताओं की श्रेणी में सम्मिलित हो गये तथा पौराणिक परम्परा में उनके स्वतंत्र उपासना व्रतों तथा कर्मकाण्डों का विधान किया जाने लगा। इसी के समानान्तर इनके लोकपाल स्वरूप की कल्पना भी विकसित होती रही।

कुबेर जब स्वतंत्र देवता के रूप में प्रतिष्ठित होने लगे तो उनके साथ अन्य देवी-देवताओं यथाः लक्ष्मी, हारीति, भद्रा इत्यादि को भी सम्बन्धित कर दिया गया। लक्ष्मी को सुन्दरता, उर्वरता एवं भाग्य की देवी के रूप में स्वीकार किया गया। मातृदेवी की उपासना प्राग् ऐतिहासिक काल से ही प्रचलित थी। हड़प्पा, मोहनजोदड़ो इत्यादि से अनेक ऐसी मुहरें प्राप्त हुयी हैं, जिनमें उर्वरता से सम्बन्धित मातृदेवियों के चित्रण प्राप्त होते हैं। ऋग्वेद के 'श्रीसूक्त' में 'श्री' अथवा 'लक्ष्मी' की अनेक उपाधियाँ प्राप्त होती हैं जो गजलक्ष्मी स्वरूप के अध्ययन की दृष्टि से उल्लेखनीय है। उनकी 'हस्तिनादप्रमोदिनी' उपाधि कालान्तर में दो गजों के द्वारा अभिषिक्त होने की परम्परा को जन्म देने में सहायक प्रतीत हुयी। उनकी पद्मिनी, पद्मस्थिता, पद्मवर्णा इत्यादि उपाधियाँ भी उल्लेखनीय हैं क्योंकि कालान्तर में पद्म लक्ष्मी का अनिवार्य तत्व बन गया। बौद्ध साहित्य में भी लक्ष्मी को महत्वपूर्ण प्रतिष्ठा प्रदान की गयी। उसे पूर्व दिशा की संरक्षिका के रूप में स्वीकार किया गया। धम्मपद अट्ठकथा में इन्हें भाग्य एवं साम्राज्य को प्रदान करने वाली कहा गया है।

जैन साहित्य में श्रीलक्ष्मी की विशेषताएँ शुभ लक्षणों से युक्त बतायी गयी है। कल्पसूत्र में इन्हीं के द्वारा महावीर के जन्म की भविष्यवाणी करते हुए चित्रित किया गया है। उनके स्वरूप का वर्णन करते हुए इन्हें दीनार की माला धारण करने वाली, कमल के वृक्ष में पुष्पों से घिरी हुयी तथा हाथियों के द्वारा इनकी सूड़ों से बार-बार अभिषिक्त होती हुयी चित्रित किया गया है। लक्ष्मी तथा उनके गजलक्ष्मी स्वरूप का प्रतिमापरक विवेचन भी अनेक नवीन तथ्यों को उद्घाटित करता है। मत्स्य पुराण में इन्हें श्रीफल तथा कमलधारिणी के रूप में चित्रित किया गया है। विष्णुधर्मोत्तर पुराण में इन्हें चतुर्भुजी कहा गया है। इसीप्रकार कतिपय ग्रन्थों में इन्हें अनेक हस्ता के रूप में चित्रित किया गया है। विश्वकर्माशास्त्र में पात्र एवं गदा तथा खटेक और बिल्व फल धारण करने का विधान प्राप्त होता है। मार्कण्डेय पुराण के देवी माहात्म्य खण्ड में उनके आठ हाथों में विभिन्न आयुधो को धारण करने की परम्परा प्राप्त होती

है। कला में उनका अंकन जनजातीय सिक्कों पर प्राथमिक स्तर पर किया गया है। उनका प्रारम्भिक स्वरूप कमलासीना के रूप में दिखायी पड़ता है। कौशाम्बी तथा उज्जयिनी के सिक्कों पर भी उनके गजलक्ष्मी स्वरूप का अंङ्कन किया जाने लगा। इण्डोशिथियन सिक्कों पर उन्हें पुष्कलावती की रक्षिका के रूप में अंकित किया गया है। अजिलिसेस के सिक्कों पर उनका गजाभिषिक्त रूप द्रष्टव्य है। इससे स्पष्ट है कि न केवल भारतीय अपितु विदेशी शासकों द्वारा भी उनके विभिन्न रूपों की प्रतिष्ठा की जा रही थी। द्वितीय तथा प्रथम शताब्दी ई०पू० के सन्दर्भ में भरहुत, बोधगया तथा साँची की वेदिकाओं एवं तोरण द्वारों पर श्रीलक्ष्मी का अङ्कन प्राप्त होता है। इसी काल की मृण्मूर्तियों पर भी उन्हें पद्मासीना तथा पद्मपीठा के रूप में अङ्कित किया गया है। श्रीलक्ष्मी के साथ-साथ गजलक्ष्मी रूप भी विकसित होता रहा। इसके भी प्रमाण भरहुत साँची इत्यादि से प्राप्त होते हैं। कुषाण-काल में भी लक्ष्मी को गजाभिषिक्त तथा 'श्रीलक्ष्मी' के रूप में अङ्कित किया जाता रहा। इसके साथ-साथ उनकी अभय-मुद्रा भी प्रतिष्ठित होने लगी थी। सम्भवतः इसी अवधि में कुबेर के साथ लक्ष्मी का पूर्ण सम्बन्ध भी स्थापित हो गया था। मथुरा से प्राप्त प्रारम्भिक कुषाण-काल की एक छोटी पट्टिका पर अर्द्धनारीश्वर विष्णु, गजलक्ष्मी तथा कुबेर का अङ्कन प्राप्त होता है। कतिपय अन्य फलकों में लक्ष्मी, भद्रा, हारीति तथा कुबेर का साथ-साथ अङ्कन किया गया है। गुप्तकालीन सिक्कों एवं मुहरों पर भी लक्ष्मी का स्वरूप प्रतिविम्बित होती हैं। कतिपय मुहरों पर लक्ष्मी के साथ-साथ धन की थैली लिए हुए बौनी आकृति का भी चित्रण किया गया है। सम्भवतः ये कुबेर अथवा कुबेर के परिचारक हैं। गुप्तकाल से लेकर मध्यकाल तक लक्ष्मी और गजलक्ष्मी की प्रतिमाएँ भारतवर्ष के विभिन्न स्थलों से प्राप्त हुयी हैं। दक्षिण भारत में भी यह परम्परा अतिशय प्रतिष्ठित थी जिसके प्रमाण महाबलिपुरम्, एलोरा, पीतलखोरा इत्यादि स्थानों से विशिष्ट रूप में उपलब्ध होती है।

हारीति भी कुबेर परिवार के अङ्ग के रूप में प्रतिष्ठित हो गयी थी। प्रारम्भ में यह राजगृह में निवास करने वाली जातुहारिणी यक्षी थी जो बुद्ध के प्रभाव के कारण

शिशु संरक्षिका के रूप में प्रतिष्ठित हो गयी। हारीति के इस शिशु संरक्षिका स्वरूप को प्रदर्शित करने वाले अनेक फलक मथुरा एवं गान्धार कला में निर्मित किये गये। इन फलको पर वह अनेक शिशुओं के साथ प्रदर्शित की गयी है। गान्धार कला में ही उसका सम्बन्ध पञ्चिक नामक देवता में स्थापित हुआ। पञ्चिक के दाहिने हाथ में भाला तथा बायें हाथ में धन की थैली प्रदर्शित है तथा हारीति के हाथ में पुष्पगुच्छ अथवा कार्नुकोपिया दिखाया गया है जो उसके बहुप्रजनन शक्ति का परिचायक है। पञ्चिक के हाथ में धन की थैली तथा कुबेर के हाथ में भी धन की थैली को प्रदर्शित करने का विधान प्राप्त होता है जो दोनों को कालान्तर में एक ही देवता के रूप में स्थापित करने में प्रमुख कारक सिद्ध हुआ। हारीति की प्रतिमाएँ कुषाण-काल से लेकर मध्यकाल तक निर्मित होती रहीं तथा द्विभुजी प्रतिमाओं के अतिरिक्त चतुर्भुजी प्रतिमाएँ भी निर्मित की गयीं ढाका संग्रहालय में सुरक्षित हारीति के एक हाथ में खप्पर तथा दूसरे में मत्स्य तथा अन्य हाथों में मद्य-चषक तथा शिशु का अंकन किया गया है जिसे पौराणिक दुर्गा, बौद्धों में वज्रयान परम्परा तथा हारीति के परस्पर समन्वय का परिणाम माना जा सकता है। न केवल भारतवर्ष अपितु उसके बाहर मध्य एशिया के क्षेत्रों में भी हारीति अत्यन्त प्रतिष्ठित थी। फरहद-बेग-एलाकी, यारहोतो, डण्डानउलीक इत्यादि के अङ्कन इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है।

मणिभद्र भी कुबेर के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ था। उसे कुबेर के कोष में रखी हुयी भद्रमणि अथवा माङ्गलिक मणि के रक्षक के रूप में स्वीकार किया गया है। यह सार्थवाहों का भी अधिष्ठातृ देवता था जिसकी उपासना से निर्विघ्न व्यापार सम्पन्न होता था। पद्मावती से प्राप्त एक अभिलेख से ज्ञात होता है कि इस नगर में मणिभद्र की उपासना करने वालो का समूह विद्यमान था। महानिद्देश में 'मणिभद्दवतिक' शब्द प्राप्त होता है। कौशाम्बी में भी मणिभद्र की उपासना प्रचलित थी जिसकी पुष्टि मशर्फा ग्राम से प्राप्त प्रथम शताब्दी ई०पू० के एक अभिलेख से होती है। जैन-परम्परा में भी मणिभद्र का उल्लेख प्राप्त होता है। भगवती सूत्र में विशाला के समीप बहुपुत्रिका के मन्दिर का उल्लेख किया गया है। बहुपुत्रिका मणिभद्र तथा

पूर्णभद्र नामक यक्षेन्द्रों की चार प्रमुख रानियों में से एक थी। यू०पी०शाह का यह अनुमान उचित प्रतीत होता है कि सर्वानुभूति तथा अम्बिका नामक यक्ष तथा यक्षी की कल्पना मणिभद्र यक्ष तथा बहुपुत्रिका यक्षी के पूजन की प्राचीन परम्परा पर आधारित था।

बौद्ध एवं जैन परम्परा में भी कुबेर की उपासना महत्वपूर्ण रही। चार महाराजिकों की उपासना का उल्लेख प्रायः सभी बौद्ध साहित्य में प्राप्त होता है। इन चतुर्महाराजिक देवताओं में वैश्रवण को उत्तर दिशा का अधिपति स्वीकार किया गया था। वैश्रवण के अनुयायियों को 'वैश्रवण-कायिक' कहा जाता था। वैश्रवण कुबेर का ही एक अन्य अभिधान था तथा कुबेर की राजधानी के रूप में अलकापुरी का वर्णन प्राप्त होता है। महानिद्देश में कुबेर तथा मणिभद्र दोनों के लिए भगवान् शब्द का प्रयोग किया गया है। ललितविस्तर में कुबेर अथवा वैश्रवण से सम्बन्धित अनेक उल्लेख प्राप्त होते हैं जो अनेक महत्वपूर्ण तथ्य को उद्घाटित करते हैं। देवकुलोपनयनपरिवर्त नामक अंश का यह उल्लेख जिस समय बोधिसत्व ने देवकुल में प्रवेश किया, उस समय शिव, स्कन्द, नारायण तथा कुबेर इत्यादि की प्रतिमाएँ अपने-अपने स्थानों से उठकर बोधिसत्व के चरणतलों में गिर पड़ी, महत्वपूर्ण प्रतीत होता है क्योंकि इससे स्पष्ट है कि उस समय तक कुबेर की भी प्रतिमाएँ मन्दिरों में उपासना हेतु रखी जाती थीं। अभिनिष्क्रमणपरिवर्त में कुबेर के योद्धा रूप का विवरण प्रस्तुत किया गया है जिसमें उन्हें हाथ में जलती हुयी मशालें लिए हुए, धनुष, तीर, तलवार, बर्छी, भाला, त्रिशूल, चक्र, भिन्दिपाल आदि आयुध धारण किये हुए तथा वर्म एवं कवच कसकर बाँधे हुए चित्रित किया गया है। कुबेर के पूर्वजन्म का विवरण भी सुमङ्गलविलासिनी तथा सुत्तनिपात की टीका में प्राप्त होता है जिसके अनुसार कुबेर पहले ब्राह्मण थे। उत्पादन का सातवाँ भाग दान में दे देने के कारण मृत्यु के पश्चात् वे कुबेर के रूप में उत्पन्न हुए। कुबेर का एक अन्य स्वरूप बौद्ध धर्म में जम्भल के रूप में प्राप्त होता है । साधनमाला में इनकी उत्पत्ति रत्नसंभव अथवा

अक्षोभ्य नामक ध्यानी बुद्ध से हुयी है। यद्यपि प्रतिमापरक प्रमाणों में इनका सम्बन्ध अमिताभ से भी दिखाई पड़ता है। जम्भल की प्रतिमाएँ उत्तर भारत के अनेक स्थानों से प्राप्त हुयी हैं। प्रारम्भिक स्तर पर जम्भल तथा कुबेर की प्रतिमाओं में अधिक भिन्नता नहीं प्रतीत होती। वे प्रायः कुबेर के समान ही लगते हैं। जम्भल को एक हाथ में चकोतरा फल धारण किये हुए तथा दूसरे हाथ में मद्य-चषक लिए हुए मथुरा की कला में प्रदर्शित किया गया है। गुप्तकाल में भी यही परम्परा प्रचलित रही। सातवीं शताब्दी में वज्रयान परम्परा के प्रभाव के कारण उनके स्वरूप में अनेक नवीन तत्व समाहित होने लगे। साधनमाला में उन्हें अर्द्ध-दैवीय शक्तियों को पैर से प्रताड़ित करते हुए आलीढ़-मुद्रा में शङ्ख मुण्ड एवं पद्म मुण्ड को धारण किये हुए प्रदर्शित करने का विधान है। शङ्ख एवं पद्म दोनों निधियाँ थीं जिन्हें वज्रयानी तांत्रिक प्रभाव के कारण मुण्ड के रूप में प्रदर्शित किया जाने लगा था। जम्भल की पत्नी के रूप में वसुधारा का उल्लेख बौद्ध साहित्य में प्राप्त होता है। साधनमाला में जम्भल से सम्बन्धित अनेक साधन प्राप्त होते हैं। कतिपय साधनों में उन्हें तीन मुख तथा छह भुजाओं वाला कहा गया है। उल्लेखनीय है कि जम्भल की प्रतिमाएँ गुप्तकाल के पश्चात् भी निर्मित होती रहीं, परन्तु अधिकांश प्रतिमाओं में उनका सौम्य स्वरूप ही दिखायी पड़ता है। उच्छुष्म जम्भल जिसे उनके रौद्र एवं भयानक स्वरूप का प्रतीक माना गया है, भी अत्यन्त लोकप्रिय था। इस स्वरूप से भी सम्बन्धित अनेक साधन साधनमाला में वर्णित किये गये हैं। साहित्यिक लक्षणों को समाहित किये हुए उच्छुष्म जम्भल की एक विशिष्ट प्रतिमा सारनाथ से प्राप्त हुयी है जिसमें उन्हें सर्पों की माला पहने हुए तथा कपाल धारण किये हुए प्रदर्शित किया गया है। जम्भल की 'जलेन्द्र' उपाधि भी साधनमाला में प्राप्त होती है। जम्भल को प्रसन्न करने के लिए 'जम्भल जलेन्द्राय स्वाहा' मन्त्र के जप का विधान प्राप्त होता है।

जैन-परम्परा में कुबेर को सर्वाह्न अथवा सर्वानुभूति नामक यक्ष के रूप में मान्यता प्रदान की गयी है तथा इन्हें बाइसवें तीर्थङ्कर नेमिनाथ के यक्ष के रूप में

वर्णित किया गया है। कुबेर के दिक्पाल रूप की परम्परा जैन मान्यता में भी प्रचलित रही। जैनियों ने भी कुबेर को उत्तर दिशा के दिक्पाल के रूप में स्वीकार किया है। धर्मधातुवागीश्वरमण्डल में यक्षों के आठ अधिपतियों का उल्लेख मिलता है जिनमें वैश्रवण नाम भी उल्लिखित है। जैन ग्रन्थ अङ्गविज्जा में भी अनेक देवी-देवताओं के साथ कुबेर का भी उल्लेख किया गया है। मणिभद्र को कुबेर का अनुचर मानने की परम्परा जैनियों में भी विद्यमान थी।

महाकाव्यों एवं पुराणों में भी कुबेर के सम्बन्ध में विपुल विवरण प्राप्त होते हैं जिसमें एक ओर कुबेर को यक्ष परम्परा से सम्बन्धित करने वाली प्राचीन विचारधारा का समर्थन होता है तो दूसरी ओर उन्हें पूर्ण रूप से पौराणिक परम्परा में समायोजित करने की विचारधारा भी दृष्टिगत होती है। महाभारत के वन-पर्व में कुबेर के अनुचर के रूप में यक्षों की अनेक विशेषताएँ प्राप्त होती हैं। महाभारत में कुबेर के अमरत्व प्राप्त करने का भी विवरण प्राप्त होता है। कुबेर की उत्पत्ति से सम्बन्धित विविध कथानक भी महाभारत में प्राप्त होते हैं। उल्लेखनीय है कि इन्हें इस ग्रन्थ में पुलस्त्य का पुत्र कहा गया है जबकि रामायण में इन्हें पुलस्त्य के पुत्र विश्रवा के पुत्र के रूप में चित्रित किया गया है। कुबेर का अलकाधिप, धनाधिप तथा गुह्यकाधिप स्परूप अत्यधिक विशद रूप में वर्णित है। महाभारत में कुबेर तीर्थ का उल्लेख प्राप्त होता है, जहाँ तपस्या करके कुबेर ने अनेक वरदान प्राप्त किया था। सभापर्व में कुबेर की सभा का अत्यन्त विस्तृत विवरण प्राप्त होता है जिसमें गन्धर्व, किन्नर इत्यादि निरन्तर कुबेर की स्तुति करते हुए प्रदर्शित किये गये हैं। उल्लेखनीय है कि इसी प्रसङ्ग में शिव को कुबेर के सखा के रूप में चित्रित किया गया है। कुबेर की **'प्रभु'** उपाधि भी महाभारत में प्राप्त होती है जो विशेष महत्वपूर्ण है। महाभारत का यह उल्लेख कि कुबेर शुक्राचार्य से धन का चतुर्थ भाग प्राप्त करते हैं तथा उस धन का सोलहवाँ भाग मनुष्य को प्रदान करके शेष का उपभोग स्वयं करते हैं, विशेष महत्वपूर्ण प्रतीत होता है। कुबेर यक्ष तथा राक्षसों के अधिपति होने के कारण कर के रूप में धन प्राप्त करते रहे होंगे तथा उसका कुछ अंश अपने अनुयायियों को भी प्रदान करते रहे होंगे।

रामायण में कुबेर के अनेक उल्लेख प्राप्त होते हैं जिसमें कुबेर को विश्रवा का पुत्र बताया गया है। कुबेर के द्वारा तम्बुरु को शाप देने की घटना उनके व्यक्तित्व के एक अन्य पक्ष की ओर संकेत प्रदान करती है। अगस्त्याश्रम में राम के द्वारा इनके मन्दिर के दर्शन का उल्लेख इस तथ्य को प्रमाणित करता है कि महाकाव्य काल में कुबेर के मन्दिर भी निर्मित होने लगे थे। रावण द्वारा पराजित होने पर इनके अलकापुरी छोड़ देने पर कैलासपुरी जाने का भी उल्लेख रामायण में प्राप्त होता है। एक अन्य स्थल पर कुबेर की नगरी को 'महोदय ' के रूप में चित्रित किया गया है। राजा मरुत के यज्ञ में कुबेर के द्वारा कृकलास या छिपकली का रूप धारण करने का भी विवरण प्राप्त होता है। कुबेर के पुत्र नलकूबर का उल्लेख भी रामायण में मिलता है।

भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में कुबेर की उपासना के सन्दर्भ में यह विवरण प्रस्तुत किया गया है कि उन्हें उत्तर दिशा में भलीभाँति स्थापित करके मात्रिकाओं तथा गुह्यकों एवं यक्षों के साथ पुवा तथा अन्य मिष्ठान्नों से कुबेर की उपासना करनी चाहिए। कुबेर को बलि प्रदान करने सम्बन्धी मंत्र का भी विधान इसमें प्राप्त होता है। अमरकोश में कुबेर को एक पिङ्ग तथा एलविल कहा गया है। इसके अतिरिक्त उनकी किन्नरेश, त्रयम्बक सखा, पुण्यजनेश्वर, मनुष्यधर्मन, यक्षराट्, गुह्यकेश्वर, धनद, राजराज, धनाधिप, वैश्रवण, पौलस्त्य तथा नरवाहन इत्यादि उपाधियाँ प्राप्त होती हैं।

पुराणों में कुबेर के विविध स्वरूप वर्णित हैं जिनसे उनकी उपासना परम्परा के स्रोतों तथा प्रतिमालक्षणों पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। ब्रह्माण्ड पुराण में कुबेर को रामायण की भाँति विश्रवा के पुत्र के रूप में ही स्वीकार किया गया है तथा इनकी माता देववर्णिनी को बृहस्पति की पुत्री के रूप में वर्णित किया गया है। इनकी पत्नी का नाम ऋद्धि, पुत्री का नाम मीनाक्षी तथा मणिग्रीव एवं नलकूबर नामक दो पुत्रों का उल्लेख मिलता है। मत्स्य पुराण में इन्हें बारह आदित्यों में से एक आदित्य कहा गया है। ब्रह्माण्ड पुराण में इन्हें सात मरुतगणों में से एक स्वीकार किया गया है। नर्मदा तथा कावेरी के संगम पर भगवान् शिव से तपस्या द्वारा वर प्राप्त करने का विवरण

मत्स्य पुराण में उल्लिखित है। उल्लेखनीय है कि आन्ध्र प्रदेश के भट्टिप्रोलु अभिलेख से भी कुबेर के उस क्षेत्र में लोकप्रियता के प्रमाण प्राप्त होते हैं। सम्भवतः कुबेर पिशाचों से भी सम्बन्धित थे। वायुपुराण में पिशाचक पर्वत पर यक्षों के स्वामी कुबेर के भवन का उल्लेख मिलता है। ब्रह्मपुराण में शिव को कुबेर का इष्ट देव स्वीकार किया गया है। मत्स्यपुराण का यह कथन विशेष उल्लेखनीय है कि जब कुबेर अपने विलासी स्वभाव को छोड़कर शिव की नगरी में आये तथा शिव की उपासना की तो वे गणेशत्व को प्राप्त हो गये। इस कथन से ध्वनित होता है कि काशी के क्षेत्र में यक्षोपासना प्रारम्भ में प्रतिष्ठित थी। इस कथन से यह भी अनुमान किया जा सकता है कि लक्ष्मी के साथ कुबेर की जो उपासना प्राचीनकाल में प्रचलित थी, वह कुबेर के गणेशत्व प्राप्त करने की स्थिति में गणेश के साथ सम्पृक्त हो गयी परन्तु गणेश का वह स्वरूप पार्वती का पुत्र न होकर कुबेर का ही था। कालान्तर में नाम साम्य के कारण कुबेर के साथ-साथ गजानन गणेश भी लक्ष्मी के साथ सम्बद्ध हो गये। विष्णुधर्मोत्तर पुराण में अन्तर्वेदि तथा वहिर्वेदि दो प्रकार की पूजा उपासना का विवरण प्राप्त होता है जिनमें बहिर्वेदि के अन्तर्गत यक्ष, शङ्ख, पद्म, मणिभद्र, नलकूबर इत्यादि भी पूजित देवता के रूप में उल्लिखित हैं। इनमें ये यक्ष, पद्म, शङ्ख, नलकूबर तथा मणिभद्र कुबेर से ही सम्बन्धित थे। इस कथन से यह ध्वनित होता है कि कुबेर के पुत्र नलकूबर को भी उपासना का विषय इस समय तक बना लिया गया था। वायुपुराण तथा विष्णुपुराण में यह उल्लेख मिलता है कि यक्ष अन्तर्धान होने की विद्या को कुबेर की सहायता से ही प्राप्त किये थे और इसके लिए उन्होंने कुबेर को बछड़ा बनाकर अन्तर्धान विद्या का वसुधा से दुग्ध रूप में दोहन किया था। यह कथन उनके गुह्यकाधिप उपाधि को व्याख्यायित करता है। कुबेर की अष्टनिधियोंः- पद्म, महापद्म, मकर, कच्छप, मुकुन्द, नील, नन्द तथा शङ्ख का उल्लेख अनेक पुराणों में किया गया है। कुबेर का लोकपाल एवं दिक्पाल विषयक स्वरूप पौराणिक परम्परा में अनेक रूपों में प्राप्त होता है। यद्यपि कुबेर को उत्तर-दिशा का दिक्पाल स्वीकार

किया गया है परन्तु कतिपय स्रोतों में दिशाओं का क्रम परिवर्तित रूप में भी प्राप्त होता है। कूर्म पुराण में उत्तर दिशा के दिक्पाल के रूप में सोम को वर्णित किया गया है। महाभार त में भी सोम को उत्तर दिशा का रक्षक कहा गया है। महाभारत के विभिन्न स्थलों के अध्ययन के आधार पर हाप्किंस ने यह सम्भावना व्यक्त की है कि कुबेर एवं इन्द्र दोनों ही उत्तर एवं पूरब दिशा के सम्मिलित संरक्षक हैं। इस प्रकार महाकाव्यों एवं पुराणों में वर्णित कुबेर विषयक प्रचुर सामग्री इनकी प्राचीन परम्परा की पुष्ट करती है तथा इनके समृद्धि, धन तथा दिक्पाल के रूप में निरन्तर प्रतिष्ठित रहने की मान्यता को भी पुष्ट करती है।

कला में कुबेर के अङ्कन प्राचीन काल से ही विविध रूपों में प्राप्त होने लगते हैं। उनकी प्राचीन उपाधियाँ यक्षाधिपति, यक्षरक्षोधिप, यक्षप्रवर, यक्षराज इत्यादि प्राचीन काल से ही मिलती हैं तथा उन्हीं के अनुरूप उनकी प्रारम्भिक मूर्तियों में यक्ष प्रतिमाओं का प्रभाव स्पष्टतः परिलक्षित होता है। पर्वतोपम, महाकाय, तालसमुच्छ्त तथा प्रभविष्णु यक्ष की प्रतिमाएँ मथुरा, विदिशा तथा पटना इत्यादि स्थलों से प्राप्त हुयी हैं। परखम तथा नोह की यक्ष-प्रतिमाओं का उष्णीष अर्थात् पगड़ी, विशाल कुण्डल लम्बे हार तथा कलाइयों में वलयाकार कंगन अत्यन्त विशिष्टता के साथ परिलक्षित होते हैं। कला में कुबेर का प्राचीनतम अंकन साँची स्तूप के उत्तरी तोरण द्वार पर प्राप्त होता है। उल्लेखनीय है कि यह आकृति भी विशालकाय है तथा इसमें नोह तथा परखम प्रतिमाओं की भाँति अलङ्करण प्राप्त होता है। इसी प्रकार कतिपय यक्ष प्रतिमाओं में उनका घटोदर रूप भी प्राप्त होता है तथा उनके हाथ में थैली का भी अंकन किया गया है। कतिपय प्रतिमाओं में कटिभाग में खोंसी हुयी छुरी भी देखी जा सकती है। यह उल्लेखनीय है कि कुबेर के हाथ में थैली तथा उनका घटोदर रूप कुबेर की प्रतिमाओं का अनिवार्य अंग बन गया। कटि में छुरिका का प्रदर्शन साँची के उत्तरी तोरण द्वार में निर्मित कुबेर की प्रतिमा में किया गया है। इस प्रकार यक्ष-प्रतिमाओं की प्रायः सम्पूर्ण विशेषतायें कुबेर की प्रारम्भिक प्रतिमाओं में देखी जा सकती है। साँची के ही समकालीन भरहुत स्तूप के एक स्तम्भ पर कुबेर घटोदर रूप

में नरवाहन के ऊपर खड़े हुए प्रदर्शित किये गये हैं। यह उल्लेखनीय है कि इस प्रतिमा में कुबेर के कुत्सित रूप का प्रदर्शन नहीं है बल्कि चेहरे पर कोमलता तथा चारुता के भाव स्पष्टतः देखे जा सकते हैं। प्रतिमा के समीप उल्लिखित 'कुपिरो यक्खो ' से यह स्पष्ट है कि यह आकृति कुबेर की ही है। सम्भवतः इस समय तक शालभञ्जिकाओं के निर्माण की परम्परा विकसित हो चुकी थी तथा कलाकार सौम्यता तथा चारुता के भाव प्रदर्शित करने में सिद्धहस्त हो चुके थे।

कुबेर प्रतिमाओं का द्वितीय विकासात्मक चरण मथुरा-कला शैली में निर्मित कुबेर प्रतिमाओं में देखा जा सकता है। कतिपय प्रतिमाएँ ऐसी प्राप्त हुयी हैं जिनमें कुबेर किंकर या गुह्यक मुद्रा में हैं, अर्थात् उनके दोनों हाथ भारवहन की मुद्रा में प्रदर्शित किये गये हैं। इस समय तक कुबेर का धनद रूप भी स्पष्ट हो चुका था जो यक्षों की कल्पना के अनुरूप ही था क्योंकि अथर्ववेद में यक्षों को धन रक्षक तथा धन का स्वामी कहा गया है। मथुरा-कला शैली में कुबेर का एक रूप घटोदर सुखासन मे बैठे हुए , एक हाथ में पान-पात्र तथा दूसरे हाथ में थैली लिए हुए प्राप्त होता है। ये प्रतिमाएँ मथुरा-कला की स्वयं की उपज है। इस प्रकार की मूर्तियाँ गिरिधरपुर, कंकाली टीला, पालिखेरा तथा महोली से प्राप् त हुयी है। मथुरा-कला में ही कुबेर का एक दूसरा स्वरूप भी निर्मित होने लगा था जिनपर विदेशी प्रभाव स्पष्टतः परिलक्षित होता है ऐसी प्रतिमाओं में कुबेर के साथ पान गोष्ठी के दृश्य मदोन्मत्त व्यक्तियों का चित्रण, कुबेर के दाहिने हाथ में लम्बोतरे गोड़ेदार चषक तथा कतिपय प्रतिमाओं में अंगूर गुच्छों का प्रदर्शन प्राप्त होता है। पालिखेरा से ही प्राप्त एक प्रतिमा में कुबेर के बायीं ओर एक स्त्री का भी अङ्कन प्राप्त होता है जो लम्बी आस्तीन की धोती तथा नीचे पैरों तक का घाघरा तथा मोटे जूते पहने है।

प्रथम शताब्दी ई०पू० का कुषाण कालीन एक फलक जो मथुरा संग्रहालय में सुरक्षित है, कुबेर के लक्षण तथा प्रतिमा-विज्ञान के विकास की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण प्रतीत होता है। इसमें अर्द्धनारीश्वर की आकृति के अतिरिक्त विष्णु तथा गजलक्ष्मी के साथ कुबेर को भी प्रदर्शित किया गया है। समूह में दूसरे देवताओं की

तरह इनके भी दाहिने हाथ को अभयमुद्रा में दिखाया गया है। इससे स्पष्ट है कि कुबेर यक्ष की मान्यता से ऊपर उठकर धीरे-धीरे देवत्व की कोटि में आ रहे थे। प्रथम शताब्दी ई० पू० तथा प्रथम शताब्दी ई० के आस-पास कुबेर के साथ हारीति का भी अङ्कन होने लगा था। उल्लेखनीय है कि हारीति बौद्ध मान्यता के अनुसार राजगृह में निवास करने वाली यक्षी थी जो पहले 'जातुहारिणी' थी परन्तु बुद्ध के प्रभाव के कारण वह शिशुसंरक्षिका बन गयी। इलाहाबाद संग्रहालय में मथुरा शैली में निर्मित तथा मथुरा से ही प्राप्त कुबेर की एक प्रतिमा रखी हुयी है जिसमें कुबेर हारीति के साथ प्रदर्शित हैं तथा उनके नीचे भक्तगण दिखाये गये हैं। मथुराकला शैली की कुबेर प्रतिमाओं में अन्य विशेषताएँ भी देखी जा सकती हैं। कहीं पर कुबेर को भद्रा के साथ प्रदर्शित किया गया है तो कहीं संगीत का आनन्द लेते हुए दिखाया गया है। उल्लेखनीय है कि भारतीय परम्परा में धन की देवी के रूप में लक्ष्मी को मान्यता प्राप्त है यही कारण है कि कुबेर के साथ गजलक्ष्मी एवं लक्ष्मी का अंङ्कन भी इसी अवधि में हाने लगा था।

गान्धार-कला में कुबेर की अनेक प्रतिमाएँ निर्मित की गयीं। उसे 'पञ्चिक' के नाम से भी अभिहित किया जाता था। इसमें हारीति की चतुर्भुज आकृति के साथ कुबेर का अङ्कन विशेषतः प्राप्त होता है। कुबेर का योद्धा स्वरूप भी इस कला में विशेषतः प्रकट हुआ। उनके बायें हाथ में लम्बा बर्छा या कुन्त को दिखाया जाने लगा था। उनका घटोदर स्वरूप विविध आभूषणों से सुसज्जित तथा धन की थैली का अङ्कन इत्यादि गान्धार कला में भी सामान्यतया चलता रहा। अन्य देवताओं की भाँति कुबेर को भी गान्धार-कला में मूँछ युक्त दिखाया गया है।

मथुरा तथा गान्धार कला में निर्मित कुबेर की प्रतिमाओं के विवेचन से कतिपय महत्वपूर्ण तथ्य उद्घाटित होते हैं। यह उल्लेखनीय है कि कुबेर के नरवाहन स्वरूप का प्रथम अङ्कन भरहुत में प्राप्त होता है परन्तु न तो मथुरा के कलाकारों ने और न ही गान्धार के कलाकारों ने उनका अङ्कन किया है। दोनों ही परम्पराओं में कुबेर को निधियों के साथ प्रदर्शित नहीं किया गया है बल्कि निधियों को प्रतीकात्मक रूप में घट

के साथ प्रदर्शित किया गया है। मथुरा कला में गृह संस्थित अर्चा के रूप में कुबेर की अत्यन्त छोटी-छोटी प्रतिमाएँ भी निर्मित की गयीं, जिससे स्पष्ट है कि सामान्य जनता में कुबेर अतिशय पूजित थे। इस प्रकार की प्रतिमाएँ नवगवाँ, केरावी, मनोहरपुर टीला, कटरा केशवदेव, निधौली, ब्रह्माण्ड घाट, गोपालपुर इत्यादि स्थानों से प्राप्त हुयी हैं। इन प्रतिमाओं की ऊँचाई पाँच इंच से दस इंच तक है। कुछ प्रतिमाओं पर अभिलेख भी प्राप्त होते हैं तथा उनमें 'प्रियताम साधक' इत्यादि वाक्य उल्लिखित हैं। इसके आधार पर यह अनुमान किया जा सकता है कि अन्य देवताओं की भाँति कुबेर की साधना करने वाले भी उस समय विद्यमान थे।

सामान्यतया यह स्वीकार किया जाता है कि कुषाण काल की अपेक्षा गुप्तकाल में कुबेर की स्वतंत्र देवता के रूप में उपासना अपेक्षाकृत कम हो गयी थी। उनका अङ्कन दिक्पाल के रूप में विशेषतः होने लगा था तथापि जो प्रतिमाएँ गुप्तकाल में निर्मित हुयी उसपर कुषाण कालीन परम्परा का प्रभाव स्पष्टतः दिखायी पड़ता है। मथुरा संग्रहालय में रखी हुयी गुप्तकालीन कतिपय प्रतिमाओं में कुबेर के दोनों हाथों में मद्य-चषक का अङ्कन किया गया है। कतिपय प्रतिमाओं में उन्हें हारीति के साथ चित्रित किया गया है तथा हारीति के बायें हाथ में कमल पुष्प का अंकन भी किया गया है। कभी-कभी कुबेर के हाथ में अमृत-घट भी प्रदर्शित किया जाता था। यह उल्लेखनीय है कि ये सभी प्रतिमाएँ भी अत्यन्त छोटी हैं। सम्भवतः गृह-संस्थित अर्चा के रूप में ही इन्हें निर्मित किया गया। इन प्रतिमाओं के अतिरिक्त कुबेर का अङ्कन दिक्पाल तथा अवान्तर देव के रूप में भी किया जाने लगा था। इस प्रकार के अङ्कन में भी कुबेर का द्विभुज तथा घटोदर रूप सुरक्षित रहा। कभी-कभी इनके बायें हाथ में सनाल कमल-पुष्प का भी अङ्कन प्रदर्शित किया जाता है। यह उल्लेखनीय है कि द्वारपाल के रूप में कुबेर का जो अङ्कन किया गया, उसमें मद्य-चषक तथा धन की थैली का प्रायः अभाव दिखायी पड़ता है। राजस्थान के कमान नामक स्थान से कुबेर की गुप्तकालीन आसवपायी प्रतिमा भी प्राप्त हुयी है। आसवपायी कुबेर की एक

गुप्तकालीन प्रतिमा ग्वालियर संग्रहालय में भी सुरक्षित है। इससे स्पष्ट है कि कुबेर का यह स्वरूप भी पूर्णतया तिरोहित नहीं हुआ था।

गुप्तकाल के पश्चात् भी कुबेर की प्रतिमाएँ निर्मित होती रहीं जो भारतवर्ष के विभिन्न स्थलों से प्राप्त हुयी हैं। ऐसी प्रतिमाओं में उनका प्राचीन स्वरूप विद्यमान रहा, साथ ही साथ कतिपय नवीन अङ्कन भी किये जाने लगे। पभोसा से प्राप्त प्रतिमा में कुबेर को अर्द्धपर्यङ्कासन स्थिति में प्रदर्शित किया गया है। उनकी पीठिका के नीचे शंङ्ख एवं पद्म के प्रतीक रूप में दो घटों का अङ्कन किया गया है। दोनों ओर परिचारक के रूप में पुरुष तथा स्त्री का अंकन है। नालन्दा से प्राप्त एक प्रस्तर मूर्ति में कुबेर के सिर पर मुकुट का अंकन प्राप्त होता है। उन्हें यज्ञोपवीत धारण किये हुए भी प्रदर्शित किया गया है तथा तीन अलंकृत घट भी दिखाये गये हैं। यह उल्लेखनीय है कि राजस्थान में कुबेर की अत्यधिक प्रतिमाएँ प्राप्त हुयी हैं जिनमें उनका प्रारम्भिक स्वरूप तो विद्यमान ही रहा तथा साथ ही साथ मुकुट भी सामान्यतः प्रदर्शित किया जाता रहा। ओसिया के पिप्पलदा माता के मुख्य मन्दिर के गर्भ गृह से महिषमर्दिनी तथा गणेश के साथ कुबेर की प्रतिमा प्राप्त हुयी है। कुबेर के स्तुतिपरक श्लोक भी प्रतिमा के नीचे अंकित करने की परम्परा ओसिया में प्राप्त होती है। सकराई माता प्रस्तर अभिलेख में कुबेर को सुयक्ष, मुकुटमणि मयूखरञ्जित तथा पीतवास के रूप में वर्णित करते हुए उनसे धन की वृद्धि करने की कामना की गयी है। यह उल्लेखनीय है कि कुबेर के नरवाहन स्वरूप के अतिरिक्त उनके गजवाहन स्वरूप का अङ्कन भी किया जाने लगा था। अपराजित पृच्छा में भी कुबेर को 'गजवाहन' के रूप में वर्णित किया गया है। भीनमाल के उत्खनन में कुबेर की चतुर्भुजी प्रतिमा प्राप्त हुयी है तथा उसमें भी उनके वाहन गज का अङ्कन किया गया है। उल्लेखनीय है कि विष्णधर्मोत्तर पुराण, रूपमण्डन इत्यादि में कुबेर को चतुर्भुजी रूप में चित्रित करने का विधान प्राप्त होता है। ओसिया में कुबेर की कतिपय प्रतिमाओं में नकुलक घट इत्यादि के साथ-साथ गदा, पद्म, अंकुश इत्यादि का भी अङ्कन किया गया है। उनके वाहन के

रूप में मेष तथा वृष को भी प्रदर्शित किया गया है। उल्लेखनीय है कि भुवनेश्वर से भी कुबेर की दो ऐसी प्रतिमाएँ प्राप्त हुयी हैं जिनमें वाहन मेष प्राप्त होता है। कुबेर के हाथ में नकुलक दिखाने की परम्परा अत्यन्त प्राचीन थी किन्तु 'नकुल' के रूप में उनका वाहन अत्यल्प प्राप्त होता है। भुवनेश्वर की ही एक प्रतिमा में वाहन के रूप में नकुल का अंकन किया गया है। राज्य संग्रहालय भुवनेश्वर में संरक्षित कुबेर की एक प्रतिमा में नकुलक का मुख सिंह के समान प्रदर्शित किया गया है जो उड़ीसा शैली की विशेषता प्रतीत होती है। खजुराहो में भी कुबेर के अनेक अंकन प्राप्त होते हैं जिसमें कुबेर कभी द्विभुज तथा कभी चतुर्भुज रूप मे प्रदर्शित किये गये हैं। खजुराहो की कतिपय प्रतिमाओं में उनका आसवपायी रूप भी प्राप्त होता है। लक्ष्मण तथा आदिनाथ मन्दिर में उच्चित्रित कुबेर का वाहन मेष के रूप में प्रदर्शित है। कन्दरिया महादेव के मन्दिर में अंकित कुबेर के बायें जाँघ पर उनकी पत्नी ऋद्धि का अंकन किया गया है जिसमें कुबेर बायें हाथ से ऋद्धि के स्तन को स्पर्श करते हुए प्रदर्शित किये गये हैं तथा ऋद्धि भी उनका आलिंगन करती हुयी दिखायी गयी हैं। ऋद्धि के बायें हाथ में मकर अथवा मछली का अङ्कन किया गया है। यह अंकन निश्चित ही उमा-माहेश्वर प्रतिमाओं के आलिंगन मुद्राओं के प्रभाव में किया गया है। ऋद्धि के बायें हाथ में मत्स्य या मकर का अंकन काम का प्रतीक है। इसी प्रकार की एक प्रतिमा ग्वालियर संग्रहालय में रखी हुयी है।

कुबेर का एक अन्य स्वरूप बौद्ध परम्परा में जम्भल के रूप में प्राप्त होता है जिसमें जम्भल को कभी द्विभुज तथा कभी छः भुजाओं वाला प्रदर्शित करने का विधान है। उनके त्रिमुख दिखाने की भी परम्परा प्राप्त होती है। यह उल्लेखनीय है कि जम्भल की भी प्रतिमाएँ कुषाण-काल से प्राप्त होने लगती हैं। प्रारम्भिक स्तर पर कुबेर और जम्भल में भिन्नता अधिक नहीं प्रतीत होती। जम्भल के हाथ में चकोतरा फल सामान्यतया दिखायी पड़ता है। कालान्तर में वज्रयानी परम्परा के प्रभाव में जम्भल की जो प्रतिमाएँ बनीं, उनमें जम्भल के चारों ओर ध्यानी बुद्धों की भी आकृतियाँ निर्मित की जाने लगी। असम के चिट्गाँव से जम्भल की एक कांस्य प्रतिमा प्राप्त हुयी है

जिसके बायें हाथ में हाथी का खिलौना अंकित किया गया है। नालन्दा से प्राप्त जम्भल की एक चतुर्भुजी प्रतिमा में इनके दाहिने हाथ में तलवार का भी अंकन किया गया है। उच्छुष्म जम्भल के रूप में उनके भयङ्कर स्वरूप का अङ्कन प्राप्त होता है। रक्तपरिपूर्ण कपाल, बाहर निकले हुए दाँत, उनके तीन नेत्र तथा मुकुट पर अक्षोम्य नामक ध्यानी बुद्ध की प्रतिमा का अङ्कन उच्छुष्म जम्भल की विशेषताएँ हैं। सारनाथ से प्राप्त एक प्रतिमा में उच्छुष्म जम्भल को हिन्दू देवता धनद को पैरों से दबाते हुए प्रदर्शित किया गया है जो वज्रयान परम्परा की सामान्य विशेषता थी।

कुबेर से सम्बन्धित जो परम्पराएँ तिब्बत में प्राप्त होती हैं उनमें कुबेर को त्रिशीर्ष, त्रिपाद, अष्टदन्त तथा हरिताक्ष के रूप में चित्रित करने का विधान प्राप्त होता है। लामा बौद्ध मत में कुबेर के 'यी-दम' तथा 'धर्मपाल' दो रूप विशेष रूप से प्रचलित हैं। यी-दम वस्तुतः जम्भल को ही कहा जाता था परन्तु उनका स्वरूप अत्यधिक उग्र था। कपाल धारण करने के साथ-साथ वे सर्प के आभूषणों से युक्त भी प्रदर्शित किये जाते थे। यद्यपि इस प्रकार की प्रतिमाएँ अल्प मात्रा में ही प्राप्त हुयी हैं। पीपिङ्ग के चीनी संग्रह में इस प्रकार की दो प्रतिमाएँ प्राप्त हुयी हैं। धर्मपाल के रूप में कुबेर को या तो सिंह के ऊपर आसीन प्रदर्शित किया गया है या तो खोल्बोक पीठिका पर प्रदर्शित किया गया है। कभी-कभी उन्हें अश्व पर बैठे भी दिखाया गया है। सामान्यतया धर्मपाल की द्विभुज प्रतिमाएँ ही प्राप्त हुयी हैं। एक ऐसी प्रतिमा जो न तो ज्ञात साहित्यिक लक्षणों से मेल खाती है और न ही प्रतिमापरक उदाहरणों से ही उसका सादृश्य स्थापित किया जा सकता है, गेटी महोदय ने वर्णित किया है। इसमें कुबेर के तीन पाद तथा पाँच शीर्ष प्रदर्शित किये गये हैं। केवल ऊपरी शीर्ष को छोड़ कर शेष सभी रौद्र मुद्रा में दिखाये गये हैं। कुबेर इसमें अष्टभुजी हैं तथा इसके तीनों पैर मानव कपाल पर रखे हुए प्रदर्शित किये गये हैं।

दक्षिण भारत से कुबेर की अधिक प्रतिमाएँ नहीं प्राप्त होती हैं। राव तथा डुब्रेइल ने इनका विवरण प्रस्तुत नहीं किया है। परवर्तीकालीन उनके लेखों में यह उल्लेख मिलता है कि कुबेर श्वेत अश्व पर आसीन हैं तथा तलवार एवं बकलस

(दो सिरों को बाँधने वाला धातु का बकसुआ) उनके हाथों में है जो उनके योद्धा तथा सेनानायक होने की पुष्टि करता है। इस प्रकार की प्रतिमाएँ दक्षिणी भारत से नहीं प्राप्त होती हैं। दक्षिण भारतीय अधिकांश आगमों में कुबेर को नरवाहन के रूप में प्रस्तुत किया गया है जैसा कि उनके उत्तर भारतीय आकृतियों में देखने को मिलता है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची

सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची

(क) मूलभूत संस्कृत, पाली प्राकृति आदि ग्रन्थः-

ऋग्वेद संहिता - वैदिक संशोधन मण्डल- वैदिक रिसर्च इन्स्टीट्यूट पूना, 1946 तथा सम्पादित- पद्मभूषण श्रीपाद् दामोदर सातवलेकर स्वाध्याय मण्डल पारडी, बलसाड सूरत 1957

अंशुमद भेदागम - ई०एच०आई० में उद्धृत खण्ड 1, भाग 2, खण्ड 2, भाग 2।

अथर्ववेद - आर०, राथ और डब्लू० डी० व्हिटने सम्पादित, बर्लिन 1856, सातवलेकर, पारडी 1957 सायणभाष्य सहित आनन्दाश्रम पूना।

अथर्ववेद संहिता - जयदेव शर्मा,(हि० भाष्य 3 जिल्दों में), आर्य साहित्य मण्डल, अजमेर, सं० 2022।

अर्थशास्त्र - (कौटिल्य) वाचस्पति गैरोला, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, 1952, उदयवीर शास्त्री, लाहौर, 1925

अष्टाध्यायी - (पाणिनि) रामलाल कपूर ट्रस्ट, अमृतसर, 1964-68,
- निर्णय सागर प्रेस, बम्बई।

अमरकोश - (अमरसिंह) टी० गणपतिशास्त्री, त्रिवेन्द्रम। देवदत्त तिवारी (सं०) वाराणसी, 1883

अग्निपुराण - आनन्दाश्रम संस्कृत सीरीज, पूना, 1907

अपराजितपृच्छा – (भुवनदेवकृत) सं० पोपटभाई अंबा शंकर माकंड, गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज, सं० 115, बडौदा, 1950

आदिपुराण – (जिनसेनकृत) सं० पन्नालाल जैन, ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थ माला, संस्कृत ग्रन्थ सं० 8, वाराणसी, 1963

आर्यमंजुश्रीमूलकल्प – सं० टी० गणपतिशास्त्री, 3 भाग, 1921-23

अंगुत्तर निकाय – भदन्त आनन्द कौसल्यायन महाबोधि सभा, कलकत्ता, प्रथम भाग-1957, द्वितीय भाग-1963, तृतीय भाग- 1966, चतुर्थ भाग- 1969

अंङ्गविज्जा – पुण्यविजय जी, प्राकृत टेक्सट सोसायटी, वाराणसी, 1957

अष्टादश उपनिषद – वि० प्र०, लिमये, भाग-1

आश्वलायन श्रौत सूत्र – नारायण की टीका सहित, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई,
– आनन्दाश्रम मुद्रणालय, पूना, 1917

ऐतरेय ब्राह्मण – ए० हाग सम्पादित, बम्बई 1863, सत्यव्रत सामशास्त्री सम्पादित कलकत्ता 1895, सायणभाष्य सहित आनन्दाश्रम पूना।

ऐतरेय आरण्यक – ए०बी० कीथ सम्पादक/अनुवादक, आक्सफोर्ड 1909

ऐतरेयोपनिषद – आर० मित्रा और कोवेल (स०/अनु०), दि ट्वेल्व प्रिन्सपल उपनिषदस, 3 भाग, मद्रास, 1931

कल्पसूत्र – (भद्रबाहुकृत) सं० देवेन्द्र मुनि शास्त्री, शिवान, 1968, विनय सागर, प्राकृत भारती, जयपुर, 1977

कथासरितसागर - (सोमदेव कृत) टावनी,एच०सी०(अंग्रेजी अनु० द ओसन आफ इस्टोरी) एण्ड इन्ट्रोडक्शन बाई एन०एम० पेंजर, 10 वाल्यूम, लन्दल, 1920-28

कूर्म पुराण - बिब्लियोथिका इण्डिका, कलकत्ता, 1890।
- रामनगर, वाराणसी, 1972।

केनोपनिषद - निर्णय सागर प्रेस, बम्बई।

कृष्ण यजुर्वेद तैत्तिरीय संहिता - ए० वेवर (सं०) बर्लिन।

कौशीतकि ब्राह्मण -गीता प्रेस, गोरखपुर ।

काराणागम - ई० एच० आई० में उद्धृत, खण्ड 1, भाग 2; खण्ड 2, भाग 2।

गरुण पुराण - श्रीकृष्णदास खेमराज, बम्बई तथा सं० रामशंकर भट्टाचार्य- वाराणसी 1964

गोभिल गृह्यसूत्र - चन्द्रकांत तरकालंकार (सं०), बि० ई० कलकत्ता, 1880, अंग्रेजी अनुवाद, से० बू० ई० जिल्द 30, आक्सफोर्ड 1892

चरक संहिता (चरक) - जे० टी० वैद्य (सं०), बम्बई, 1941

चतुर्वर्ग चिन्तामणि (हेमाद्रि) - वि० इ० कलकत्ता (सं०), 1934

छान्दोग्य उपनिषद - शंकर की टीका सहित हिन्दी अनुवाद (द्वितीय संस्करण), गीता प्रेस, गोरखपुर, विक्रम सम्वत् 2011

जातकमाला - (भाग 1,2 और 3), हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।

जैन सूत्रास - (अनु०) एच० जैकोबी०, वाराणसी।

जैमिनीय ब्राह्मण - रघुबीर और लोकेशचन्द्र, सं०, नागपुर, 1954

णायाधम्मकहा - एन० वी० वैद्य (सं०/अनु०), पूना, 1940

तिलोयपण्णति - (यतिबृषभ), आदिनाथ उपाध्ये, हीरालाल जैन, जीवराज जैन ग्रन्थ माला, शोलापुर 1943

तैत्तिरीय आरण्यक - आनन्दाश्रम संस्कृत सीरीज, सं० 36, पूना, 1927
- हरिनारायण आप्टे (सं०), पूना।

तैत्तिरीय ब्राह्मण - (सं०) शास्त्री और निवासाचार्य, 4 भाग, कलकत्ता, 1908-1921

त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित - (हेमचन्द्रकृत) अनु०- हेलेन एम० जानसन, गायकवाड ओरियण्टल सीरीज, 6 खण्ड, बड़ौदा, 1931, 1937, 1949, 1954, 1962 ।

दिव्यावदान - ई० बी० कॉवेल और आर० ए० नील (सं०) कैम्ब्रिज, 1886 ।

दीघनिकाय - राहुल सांस्कृत्यायन, वाराणसी, 1936 ।

देवतामूर्तिप्रकरण - (सूत्रधारमण्डनकृत) सम्पादक "उपेन्द्र मोहन सांख्यतीर्थ, संस्कृत सीरीज 12, कलकत्ता, 1936 ।

देवीभागवतपुराण - श्री वेंकेटेश्वर स्ट्रीम प्रेस, बम्बई, सं० 1982।

धम्मपद - एस० एस० झेरा (सं०) लन्दन, 1914 ।

निर्वाणकलिका - (पादलिप्तसूरिकृत)- सं० मोहनलाल भगवानदास मुनि श्री मोहनलाल जी जैनग्रन्थमाला 5, बम्बई, 1926 ।

निष्पण्णयोगावली - सं० बी० भट्टाचार्य, बड़ौदा, 1949 ।

प्रतिष्ठातिलकम् (नेमिचन्द) - शोलापुर ।

प्रतिष्ठासारसंग्रह - (वसुनन्दि) - लालभाई दलालभाई, भारतीय संस्कृत विद्यामन्दिर, अहमदाबाद।

प्रतिष्ठासारोद्धार - (आशाधर)- सं० मनोहरलाल शास्त्री, बम्बई, 1917 ।

पद्मपुराण – (रविषेणकृत), भाग 1, सं०– पन्नालाल जैन ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला, संस्कृत ग्रन्थांक 20, वाराणसी 1958 ।

प्रतिमालक्षणम् – (भारतीय वास्तुशास्त्र ग्रन्थ 4, भाग 2), डी० एन० शुक्ला (सं०), लखनऊ, सं०–2014

परिशिष्ट पर्वन (हेमचन्द्र) –एच० जैकोबी (सं०) कलकत्ता 1932 ।

प्रश्नोपनिषद – गीताप्रेस, गोरखपुर ।

बृहत्संहिता – (वराहमिहिरकृत) सरस्वती प्रेस, कलकत्ता, 1880एपेण्डिक्स, डी०एच०आई०, कलकत्ता 1956 ई०(द्वितीय संस्करण)।

– (वराहमिहिरकृत) सं०– ए० झा०, वाराणसी, 1959 ।

ब्रह्माण्ड पुराण – कलकत्ता, सं० 2009, बम्बई, 1912 ।

बृहत्कथामंजरी (क्षेमेन्द्र) – पं० शिवदत्त (सं०), बम्बई, 1931 ।

ब्रह्मवैवर्तपुराण – आनन्दाश्रम मुद्रणालय, पूना 1895।

बौधायन गृह्यसूत्र – ए० छिन्नस्वामी शास्त्री(सं०) काशी संस्कृत सीरीज, वाराणसी, सं० 1919।

भविष्य पुराण – वेंकेटेश्वर प्रेस, बम्बई, 1910 ।

भगवती सूत्र – पी० भिक्खु, गुरगॉव , 1953 ।

भगवद्गीता – सं० 2 अनु०– राधाकृष्णन, लन्दन, 1948 ।

भागवतपुराण (दो खण्ड) – गीता प्रेस, गोरखपुर, सं० 2018।

महाभारत – पी० सी० राय (सं०), कलकत्ता, 1881-82 ।

मत्स्यपुराण – आनन्दाश्रम संस्कृत सीरीज, पूना, 1907 ।

मनुस्मृति – (मनुकृत) निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, 1937 ।

महापुराण – (पुष्पदत्तकृत) सं– पी० एल० वैद्य, मानिकचन्द दिगम्बर जैन ग्रन्थ माला 42, बम्बई, 1941 ।

महावस्तु – ई० सेनार्ट (सं०), पेरिस–1882–97 ।

महावंश – अनु० जी अर्नर, भाग 1, कोलम्बो, 1887; भाग 2, एल० सी० विजेसिंह (अनु०), कोलम्बो 1909 ।

महानिद्देश – सं० – एल० पौसिन, डी० वैली और जे० थामस, 2 भाग, लन्दन, 1916–17 ।

महाभाष्य (पतंजलिकृत) – निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, 1935 ।

मानसार – सं० 3, प्रसन्न कुमार आचार्य (अनु०) इलाहाबाद।

– पी० के० आचार्य, आर्किटेक्चर आव मानसार, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

मिलिदपञ्हो – वी० ट्रेन्केनर, लंदन, 1928 ।

मारकण्डेय पुराण – बिब्लियोथिका इण्डिका, कलकत्ता– 1855-62

मेघदूतम् – (कालिदास)– निर्णयसागर प्रेस, बम्बई।

मयमत – ब्रुनो डेगल्स, पाण्डिचेरी, 1976।

यजुर्वेद – (सायण भाष्य) मैक्समूलर सम्पादित, लन्दन, चौखम्भा 1966 वाराणसी, वैदिक संशोधन मण्डल पूना, स्वाध्याय मण्डल पारडी (मूलमात्र)।

रूपमण्डन (सूत्रधारमण्डनकृत) सं०– बलराम श्रीवास्तव, वाराणसी, विक्रम सं०2021 ।

रघुवंश – (कालिदासकृत) निर्णयसागर प्रेस, बम्बई ।

राजतरंगिणी – (कल्हण) एम० ए० स्टाइन, दो भाग, वाराणसी, 1961 ।

रायपसेणिज – एन० वी० वैद्य (सं०), अहमदाबाद।

ललितविस्तर – सं०– एस० लेनमेन, हाले, 1908 ।

लिंग पुराण – जे० विद्यासागर (सं०) बिबलियोथिका इण्डिका, कलकत्ता, 1885।

वाल्मीकि रामायण – सं०, भगवद्दत्त, लाहौर, 1931 ।
– आलोचनात्मक संस्करण- ओरियन्टल इन्स्टीट्यूट- बड़ौदा, 1975
– गीता प्रेस, गोरखपुर- संस्करण 1976

वायु पुराण – वेंकटेश्वर प्रेस- मुम्बई।

वाराह पुराण – हृषिकेश शास्त्री (सं०) बिब्लियोथिका, इण्डिका, कलकत्ता।

वाजसनेयी-संहिता – लन्दन, 1849-52।

विनयपिटक – सं०-एच० ओल्डेनवर्ग, लन्दन, 1879-83 ।

विष्णुधर्मोत्तर पुराण – अंग्रेजी अनुवाद, स्टैला क्रेमरिश, कलकत्ता, 1928, प्रियबाला शाह(सं०) बड़ौदा, 1958; अंग्रेजी अनुवाद, प्रियबाला शाह, बड़ौदा, 1961। प्रेस, बम्बई।

विश्वकर्मा शिल्पशास्त्र – (नागेन्द्र नाथ बासुरचित) आर्कियोलाजिकल सर्वे आफ मयूरभञ्ज से उद्धृत।

विष्णु पुराण – बम्बई-1889, अंग्रेजी अनु०, एच०एच० विल्सन, लन्दन, 1864-70 ।

वामन पुराण – आनन्द स्वरूप गुप्ता (सं०) सर्वभारतीय काशिकाराजन्यास, दुर्ग, रामनगर, वाराणसी, सं० वि०2024, शक् 1989।

शांख्यायन श्रौत सूत्र – अनु० डब्लू० कलंड, सं०-लोकेशचन्द्र, नागपुर-1953 ।

शांखायायन गृह्यसूत्र – एस० आर० सहगल, दिल्ली 1960।

शिल्परत्न – (कुमारकृत)- त्रिवेन्द्रम संस्कृत सीरीज, त्रिवेन्द्रम, 1922,1929 ।

शिल्पप्रकाश – (रामचन्द्र कुलाचारकृत), अनु० एलिस बोनर एण्ड सदाशिवरथ शर्मा ।

शतपथ ब्राह्मण - ए० वेबर (सं०), वाराणसी, 1964 ।

शिव महापुराण - रामचन्द्र शर्मा (सं०), मुरादाबाद, 1933 ।

स्कन्द पुराण - वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई।

साधनमाला (बौद्धग्रन्थ) - सं० बी० भट्टाचार्य, बड़ौदा, 1925 और 1928 ।

सामवेद - सं० आर० टी०एच० ग्रिफीत, वाराणसी, 1963 ।

सिद्धान्तसारसंग्रह - नरेन्द्रसेन, शोलापुर, 1957 ।

सुत्तनिपात - सं० एम० ई० हारे, लन्दन, 1944।

संयुक्त निकाय - लियोनफियर और रीज डेविड्स (सं०), लन्दन, 1884-1904 ।

सुप्रभेदागम - ई० एच० आई० से उद्धृत, खण्ड 1, भाग 2; खण्ड2, भाग 2।

सुत्तागम - पी० भिक्खु (सं०), गुरगाँव, 1953 ।

हरिवंश पुराण - (जिनसेनकृत) सं० पन्नालाल जैन, ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैनग्रन्थ माला, संस्कृत ग्रन्थांक 27, वाराणसी, 1962।

- नीलकंठ भाष्य सहित, बंगवासी प्रेस, कलकत्ता।

हलायुध कोश - (सं०) हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उ०प्र० ।

सहायक ग्रन्थ एवं लेख-सूची-

अग्रवाल, उर्मिला - खजुराहो स्कल्पचर्स एण्ड देयर सिग्नीफिकेंस, नई दिल्ली, 1964 ।

अग्रवाल, कन्हैयालाल - खजुराहो, नई दिल्ली, 1980 ।

आयन्स, वी० - इण्डियन मायथालाजी।

अवस्थी, रामाश्रय – खजुराहो की देव प्रतिमाएँ, प्रथम खण्ड, आगरा, 1967 ।

– प्राचीन भारतीय कला एवं साहित्य में लक्ष्मी,सरस्वती, अक्टूबर 1973।

अग्रवाल, वी० एस० – गुप्ता आर्ट, वाराणसी, 1947 ।

– पाणिनि कालीन भारतवर्ष, वाराणसी, 1955 ।

– प्राचीन भारतीय लोकधर्म अहमदाबाद, 1964 ।

– स्टडीज इन इण्डियन आर्ट, वाराणसी, 1965 ।

– कादम्बरी एक सांस्कृतिक अध्ययन, बनारस, 1970 ।

– भारतीय कला, वाराणसी, 1987 ।

– मथुरा कला, अहमदाबाद, 1964 ।

– स्कल्पचर्स फ्राम आबनेरी, राजस्थान, ललितकला, खण्ड 1-2, 1955-56

– ए कैटलाग आफ दि ब्राह्मनिकल इमजेज इन मथुरा आर्ट, यू०पी० हिस्टारिकल सोसायटी, लखनऊ, 1949,वाल्यूम XXII 1951

– ए सार्ट गाइड बुक टु दि आर्कियोलाजिकल सेक्सन आफ दि प्राविन्सियल, म्यूजियम, लखनऊ, इलाहाबाद, 1940

– ए हैंड बुक आफ दि स्कल्पचर्स इन दि कर्जन म्यूजियम ऑफ आर्कियोलाजी, मुत्रा, इलाहाबाद, 1939

– देवी-महात्म्य, दि ग्लोरीफिकेशन ऑफ दि ग्रेट गाडेज, वाराणसी, 1963 ,

– सारनाथ, नई -दिल्ली, 1957

अभिलसितार्थचिन्तामणि - सं० द्वारा- आर० शाम शास्त्री, मैसूर 1926 ।

अमर चन्द - उड़ीसा हिस्टारिकल रिसर्च जर्नल, खण्ड 2, भाग 2, 1952

आचार्य, पी० - 'दिक्पाल एण्ड देयर शक्तिज इन दि टेम्पुल्स आफ उड़ीसा' ओ० एच० आर० जे०, खण्ड 11, अङ्क 3-4, 1953-54

- 'स्टडीज इन दि टेम्पुल आर्किटेक्चर इन उड़ीसा', ओ० एच० आर० जे०, खण्ड 12, अङ्क 2

आर्य, विजय भूषण - भुवनेश्वर के देवालयः एक सांस्कृतिक अध्ययन, शोध प्रबन्ध लखनऊ वि०वि० 1965

ई०, शर्मन - अ हिस्ट्री ऑव फार ईस्टर्न आर्ट

श्रीवास्तव, ए० एल० - लाइफ इन साँची स्कल्पचर, नई दिल्ली, 1983 ।

श्रीवास्तव, बलराम - आयकोनोग्राफी ऑव शक्ति, वाराणसी, 1978 ।

श्रीवास्तव, वी० सी० - सन वर्शिप इन ऐन्सियन्ट इण्डिया, इलाहाबाद, 1972 ।

कनिंघम, जे० ए० - स्तूप ऑव भरहुत, वाराणसी, 1962 ।

काला, जे० - इपिक सिन्स इन इण्डियन प्लास्टिक आर्ट, नई दिल्ली, 1988 ।

कीथ, ए०वी० - दि रिलीजन एण्ड फिलासफी ऑव दि वेदाज एण्ड उपनिषदस (दो भाग) कैम्ब्रिज, 1925 ।

कुमार स्वामी, ए० के० – मेडिवल सिंहलीज आर्ट, 1908 ।
– हिस्ट्री ऑव इण्डियन एण्ड इण्डोनेशियन आर्ट, 1927
– दि यक्षाज (भाग 1 और 2), वाशिंगटन, 1928-31 । नई दिल्ली, 1971 एवं 1980 ।
– एलीमेण्ट्स ऑव गास्पेल ऑव बुद्धिस्म।
– बुद्ध एण्ड गास्पेल ऑव बुद्धिस्म।
– इण्ट्रोडक्सन टू इण्डियन आर्ट।
– कैटलाग आफ इण्डिया कलेक्शन्स इन दि म्यूजियम आफ फाइन आर्ट्स बोस्टन (2 भाग), बोस्टन,, 1923 ।
– हिस्ट्री आफ इण्डियन एण्ड इण्डोनेशियन आर्ट, लन्दन, 1927।
– मेडिवल इण्डियन स्कल्पचर इन दि ब्रिटिश म्यूजियम, लन्दन, 1936।

क्रेमरिश, एस० – इण्डियन स्कल्पचर, कलकत्ता, 1933 ।
– दि हिन्दू टेम्पल, (भाग 1,2 और 3), कलकत्ता, 1946 ।
– दि आर्ट आफ इण्डिया, लन्दन, 1954।

कालिया, आशा – आर्ट आफ दि ओसियन टैम्पुल्स, नई दिल्ली 1982।

काला, एस० सी० – स्कल्पचर इन दि इलाहाबाद, ब्रिटिश म्यूनिसिपल म्यूजियम, इलाहाबाद, 1946।

कार, एस० सी० – क्लासिकल इण्डियन स्कल्पचर, लन्दन, 1950।

कंवरलाल - टेम्पुल्स एण्ड स्कल्पचर आफ भुवनेश्वर, दिल्ली, 1976।

- दि आर्ट ऑव इण्डिया, लन्दन, 1954 ।

कृष्णदेव - खजुराहो, नई-दिल्ली, 1965 ।

- टेम्पुल्स आफ नार्थ इण्डिया, नई दिल्ली 1969।

कृष्णास्वामी, एस० आयंगर - 'उड़ीसा-ए नोट आन दी मोर प्रॉमीनेन्ट फीचर आफ इट्स हिस्ट्री' , जे०बी०ओ०आर०एस०, खण्ड 8, भाग 1, पृ० 1-12 ।

क्रुक, डब्लू - रिलीजन ऐण्ड फॉकलोर ऑव नार्दन इण्डिया, लंदन, 1926 ।

ग्रुनवेडल, ए० - बुद्धिस्ट आर्ट आफ इण्डिया, लन्दन, 1901 ।

गुप्ते , आर० एस० - आइकोनोग्राफी ऑव दि हिन्दूस, बुद्धिस्ट्स एण्ड जैन्स, बम्बई, 1980 ।

गुप्ते एण्ड महाजन - अजन्ता एलोरा एण्ड औरंगाबाद केव्स, बम्बई, 1962 ।

गोण्डा, जे० - एसपेक्ट्स आफ अर्ली वैष्णविज्म,दिल्ली-पटना-वाराणसी, 1969।

गेटी, अलाइस - दि गाड्स ऑव नार्दर्न बुद्धिज्म, आक्सफोर्ड, 1928 ।

गैरोला, वाचस्पति - भारतीय चित्रकला, इलाहाबाद, 1963 ।

- गणेश-अ मोनोग्राफ ऑव दि एलीफेन्ट फेस्ड गाड।

गोखले, बी०जी० - प्राचीन भारत-इतिहास और संस्कृति।

गोपीनाथ राव, टी०ए० - एलीमेण्ट्स ऑव हिन्दू आइकोनोग्राफी, मद्रास, 1916 ।

गंगूली एण्ड गोस्वामी - इण्डियन आर्ट ऐण्ड हेरिटेज।

घोष, अमलानन्द (सं०) - अजन्ता म्यूरल्स, नई-दिल्ली, 1967 ।

चन्दा, आर० पी० – एक्सप्लोरेशन आफ उड़ीसा (एम०ए०एस०आई०-44) कलकत्ता, 1930 ।

चन्द्र, पी० – स्टोन स्कल्पचर इन दि इलाहाबाद म्यूजियम, पूना-1970

जांसटन – बुद्ध चरित (भाग 2)

जायसवाल, सुवीरा – दि ओरिजिन एण्ड डेवलपमेण्ट ऑव बैस्नविज्म।

जिमर, हेनरिक – मिथ्स एण्ड सिम्बल इन इण्डियन आर्ट एण्ड सिब्लाइजेशन, न्यूयार्क, 1946 ।

– दि आर्ट ऑव इण्डियन एशिया, इट्स माइथालाजी एण्ड ट्रान्सफार्मेशन, न्यूयार्क, 1955 ।

जेम्स, ई० ओ० – दि कल्ट आफ मदर गाडेस, लन्दन, 1959।

जोशी, एन० पी० – मथुरा स्कल्पचर्स, मथुरा, 1966।

– कैटलाग आफ ब्राह्मनिकल स्कल्पचर आफ स्टेट म्यूजियम लखनऊ, 1972।

टावाकर, एन० जी० – एसेज थ्रोइंग न्यू लाइट ऑन दि गन्धर्वास, दि अप्सराज, दि यक्षाज् एण्ड दि किन्नराज, बम्बई, 1972 ।

ठाकुर, एस० आर० – कैटलाग आन दि स्कल्पचर इन दि आर्कियोलाजिकल म्यूजियम, ग्वालियर।

डेविड, डब्लू रिस – अर्ली बुद्धिस्म, लन्दन, 1908 ।

डिड्रान – क्रिश्चियन आइकोनोग्राफी।

तिवारी, एम० एन० पी० – जैन प्रतिमाविज्ञान, वाराणसी, 1981 ।

– एलिमेण्ट्स आफ जैन आइकोनोग्राफी, वाराणसी, 1983।

तिवारी, एस० पी० – हिन्दू आइकोनोग्राफी, नई दिल्ली।

– खजुराहो का जैन पुरातत्व, खजुराहो, 1987 ।

थामस, पी॰ - इपिक्स मिथ्स एण्ड लीजेण्ड्स ऑव इण्डिया।

दत्ता, एन॰ - गिलगिट मेनुस्क्रिप्ट (वाल्यूम III, पार्ट I)

- डेवलपमेण्ट ऑव बुद्धिस्म इन उ॰प्र॰।

देसाई, पी॰बी॰ - जैनिज्म इन साउथ इण्डिया, शोलापुर, 1957 ।

परिमू, आर॰, कन्नल, डी॰ - एलोरा केव्स- स्कल्पचर्स एण्ड आर्किटेक्चर, और पन्निकर, एस॰ (सं॰) नई दिल्ली, 1988 ।

पार्जिटर, एफ॰ ई॰ - एन्सियन्ट इण्डियन हिस्टारिकल ट्रेडिशन, वाराणसी, 1964 ।

पाण्डेय, जी॰ सी॰ - स्टडीज इन दि ओरिजिन्स ऑव बुद्धिज्म, इलाहाबाद, 1957 ।

पाण्डेय, एल॰ पी॰ - सन् वर्शिप इन एन्सियन्ट इण्डिया, नई-दिल्ली, 1971 ।

पाण्डेय, डी॰ बी॰ - नोट्स ऑन इण्डियन आइकोनोग्राफी, वाराणसी, 1978 ।

पाटिल, डी॰ आर॰ - कल्चरल हिस्ट्री फ्राम दि वायु पुराण, पूना, 1946 ।

फर्गूसन जेम्स तथा वर्जेस जेम्स- दि केव टेम्पल्स ऑव इण्डिया, दो खण्ड, लन्दन, 1980

फर्गूसन एण्ड वर्जेस - हिस्ट्री ऑव इण्डियन एण्ड ईस्टर्न आर्कीटेक्चर, लन्दन, 1910 ।

बसग्ली, मेरियो - 500 इयर्स ऑव दि आर्ट ऑफ इण्डिया।

बनर्जी, जे॰ एन॰ - दि डेवलपमेण्ट ऑव हिन्दू आइकोनोग्राफी, कलकत्ता, 1956 ।

बरूआ, बी॰ एम॰ - भरहुत, 3 भाग, कलकत्ता, 1934-37 ।

- स्टडीज इन बुद्धिस्म, कलकत्ता, 1974 ।

बाजपेयी, के० डी० – अ न्यू यक्ष इमेज फाम अहिच्छवा, (जे० यू० पी० एच० एस० वाल्यूम)

– आर्कियोलाजी इन उत्तर प्रदेश, लखनऊ, 1957।

बाशम, ए० एल० – स्टडीज इन एन्सियन्ट इण्डियन हिस्ट्री एण्ड कल्चर कलकत्ता, 1964 ।

ब्राउन, पर्सी – इण्डियन आर्कीटेक्चर (बुद्धिस्ट्स एण्ड हिन्दू पीरियड) बम्बई, 1956,1966 ।

बकोफर, एल० – अर्ली इण्डियन स्कल्पचर (भाग 2), पेरिस, 1929 ।

बनर्जी, जे० एन० – डेवलपमेन्ट आफ हिन्दू आइकोनोग्राफी, द्वितीय संस्करण, कलकत्ता विश्वविद्यालय, 1956 ।

बनर्जी, आर० डी० – ए डीस्क्रीप्टीव लिस्ट आफ स्कल्पचर्स एण्ड क्वायन्स इन दि म्यूजियम आफ बंगिया साहित्य परिषद, कलकत्ता, 1911 ।

– इस्टर्न इण्डियन स्कूल ऑफ मेडिवल स्कल्पचर , ए० एस० आई०, न्यू इम्पीरियल सीरीज, वाल्यूम XLVII, दिल्ली, 1933 ।

– दि शिवा टेम्पुल ऐट भुमरा (एम० ए० एस०आई०–16), 1924 ।

बार्थ, ए० – दि रेलिजन्स ऑफ इण्डिया, लन्दन 1882 ।

ब्लाख, टी० – सप्लीमेन्ट्री कैटलाग ऑफ आर्कियोलाजिकल कलेक्सन्स ऑफ दि इण्डियन म्यूजियम, कलकत्ता, 1911 ।

ब्लूम फील्ड, एम० – दि रेलिजन आफ दि वेदा, न्यूयार्क तथा लन्दन, 1908 ।

बर्जेस, जे० – एन्शियन्ट मानुमेन्ट्स, टेम्पुल्स एण्ड स्कल्पचर्स ऑफ इण्डिया, (2 भाग), लन्दन, 1897-1911

विश्वास, टी० के० – गुप्ता स्कल्पचर्स, नई दिल्ली, 1985 ।

भट्टाचार्य, हरिदास – सं०– दि कल्चरल हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, (वाल्यूम-4)

भट्टसली, एन० के० – आइकोनोग्राफी ऑव बुद्धिस्ट एण्ड ब्राह्मनिकल स्कल्पचर्स इन दि ढाका म्यूजियम, ढाका, 1929 ।

भट्टाचार्य, बी० – दि इण्डियन बुद्धिस्ट आइकोनोग्राफी, दिल्ली, कलकत्ता, 1968 ।

भट्टाचार्य, आर० एस० – इतिहास पुराण का अनुशीलन।

भागर्व, पी० एल० – इण्डिया इन दि वैदिक एज, लखनऊ, 1971।

भण्डारकर, आर० जी० – वैश्नविज्म, शैविज्म एण्ड माइनर रिलीजस सिस्टम, वाराणसी, 1965 ।

– वैश्नविज्म, शेविज्म एण्ड अदर माइनर रेलिजस सिस्टम, पूना, 1928 ।

भट्टाचार्य, बी० सी० – इण्डियन इमजेज, कलकत्ता और शिमला, 1921 ।

– जैन आइकोनोग्रेफी, लाहौर, 1939 ।

भट्टाचार्या, बी० टी० – इण्डियन बुद्धिस्ट आइकोनोग्राफी, द्वितीय संस्करण, कलकत्ता, 1958 ।

– साधनमाला, गायकवाड़ ओरियन्टल सीरीज, वाल्यूम XLI, बड़ौदा, 1928 ।

भोज – समरांगणसूत्रधार, सं०– टी० गणपति शास्त्री, त्रिवेन्द्रम संस्कृत सीरीज, त्रिवेन्द्रम, 1919 ।

माथुर, एन० एल० – स्कल्पचर इन इण्डिया, इट्स हिस्ट्री एण्ड आर्ट।

मजूमदार, आर० सी० – सं०– दि हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ दि इण्डियन पीपुल।

मार्शल, जे० – अ- गाइड टू साँची, दिल्ली, 1955 ।

– दि मानुमेण्ट्स ऑव साँची, दिल्ली, 1983 ।

मिश्र, आर० एन० – भारतीय मूर्तिकला, नई-दिल्ली, 1978 ।

– यक्ष कल्ट एण्ड आइकोनोग्रा फी, नई-दिल्ली, 1981।

मुकर्जी, आर० के० – दि फ्लावरिंग ऑव इण्डियन आर्ट, 1964 ।

मैक्डानल, ए० ए० – वैदिक मायथालाजी, स्ट्रासवर्ग, 1897 ।

– हिन्दू रेलिजस थाट एण्ड लिट्रेचर।

मैके – इण्डियन मायथालाजी।

रे, निहारंजन – मौर्य एण्ड शुंग आर्ट, कलकत्ता, 1965 ।

– मौर्य एण्ड पोस्ट मौर्यन आर्ट, न ई-दिल्ली, 1975 ।

राय, कृष्णदास – भारत की चित्रकला, प्रयाग, वि० 2007 ।

राय चौधरी, एच० सी० – मैटीरियल्स फार दि स्टडी ऑव दि अर्ली हिस्ट्री ऑव दि वैष्णव सेक्ट।

राय उदय नारायण – स्टडीज इन एन्शियेन्ट इण्डियन हिस्ट्री एण्ड कल्चर, इलाहाबाद, 1969।

– शाल भञ्जिका (अंग्रेजी) इलाहाबाद 1979।

– शाल भञ्जिका- प्रेरणा, प्रतीक एवं प्रतीकात्मकता, इलाहाबाद, 1993।

– भारतीय लोक परम्परा में दोहद, इलाहाबाद, 1997।

राय सिद्धेश्वरी नारायण – हिस्टारिकल एण्ड कल्चरल स्टडीज इन दि पुरानाज, इलाहाबाद 1978।

राजेश्वरी, डी० आर० – शक्ति आइकोनोग्राफी, नई दिल्ली, 1989 ।

लामा, गिनीज लुंडप (अनु०) – भारत में बौद्ध धर्म का इतिहास, पटना, 1971।

ला, बी० सी० – ज्याग्राफी आफ अर्ली बुद्धिज्म, लन्दन, 1932 ।

विद्या प्रकाश – खजुराहो, बम्बई, 1982।

वेद कुमारी – दि नीलमत पुराण, भाग 1 ।

वोगल, जे॰ पी॰ – बुद्धिस्ट आर्ट इन इण्डिया, सीलोन एण्ड जावा।

विंटरनित्स, एम॰ – अ हिस्ट्री ऑव इण्डियन लिट्रेचर।

शास्त्री, अजयमित्र – अजन्ता, दिल्ली, 1980 ।

शास्त्री, नेमिचन्द – आदि पुराणों में प्रतिपादित भारत।

शास्त्री, एच॰ के॰ – साउथ इण्डियन इमेजेज ऑव गाड्स एण्ड गाड्स, मद्रास, 1916 ।

शाह, यू॰ पी॰ – यक्ष वर्शिप इन अर्ली जैन लिट्रेचर, जर्नल ऑव ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा, वाल्यूम III, न॰ I, सितम्बर 1953

शर्मा, तुलसीराम (अनु॰) – भरहुत स्तूप, दिल्ली, वाराणसी, 1975 ।

शिवराममूर्ति, सी॰ – अमरावती स्कल्पचर्स इन दि गवर्नमेण्ट म्यूजियम, मद्रास,1942

– इण्डियन स्कल्पचर, नई-दिल्ली, 1961-1963 ।

– दि आर्ट ऑव इण्डिया, 1977 ।

– साउथ इण्डियन पेंण्टिग।

शुक्ल, वी॰ सी॰ – भारतीय कला के विविध आयाम, इलाहाबाद 1997।

शुक्ल, डी॰ एन॰ – प्रतिमालक्षणम्

शर्मा, आर॰ सी॰ – गुप्त स्कल्पचर फ्राम मथुरा, संग्रहालय, पुरातत्व पत्रिका, अंक 27-28ए जून-दिसम्बर 1981, पृ॰ 89-107।

सहाय, भगवन्त – आइकोनोग्रा फी ऑव माइनर हिन्दू एण्ड बुद्धिस्ट डीटीज नई दिल्ली, 1975 ।

सरस्वती, एस॰ के – ए सर्वे ऑव इण्डियन स्कल्पचर, कलकत्ता, 1957।

– टेम्पुल्स आफ उड़ीसा, ओ॰ एच॰ आर॰ जे॰, खण्ड 1, भाग 1, 1953, पृ॰ 233-54 ।

सोमपुरा, प्रभाकर - भारतीय शिल्प संहिता, बम्बई, दिल्ली, 1975।

संकालिया, एच० डी० - जैन यक्षाज् एण्ड यक्षिज्, डी० सी०बी० वाल्यूम ।, नं० 2-4

सरकार, डी० सी० - स्टडीज इन दि रिलीजस लाइफ ऑव एन्सेयन्ट एण्ड मेडिवल इण्डिया ।

सुप्री०, प्रिण्टिंग एण्ड स्टेशनरी, यू०पी० - सेलेक्ट इन्सक्रिप्सन इन उत्तर प्रदेश म्यूजियम।

स्मिथ, वी० ए० - ए हिस्ट्री ऑव फाइन आर्ट इन इण्डिया एण्ड सीलोन बम्बई, 1962 ।

सम्पूर्णानन्द - हिन्दू देव परिवार का विकास, इलाहाबाद, 1964 ।

ह्वेल, ई० बी० - इण्डियन स्कल्पचर एण्ड पेण्टिंग, लन्दन, 1908 ।

हाप्किन्स, ई० डब्लू० - इपिक मायथालाजी, स्ट्रासबर्ग, 1915

- दि रिलीजन्स ऑव इण्डिया

हेलाड, मेडलाइन - दि गन्धार स्टाइल एण्ड दि इवाल्यूशन ऑव बुद्धिस्ट आर्ट।

शोध पत्रिकाएँ

- एन्शियेन्ट इण्डिया - बुलेटिन आफ दि आर्कियोलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया।

-आर्कियोलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया (ऐनुवल रिपोर्ट)।

- आर्कियोलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया (कनिंघम्स रिपोर्ट)।

- भारतीय विद्या, बाम्बे ।

- इस्टर्न आर्ट ।

-इण्डियन आर्कियोलाजी - अ रिव्यू, नई दिल्ली।

-इपीग्रैफिका इण्डिका।

-इण्डियन एन्टिक्वैरी, बम्बई।

-इण्डियन कल्चर, कलकत्ता।

-इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली, कलकत्ता।

-एन्सियन्ट इण्डिया, बुलेटिन ऑव ए० एस० आय०।

-एनल्स ऑव दि भण्डारकर ओरियण्टल रिर्सच इन्स्टीट्यूट, पूना।

-कार्पस इन्सक्रिप्सनम इण्डिकेरम (फ्लीट, जे० एफ०)

-कुबेर-लेख- लक्ष्मी नारायण तिवारी कृत, जी० एन० झा रिर्सच इन्स्टीट्यूट, इलाहाबाद (पं० क्षेत्रेशचन्द चट्टोपाध्याय, अभिनन्दन ग्रन्थ माला)

- जर्नल आफ इण्डियन हिस्ट्री, कलकत्ता।

-जर्नल ऑव दि यू० पी० हिस्टारिकल सोसायटी।

-जर्नल ऑव दि गुजरात रिसर्च सोसायटी

-जर्नल ऑव दि एशियाटिक सोसायटी, ऑव बंगाल, कलकत्ता ।

-जर्नल ऑव दि न्युमिसमैटिक सोसायटी ऑव इण्डिया, वाराणसी।

-जर्नल ऑव दि इण्डियन सोसायटी ऑव ओरियण्टल आर्ट, कलकत्ता।

ललित कला, बम्बई।

-ए नोट आन दि आइडेन्टिफिकेशन ऑव ए तीर्थकर इमेज एट भारत कला भवन, वाराणसी, जैन जर्नल, जुलाई, 1971 ।

-खजुराहो के पाश्र्व मन्दिर की रथिकाओं में जैन देवियाँ, अनेकान्त वर्ष 24 अंक 4, अक्टूबर, 1971 ।

-यक्षाज वर्शिप इन अर्ली जैन लिट्रेचर, जर्नल ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट (बड़ौदा), खं० 3, अंक 1, सितम्बर 1953, पृष्ठ 54-71 ।

-''बिगिनिंग्स ऑव जैन आइकोनोग्राफी'' संग्रहालय पुरातत्व पत्रिका (लखनऊ) अंक 1, जून 1972, पृष्ठ 1-14 ।

-'' यक्षिणी ऑव दि ट्वेन्टी-फोर्थ जिन महावीर'' जर्नल ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट (बड़ौदा), खण्ड 22, अं० 1-2, सितम्बर दिसम्बर-1972 ।

-" सम माइनर जैन डीटीज-मातृकाज एण्ड दिक्पालाज"- जर्नल एम० एस०
यूनिवर्सिटी ऑव बड़ौदा- 1981 ।
-जैन यक्ष एण्ड यक्षिणीज, बुलेटिन डकन कालेज रिसर्च इन्स्टीट्यूट (पूना) 1940।

चित्र फलक-सूची

आकृति-विवरण

1- यक्ष, परखम (मथुरा), द्वितीय शती ई०पू०।

2- यक्ष, विदिशा (म० प्र०), द्वितीय शती ई० पू०।

3- यक्ष, मथुरा, द्वितीय शती ई० पू०।

4- यक्ष, हरिपर्वत टीला (मथुरा), द्वितीय शती ई०पू०।

5- यक्षी, भूतेश्वर (मथुरा), प्रथम शती ई० पू०।

6- कुबेर यक्ष, साँची, प्रथम-द्वितीय शती ई०पू०।

7- यक्ष, पटना, द्वितीय शती ई०पू०।

8- यक्ष, कौशाम्बी (इलाहाबाद),द्वितीय शती ई०पू०।

9- कुबेर यक्ष, विदिशा (म०प्र०), प्रथम शती ई०पू०।

10- यक्ष, गुलबर्ग (कर्नाटक) प्रथम-द्वितीय शती ई०।

11- यक्षी, दीदारगंज (पटना), तृतीय शती ई०पू०।

12- कुबेर, गोसन-खेरा (म०प्र०) , प्रथम शती ई०पू०।

13- कुबेर, कौशाम्बी (इलाहाबाद), प्रथम शती ई०।

14- हारीति, कौशाम्बी (इलाहाबाद), प्रथम शती ई०।

15- हारीति, भूतेश्वरटीला (मथुरा), द्वितीय शती ई०।

16- कुबेर, गोबिन्द नगर (मथुरा), द्वितीय शती ई०।

17-अर्द्धनारीश्वर, विष्णु, गजलक्ष्मी तथा कुबेर, मथुरा(म०प्र०), तृतीय शती ई०।

18- कुबेर-हारीति,बैज्ना (मथुरा), तृतीय शती ई०।

19- कुबेर-हारीति, गोपालपुर (मथुरा), तृतीय शती ई०।

20- कुबेर, बहादुरपुर (मथुरा), तृतीय शती ई०।

21- कुबेर, भूतेश्वर (मथुरा), तृतीय शती ई०।

22- कुबेर, मथुरा, चतुर्थ शती ई०।

23- कुबेर, मथुरा, चतुर्थ शती ई०।

24- कुबेर, मथुरा, पाँचवी शती ई०।

25- कुबेर, मथुरा, पाँचवी शती ई०।

26- कुबेर, इलाहाबाद, छठी शती ई०।

27- कुबेर, आलमपुर (आन्ध्र प्रदेश), सातवीं शती ई०।

28- कुबेर, मथुरा, सातवीं शती ई०।

29- कुबेर-हारीति, लखनऊ, सातवीं शती ई०।

30- कुबेर, इलाहाबाद, सातवीं शती ई०।

31- कुबेर, बाँदा, आठवीं शती ई०।

32- कुबेर, इन्दौर, आठवीं शती ई०।

33- कुबेर, काम्पिल (फरूखाबाद), नौवीं शती ई०।

34- कुबेर अथवा जम्भल, पभोसा (इलाहाबाद), नौवीं शती ई०।

35- कुबेर, धुबेला (म०प्र०), दसवीं शती ई०।

36- गजवाहन कुबेर, उदयपुर (राजस्थान), दसवी शती ई०।

37- कुबेर, भरतपुर (राजस्थान), दसवीं शती ई०।

38- कुबेर, जमालपुर टीला (मथुरा) ग्यारहवीं शती ई०।

39- कुबेर, मैसूर (कर्नाटक), बारहवीं शती ई०।

40- कुबेर, भीटा (इलाहाबाद), बारहवीं शती ई०।

41-कुबेर, जमसोत (इलाहाबाद), बारहवीं शती ई०।

आकृति - 1

आकृति - 2

आकृति - 3

आकृति - **5**

आकृति - 7

आकृति - 8